ऋग्वेद-संहिता

(सरल-हिन्दी-टीका-सहित)

चतुर्थ अष्टक

टीकाकार

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

("दर्शन-परिचय", "हिन्दी-विष्णु-पुराण", "हिन्दीपुस्तक-कोष", "राजर्षि प्रह्लाद", "भक्त ध्रुव", "महासती मदालसा", "रत्नावली" आदिके लेखक, "आर्यमहिला", "विश्वदूत" (रंगून) "सेनापति" आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीता-प्रचारक-महामण्डल" (मोरिशस) के जन्मदाता, "दक्षिण अफ्रीकन सनातन धर्म-महामण्डल" (डरबन, नेटाल) के आजीवन सभापति, "गङ्गा"के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक),

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, बनैलीराज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर तथा "गङ्गा" और "वैदिकपुस्तकमाला"के अन्यतम जन्मदाता एवम् अध्यक्ष)

—और—

साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र "मग"

('गङ्गा'-सम्पादक)

प्रकाशक

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ
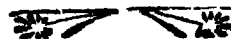
संचालक, "वैदिकपुस्तकमाला", सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

मूल्य २) | फाल्गुन, १९९१ विक्रमीय | प्रथम संस्करण १०००

पढ़ना चाहिये !

इसलिये कि—

ठ पुस्तक है,
सबसे प्राचीन पुस्तक है,
परोपकार, देश-सेवा, सत्य, त्याग आदि मनुष्य-
गुणावली है, सबका वेदमें बड़ा ही सुन्द

प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, धर्म-प्र
समाज-व्यवस्था, राष्ट्रधर्म, यज्ञ-रहस्य आदि आदिको दर्पणकी तर
दिखाता है ।

इसलिये जिस प्रकार हर एक ईसाई बाइबिलको और हर एक मुस
मान कुरानको, गाड और खुदाकी विमल वाणी समझकर, अपने पा
रखता है, उसी प्रकार ईश्वरका पवित्र उपदेश जानकर वेदको अपने पा
रखना हर एक हिन्दूका आवश्यक कर्त्तव्य है ।

लज्जाकी बात है कि, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, इंगलैंड आदिके विद्वान
ने तो वेदकी सारी पुस्तकोंको छपा डाला और हिन्दीमें एक भी ऋग्वेदक
सरल अनुवाद नहीं । इसी अभावकी पूर्तिके लिये हमने "वैदिक-पुस्तकम"
द्वारा सरस-सरल हिन्दीमें चारो वेदोंका अनुवाद कराना निश्चित किया "
अबतक ऋग्वेदके तीन अष्टक निकल चुके हैं और और चौथा अष्टक
आपके सामने है । प्रत्येक अष्टकका मूल्य सिर्फ लागत भर २) रु० है.
चारो अष्टकोंका मूल्य ८) रु० है । पाँचवां अष्टक छप रहा है ।

॥) देकर "वैदिक-पुस्तकमाला"के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको
भी डाक खर्च नहीं देना होता है और पुस्तक निकलते ही, सूचना देकर
वी० पी० से भेज दी जाती है ।

व्यवस्थापक, "वैदिक-पुस्तकमाला", सुलतानगंज (ई० आई० आर०

वैदिक-पुस्तकमाला—चतुर्थ पुष्प

ऋग्वेद-संहिता

(सरल-हिन्दी-टीका-सहित)

चतुर्थ अष्टक

टीकाकार

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

("दर्शनपरिचय," "हिन्दीविष्णुपुराण," "हिन्दीपुस्तककोष" "राजर्षि प्रह्लाद," "भक्त ध्रुव," "महासती मदालसा," "रत्नावली" आदिके लेखक, "आर्यमहिला," "विश्वदूत" (रंगून) 'सेनापति," आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीताप्रचारक-महामण्डल" (मोरिशस) के जन्मदाता, "दक्षिण अफ्रीकन सनातन-धर्ममहामण्डल" (डरबन, नेटाल) के आजीवन सभापति, "गङ्गा" के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक).

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, बनैली-राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर तथा "गङ्गा" और "वैदिक-पुस्तक-माला" के (अन्यतम जन्मदाता एवम् अध्यक्ष

—* और *—

साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र "मग"

("गंगा"-सम्पादक)

प्रकाशक

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

संचालक, "वैदिक-पुस्तकमाला," सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

मूल्य २) { फाल्गुन, १९९१ विक्रमीय } प्रथम संस्करण ३०००

आत्म-निवेदन

हिन्दुओंके सर्व-श्रेष्ठ धर्म-शास्त्र-विधाता मनु महराजने लिखा है—

"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥"

इसका तात्पर्य यह है कि, जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) वेद न पढ़कर किसी भी अन्य शास्त्र, ग्रन्थ या कर्ममें परिश्रम करता है, वह जीते जी, अपने कुलके साथ, बहुत जल्दी, शूद्र हो जाता है।

इस श्लोकसे वेदके अध्ययनका महत्त्व विदित होता है। वेदाध्ययनका इतना महत्त्व क्यों?

इसके कई कारण हैं। पहला कारण यह है कि, हिन्दू वेदको पुस्तक नहीं मानते; पुस्तकके रूपमें वे उसे नित्य, शाश्वत, अप्रमेय और ज्ञानाकर मानते हैं। कौषतकि-ब्राह्मण (१०।३।) का मत है कि, वेदके मन्त्र तपःपूत ऋषियों द्वारा आविर्भूत हुए हैं या देखे गये हैं, बनाये नहीं गये। ऐतरेय-ब्राह्मण (३।१९) का कहना है कि, गौरवीतिने सूक्तों या मन्त्र-समूहोंको देखा था। ये दोनों ग्रन्थ स्वयं वैदिक साहित्यके महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ हैं। इनसे विदित होता है कि, सनातन कालसे ही वेदोंको हिन्दू या आर्य नित्य मानते हैं। कल्पसूत्रों, दर्शनों, धर्मशास्त्रों, पुराणोंने भी वेद-नित्यता स्वीकार की है। यही नहीं, संस्कृत-साहित्यमें जितने ग्रन्थ हैं, प्रायः सब वेदोंको नित्य मानते हैं। भारतकी देशी भाषाओंके ग्रन्थ भी वेदोंको लगभग शाश्वत मानते है। भट्टभास्कर, स्कन्द स्वामी, सायणाचार्य, शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि भी वेद-नित्यता स्वीकार करते हैं। स्वामी दयानन्दकी तो वेद-नित्यतापर दृढ़ धारणा है। असंख्य हिन्दू वेदोंको हिरण्यगर्भ (Cosmic Egg) से सम्भूत स्वीकार करते हैं। बौद्धों, जैनों, सिखोंकी दृष्टिमें भी वेद-ज्ञाताकी खासी प्रतिष्ठा है।

दूसरा कारण है वेदोंका ऐतिहासिक महत्त्व। कुछ नयी शैलीके ऐसे विद्वान् हैं, जो वेदोंको नित्य तो नहीं स्वीकार करते; किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे उनका अतीव महत्त्व स्वीकार करते हैं। वेदोंसे मनुष्यजातिकी प्राचीनतम रीति-नीतियां जानी जाती हैं; इसलिये ऐतिहासिक हिन्दू वेदोंको रत्नराजिकी तरह संचित करते हैं। ऐसी ही दृष्टि विदेशियोंकी भी है। कितने ही धार्मिक हिन्दू भी वेदोंकी ऐतिहासिक महत्ता स्वीकार करते हैं। यह ठीक ही है; क्योंकि वैदिक साहित्यके कितने ही ग्रन्थ और संस्कृत-साहित्यके दर्जनों ग्रन्थ भी इतिहासको एक विद्या ही मानते हैं। शतपथ-ब्राह्मण (१४।५।४।१०) और अथर्ववेद इतिहासको एक कला मानते हैं। मनुस्मृति (३।७२) में भी इतिहासकी महिमा है। छन्दोग्योपनिषद् और कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें इतिहासको पञ्चम वेद माना गया है। महाभारत (१।१८३) में इतिहासको मोहान्धकार दूर करनेवाला बताया गया है। वैदिक संहिताओंमें विविध ऋषियों और राजाओंके वंशोंका विवरण है। शतपथमें मिथिला, विदेह, दुष्यन्त, भरत, जनमेजय, उग्रसेन आदिका वर्णन है। ताण्ड्य-ब्राह्मणमें भी विदेह आदिकी कथाएँ हैं। तैत्तिरीयमें कालकञ्ज असुर और वाराहावतारकी बातें हैं। ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय और शाङ्खायन आरण्यकोंमें शुनःशेप, अहिल्या, खाण्डव, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, काशी, पाञ्चाल आदिकी स्पष्ट कथाएँ हैं। ऋग्वेदमें उर्वशी-पुरुरवा, यम-यमी आदिकी कथाएँ हैं। ऋग्वेदका "दाशराज्ञ-

युद्ध" सूर्य-चन्द्र वंशियोंका प्रसिद्ध युद्ध है। इस प्रकार वेदों और वैदिक साहित्यमें अति प्राचीन ऐतिहासिकता और ऐतिहासिक महत्त्व रहनेके कारण, ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें, वेद विद्याका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिये ।

परन्तु इन सब कारणोंसे बढ़कर हिन्दुओंके लिये जबर्दस्त कारण है—"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" वाली धारणा। हिन्दुओंका विश्वास है कि, हिन्दूधर्म (और हिन्दू संस्कृति तथा सभ्यताकी भी), अथसे इतितक, सारी बातें वेदोंमें हैं। बहुत तो यह भी मानते हैं कि, मनुष्यजातिकी समस्त उच्चतम सम्पत्ति वेदोंमें है और जो वेदोंमें नहीं, वह कहीं भी नहीं। सारांश यह कि, जैसे ईसाई और मुसलमान बाइबिल और कुरानको अपने-अपने धर्मोंका मूल ग्रन्थ कहते हैं, वैसे ही हिन्दू भी मानते हैं—"वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।"

हमारे निवेदनका तात्पर्य यह है कि, किसी भी दृष्टिसे देखिये, हिन्दुओंके लिये वेदाध्ययन अत्यावश्यक और अनिवार्य है। परन्तु हिन्दीमें वेदोंका संक्षिप्त और सरल अनुवाद न होनेके कारण अधिकांश हिन्दू वेदाध्ययनसे वञ्चित रह जाते हैं। इसी भयंकर अभावकी पूर्त्तिके लिये समय, श्रम और शक्तिका यथेष्ट व्यय कर हमने चारो वैदिक संहिताओंका अनुवाद करना निश्चित किया है। सर्व-प्रथम प्रथम वेद (ऋग्वेद) का अनुवाद किया जा रहा है। इस चतुर्थ अष्टक या भागके साथ ऋग्वेदका आधा अनुवाद समाप्त होता है—आधा अवशिष्ट है। अब आगेसे ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि, प्रत्येक मास पन्द्रह फार्मोंमें नियमित वेदानुवाद निकाला जाय और लागत भर १) मासिक मूल्य रखा जाय। इसी क्रमसे चारो वेद निकाले जायँगे। पाठकोंसे निवेदन है कि, वे भी दो-दो, एक-एक स्थायी ग्राहक बनाकर इस विशाल यज्ञमें हमारा हाथ बँटानेका कष्ट करें।

होलिकोत्सव, १९९१
कृष्णगढ़, सुलतानगंज

रामगोविन्द त्रिवेदी,
गौरीनाथ झा,
साहित्याचार्य "मग"

चतुर्थ अष्टकके मन्त्रोंमें पौराणिक कथाओंका अङ्कुर

गौ, अग्नि और सूर्यका अग्निसे उत्पन्न होना ५। ४४
अग्निद्वारा बभ्रि ऋषिकी दुर्दशाका अपनोदन ५।१९।१
अरुणका महादान ५।२७।२
कुत्सके साथ एक रथपर आरूढ़
इन्द्र द्वारा शुष्णासुरका बध ५।२९।३
इन्द्रके द्वारा शम्बरासुरका बध ५।२९।६
गौओंकी रक्षाके लिये इन्द्रका असुरोंसे युद्ध ५।३०।४
मरुतोंके प्रभावसे
द्यावापृथिवीका चककी तरह घूमना ५।३०।८
नमुचिकी स्त्री-सेना ५।३०।९
एतशके संग्राममें सूर्यके रथका चक्रापहरण ५।३१।११
वृत्रके शरीरसे बलवान् असुरका जन्म ५।३२।३
त्वष्टा द्वारा पिता, माता और भ्राताका वध ५।३४।४
श्रुतरथ राजाका गोधनु दान ५।३६।६
अत्रिकी ऋचाओं
द्वारा सूर्यका प्रकाशित होना ५।४०।४
अवत्सारके यज्ञमें
सुतम्भरऋषिने फलोंको टिकाऊ किया ५।४४।१३
सप्ताश्व सूर्य ५।४५।९
सुसज्जित मरुद्गण ५।५४।११
शशीयसी और श्यावाश्व ५।६१।५
मित्र और वरुणका
अर्चनानाके प्रति प्रसन्न होना ५।६४।७
मित्रावरुणका
रातहव्यके मार्गकी रक्षा करना ५।६६।३

मित्रावरुणकी
आज्ञासे गौओंका दुग्धवती होना ५।६९।२
अश्विनीकुमारों
द्वारा सूर्यकी मूर्तिका प्रदीप्त होना ५।७३।२
जराजीर्ण च्यवनका तरुण होना ५।७४।५
सप्तवध्रिके पिताका
तुषाग्नि कुण्डमें मुक्तिलाभ ५।७८।४
सप्तवध्रिका बाक्समें बन्द होना ५।७८।५
इन्द्र और अग्नि द्वारा गौओंका उद्धार ५।८६।२
एत्रया ऋषिकी स्तुति ५।८७।१
अग्निका दौत्य-कार्य ६।१५।९
अथर्वा ऋषि द्वारा अग्नि मन्थन ६।१५।१७
दुष्यन्त-तनय भरत ६।१६।४
दिवोदास और भरद्वाजको धनप्रदान ६।१६।५
त्रिपुरासुरके तीनों पुरोंका भस्म होना ६।१६।३९
त्वष्टा द्वारा इन्द्रका वज्र-निर्माण ६।१७।१०
चुमुरि, धुनि, पिप्रु,
शम्बर और शुष्णका विनाश ६।१८।८
राजा क्षत्रश्रीका शत्रु-विनाश ६।२६।८
हरियूपीयाके
तीरपर रहनेवाले वरशिखका वध ६।२७।५
अङ्गिराओंके साथ पणियोंका संहार ६।३३।२
इन्द्रका कुत्सकी गोशालामें गमन ६।४५।२४
प्रस्तोकका दान और शम्बरका समर ६।४७।२२

किस मन्त्रकी टिप्पनीमें कथा है ?

अग्निके सम्बन्धमें असुर शब्द ५।१२।१
स्त्रियोंका वेदाधिकार ५।२८
वृत्रके शरीरसे शुष्णासुरका जन्म ५।३२।३
गङ्गा आदि सप्त नदियाँ ५।४३।१
पतिके साथ स्त्रियोंका अग्न्यधिकार ५।४३।१५

उनचास मरुतोंका जन्म ५।५२।१७
सूर्यादि देवोंके अश्वोंका नाम ५।५६।६
मांहलुपा ५।५६।९
श्यावाश्वका ऋषित्व ५।६१
विशाल गृहसे स्वर्गका संकेत ५।६५।४

चतुर्थ अष्टककी जानने योग्य बातें

धर्म और देवताओंके सम्बन्धमें

वैदिक-पुस्तकमालाकी नियमावली

(१) इस "माला"में हिन्दी अनुवाद-सहित चारों वेद और विशेषतः वैदिक-ग्रन्थ-पुष्प ही गूँथे जायँगे।

(२) ।।) भेजकर "माला"के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको किसी भी पुस्तकपर डाक खर्च नहीं देना पड़ेगा।

(३) स्थायी ग्राहकोंको "माला"में प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना होगा।

(४) "माला"में प्रकाशित पुस्तकें, सूचना देकर, वी० पी० से भेजी जायँगी।

संचालक, "वैदिक-पुस्तकमाला,"

सुलतानगंज (ई० आई० आर०)
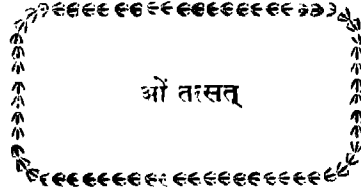
ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी टीका और टिप्पनियोंसे युक्त)

४ अष्टक । ५ मण्डल । १ अध्याय । १ अनुवाक ।

६ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य गय ऋषि । पङ्क्ति और अनुष्टुप् छन्द ।

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईलते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥१॥

१ हे अग्नि, तुम दीप्यमान देव हो। होमसाधक द्रव्यसे युक्त होकर मर्त्य लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम चराचर भूतजातको जानते हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हवन-साधन हव्यका, निरन्तर, वहन करते हो।

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥२॥

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥३॥

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥४॥

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युपध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥५॥

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥६॥

---

२ निखल यज्ञ जिन अग्निके साथ गमन करते हैं, यजमानकी प्रभूत कीर्तिके सम्पादक हव्य जिन अग्निको प्राप्त करते हैं, वह अग्नि हव्यदाता और कुशच्छेदक यजमानके यज्ञके लिये देवोंके आह्वाता होते हैं।

३ आहारादिके पाक द्वारा मनुष्योंके पोषक और यज्ञ शोभाकारी अग्निको अरणिद्वय नव शिशुकी तरह उत्पन्न करते हैं।

४ हे अग्नि, कुटिलगति सर्प या वक्रगति अश्वके शिशुकी तरह तुम कष्टपूर्वक धारण करनेके योग्य हो। तृणमध्यमें परित्यक्त पशु जिस तरहसे तृण भक्षण करता है, उसी तरहसे तुम समग्र वनके दाहक होते हो।

५ धूमवान् अग्निकी शिखाएँ शोभन रूपसे सर्वत्र व्याप्त होती हैं। तीनों स्थानोंमें व्याप्त अग्नि अपनी ज्वालाको स्वयमेव अन्तरिक्षमें उपवर्द्धित करते हैं, जैसे भस्त्रादिके द्वारा कर्मकार अग्निको संवर्द्धित करते हैं। अग्नि कर्मकार द्वारा सन्धुक्षित अग्निकी तरह अपनेको तीक्ष्ण करते हैं।

६ हे अग्नि, तुम सबके मित्र-स्वरूप हो। तुम्हारी रक्षा द्वारा और तुम्हारा स्तव करके हम शत्रुभूत मनुष्योंके पापसाधन कर्म्मोंसे उत्तीर्ण हों। तुम्हारी रक्षा और तुम्हारे स्तोत्रोंके द्वारा हम बाह्याभ्यन्तर शत्रुओंसे उत्तीर्ण हों।

तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आभर ।
स क्षेपयत् स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥

१० सूक्त

अग्नि देवता । गय ऋषि । ४-७ पङ्क्ति छन्द ।

अग्न ओजिष्ठमाभर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥
त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यमारुहत् क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥२॥

---

७ हे अग्नि, तुम बलवान् और हव्यवाहक हो। तुम हम लोगोंके निकट प्रसिद्ध धन आहरण करो। हम लोगोंके शत्रुओंको पराभूत करके हम लोगोंका पोषण करो। अन्न प्रदान करो और युद्धमें हम लोगोंका समृद्धिका विधान करो।

---

१ हे अग्नि, तुम हम लोगोंके लिये अत्युत्कृष्ट (कटक-मुकुटादिरूप) धन आहरण करो। तुम अप्रतिहत-गति हो। तुम हम लोगोंको सर्वत्र व्याप्त धनसे युक्त करो और अन्न-लाभके लिये हम लोगोंके पथका आविष्कार करो।

२ हे अग्नि, तुम सबके मध्यमें आश्चर्यभूत हो। तुम हम लोगोंके यज्ञादि व्यापारसे प्रसन्न होकरके हम लोगोंके लिये बल या धनका नाम दान करो। तुम्हारा बल असुरोंको विनष्ट करनेवाला है। तुम सूर्यकी तरह यज्ञकार्यका सम्पादन करो।

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥३॥
ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत् सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥४॥
तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥५॥
नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥६॥
त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥

३ हे अग्नि, प्रसिद्ध स्तवकारी मनुष्यगण तुम्हारी स्तुति करके उत्कृष्ट (गौ आदि) धन लाभ करते है। हम भी तुम्हारी स्तुति करते हैं। हम लोगोंके लिये धन और पुष्टिका वर्द्धन करो।

४ हे आनन्ददायक अग्नि, जो लोग सुन्दर रूपसे तुम्हारी स्तुति करते हैं, वे अश्वधन लाभ करते हैं और बलशाली होकर अपने बलसे शत्रुओंको विनष्ट करते हैं एवम् स्वर्गसे भी बड़ी सुकीर्ति लाभ करते हैं। गय ऋषिने तुम्हें स्वयम् जागरित किया है।

५ हे अग्नि, तुम्हारी अत्यन्त प्रगल्भ और दीप्तिमती रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त विद्युत्की तरह, शब्दायमान रथकी तरह और अन्नार्थियोंकी तरह सर्वत्र गमन करती हैं। (इससे आहुति-विषयक अभिलाष उक्त हुआ है।)

६ हे अग्नि, तुम शीघ्र ही हम लोगोंकी रक्षा करो और धन दान करके दारिद्र्य दुःखका अपनोदन करो। हमारे पुत्र और मित्र तुम्हारी स्तुति करके पूर्ण-मनोरथ हों।

७ हे अङ्गिरा, पुरातन महर्षियोंने तुम्हारी स्तुति की है और इस समयके महर्षि भी तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। धन महान् व्यक्तियोंको भी अभिभूत करनेवाला है, वह धन हमारे लिये लाओ। हे देवोंके आह्वानकारी, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें स्तुतिसामर्थ्य प्रदान करो एवम् युद्धमें हमारी समृद्धिका विधान करो।

११ सूक्त

अग्नि देवता। अत्रिके अपत्य सुतम्भर ऋषि। जगती छन्द।

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥२॥
असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥३॥
अग्निर्नो यज्ञमुपवेतु साधुयाग्निं नरो विभरन्ते गृहेगृहे।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥४॥

१ लोगोंके रक्षक, सदा प्रबुद्ध और सबके द्वारा श्लाघनीय बलवाले अग्नि लोगोंके नूतन कल्याणके लिये उत्पन्न हुए हैं। घृत द्वारा प्रज्वलित होनेपर तेजोयुक्त और शुद्ध अग्नि ऋत्विकोंके लिये द्युतिमान् होकर प्रकाशित होते हैं।

२ अग्नि यज्ञके केतुस्वरूप हैं अर्थात् प्रज्ञापक हैं। अग्नि यजमानों द्वारा पुरस्कृत होते हैं—पुरोभागमें स्थापित होते हैं। अग्नि इन्द्रादि देवोंके समकक्ष हैं। ऋत्विकोंने तीन स्थानोंमें अग्निको समिद्ध किया था। शोभनकर्मा और देवोंके आह्वानकारी अग्नि उस कुशयुक्त स्थानपर यज्ञके लिये प्रतिष्ठित हुए थे।

३ हे अग्नि, तुम जननी स्वरूप अरणिद्वयसे, निर्विघ्न होकर, जन्म ग्रहण करते हो। तुम पवित्र, कवि और मेधावी हो। तुम यजमानोंसे उदित होते हो। पूर्व महर्षियोंने घृत द्वारा तुम्हें वर्द्धित किया था। हे हव्यवाहक, तुम्हारा अन्तरिक्षव्यापी धूम केतुस्वरूप है—तुम्हारा प्रज्ञापक या अनुमापक है।

४ सब पुरुषार्थोंके साधक अग्नि हमारे यज्ञमें आगमन करें। मनुष्य प्रतिगृहमें अग्नि-संस्थापन करते हैं। हव्यवाहक अग्नि देवोंके दूत-स्वरूप है। यज्ञसम्पादक कहकर लोक अग्निका सम्भजन करते हैं।

तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरापृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥५॥
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविंदञ्छिश्रियाणं वने वने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥६॥

१२ सूक्त

अग्नि देवता । सुतम्भर ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥१॥

५ हे अग्नि, तुम्हारे उद्देशसे यह सुमधुर वाक्य प्रयुक्त होता है। यह स्तुति तुम्हारे हृदयमें सुख उत्पन्न करे। महानदियाँ जिस तरहसे समुद्रको पूर्ण और सबल करती है, उसी तरहसे स्तुतियाँ तुम्हें पूर्ण और सबल करती है।

६ हे अग्नि, तुम गुहामध्यमें निगूढ़ होकर और वन (वृक्ष) का आश्रय ग्रहण करके अवस्थान करते हो। अङ्गिराओंने तुम्हें प्राप्त (आविष्कृत) किया है। हे अङ्गिरा, तुम विशेष बलके साथ मथित होनेपर उत्पन्न होते हो; इसी लिये सब तुम्हे बलपुत्र कहते है।

---

१ अग्नि सामर्थ्यातिशयसे महान्, याग-योग्य और जल-वर्षणकारी, असुर (बलवान) * और अभीष्ट-वर्षी हैं। यज्ञमें, अग्निके मुखमें हुत परम पवित्र घृतकी तरह हमारी स्तुतियाँ अग्निके लिये प्रीतिकर हों।

---

* चतुर्थ अष्टकमें असुर शब्द १२ बार व्यवहृत हुआ है—

५ मण्डल,	१२	सूक्त,	१	ऋक्	असुर शब्द	अग्निके	सम्बन्धमें
,,	१५	,,	१	,,	,,	अग्नि	,,
,,	२७	,,	१	,,	,,	अरुण अग्नि वाजपुत्र	,,

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्धृध्यृतस्य धारा अनु तृन्धिपूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥ २ ॥
कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥ ३ ॥
के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥ ४॥

---

२ हे अग्नि, हम यह स्तुति करते हैं, तुम इसे जानो एवम् इसका अनुमोदन करो तथा प्रचुर वारि-वर्षणके लिये अनुकूल होओ। हम बलपूर्वक यज्ञमें विघ्नोत्पादक कार्य नहीं करते हैं और न अवैध वैदिक कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। तुम दीप्तिमान् हो, कामनाओंके पूरक हो। हम तुम्हारी ही स्तुति करते हैं।

३ हे जलवर्षणकारी अग्नि, तुम स्तुति-योग्य हो। हम लोगोंके किस सत्य कार्य द्वारा तुम हम लोगोंकी स्तुतिके ज्ञाता होओगे? ऋभुओं (वसन्त आदि) के रक्षाकर्त्ता और दीप्तमान् अग्नि हमें जानें। हम अग्निके सम्भजनकर्ता हैं। हमारे पशु आदि धनके स्वामी अग्निको हम नहीं जानते हैं।

४ हे अग्नि, कौन शत्रुओंका बन्धनकारी है? कौन लोकरक्षक है? कौन दीप्तिमान् और दानशील है? कौन असत्यधारकोंका आश्रयदाता है? अथवा कौन अभिशापादि-रूप दुष्ट वचनका उत्साहदाता है? अर्थात् अग्नि-सम्बन्धी कोई भी पुरुष इस तरहका नहीं है।

,,	४१	,,	३	,,	,,	रुद्र, सूर्य या वायु	,,
,,	४२	,,	१	,,	,,	वायु	,,
,,	४२	,,	११	,,	,,	रुद्र	,,
,,	४६	,,	२	,,	,,	सविता	,,
,,	५१	,,	११	,,	,,	पूषा	,,
,,	६३		३	,,	,,	मित्र और वरुण	,,
,,	६३	,,	७	,,	,,	मित्र और वरुण	,,
,,	८३	,,	६	,,	,,	पर्जन्य	,,
६	१२	,,	४	,,	(असुरघ्न शब्द)	इन्द्र	,,

पुराणोंमें असुर शब्द जिस अर्थका द्योतक है, उसी अर्थमें षष्ठ मण्डलके बारहवें सूक्तका 'असुरघ्न' शब्द व्यवहृत हुआ है। नहीं तो इसके पहले असुर शब्द बलवाचक अर्थके लिये ही व्यवहृत हुआ है। यहाँ भी असुरघ्नका अर्थ "बलियोंके विनाशक" हो सकता है।

सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिरृजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥५॥
यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥६॥
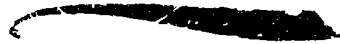
१३ सूक्त

अग्नि देवता । सुतम्भर ऋषि । गायत्री छन्द ।

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१॥
अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥२॥
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥३॥

---

५ हे अग्नि, सर्वत्र व्याप्त तुम्हारे ये बन्धुगण पूर्वमें तुम्हारी उपासनाके त्यागसे असुखी हुए थे, पश्चात् तुम्हारी आराधना करके फिर सौभाग्यशाली हुए। हम सरल आचरण करते हैं; फिर भी जो हमें, असाधुभावसे, कुटिलाचारी कहता है, वह हमारा शत्रु स्वयम् अपना अनिष्ट उत्पादन करता है।

६ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् और अभीष्टपूरक हो। जो हृदयसे तुम्हारी स्तुति करता है और तुम्हारे लिये यज्ञ-रक्षा करता है, उस यजमानका गृह विस्तीर्ण होता है। जो भली भाँतिसे तुम्हारी परिचर्या करता है, उस मनुष्यको कामनाओंको सिद्ध करनेवाला पुत्र होता है।

---

१ हे अग्नि, हम तुम्हारी पूजा करके आह्वान करते हैं एवम् स्तुति करके हम लोग अपनी रक्षाके लिये तुम्हें प्रज्वलित करते हैं।

२ आज हम लोग धनार्थी होकर दीप्तिमान् और आकाशस्पर्शी अग्निकी पुरुषार्थ-साधक स्तुतिका पाठ करते हैं।

३ जो अग्नि मनुष्योंके मध्यमें अवस्थान करके देवोंका आह्वान करते हैं, वह अग्नि हम लोगोंकी स्तुतियोंको ग्रहण करें एवम् यज्ञीय द्रव्यजातको देवोंके समक्ष वहन करें।

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥४॥

त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्द्धन्ति सुष्टुतम्। स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५॥

अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्त्वं परिभूरसि। आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥६॥

१४ सूक्त

अग्नि देवता। सुतम्भर ऋषि। गायत्री छन्द।

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम्। हव्या देवेषु नो दधत् ॥१॥

तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम्। यजिष्ठं मानुषे जने ॥२॥

तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता। अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥३॥

अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यून् ज्योतिषा तमः। अविन्दद्गा अपः स्वः ॥४॥

---

४ हे अग्नि, तुम सर्वदा प्रीत हो। तुम होता और लोगों द्वारा वरणीय होकर स्थूल (पृथु) होते हो। तुम्हें प्राप्त कर यजमान यज्ञ सम्पादन करते हैं।

५ हे अग्नि, तुम अन्नदाता और स्तुतियोग्य हो। मेधावी स्तोता समुचित स्तुति द्वारा तुम्हें संवर्द्धित करते हैं। तुम हम लोगोंको उत्कृष्ट बल प्रदान करो।

६ हे अग्नि, नेमि जिस तरहसे चक्रके अरों (कीलों) को वेष्टित करती है, उसी तरहसे तुम देवोंको व्याप्त करते हो। तुम हम लोगोंको नाना प्रकारका धन प्रदान करो।

||||||||||||||||||||||

१ हे यजमान, तुम अमर अग्निको स्तोत्र द्वारा प्रबोधित करो। अग्निके प्रदीप्त होनेपर वे देवों समक्ष हम लोगोंके लिये हव्य वहन करेंगे।

२ मनुष्यगण दीप्तिमान्, अमर और मनुष्योंके मध्यमें परमाराध्य अग्निकी, यज्ञस्थलमें, स्तुति करते हैं।

३ यज्ञस्थलमें बहुतेरे स्तोता घृतसिक्त स्रुकके सहित, देवोंके निकट हव्य वहनार्थ, दीप्तिमान् अग्निकी स्तुति करते हैं।

४ अरणि-मन्थनसे उत्पन्न अग्नि अपने तेजःप्रभावसे अन्धकारको और यज्ञविघातक दस्युओंको विनष्ट कर प्रदीप्त होते हैं। गौ, अग्नि और सूर्य अग्निसे ही उत्पन्न हुए हैं।

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥५॥

अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥६॥

१५ सूक्त

अग्नि देवता । अङ्गिराके अपत्य धरुण ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरम्भरे यशसे पूर्व्याय ।

घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १ ॥

ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।

दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄ ज्जातैरजातँ अभि ये ननक्षुः ॥ २ ॥

अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।

स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परिष्ठुः ॥

५ हे मनुष्यो, तुम उस ज्ञानी और आराध्य अग्निकी पूजा करो, जो ऊर्ध्व भागमें घृताहुति द्वारा प्रदीप्त होते हैं। अग्नि हमारे इस आह्वानको सुनें और जानें।

६ ऋत्विग्गण घृत और स्तोम द्वारा स्तुत्यभिलाषी और ध्यानगम्य देवोंके साथ सर्वदर्शी अग्निको सवर्द्धित करते हैं।

---

१ हविस्वरूप घृतसे अग्नि प्रसन्न होते हैं। वे बलवान्, सुखस्वरूप धनके अधिपति, हविर्वाहक गृहदाता, विधाता, क्रान्तदर्शी, स्तुतियोग्य, यशस्वी और श्रेष्ठ हैं। ऐसे अग्निके लिये हम स्तुति प्रणयन करते हैं।

२ जो यजमान द्युलोकके धारक, यज्ञस्थलमें आसीन, नेता देवोंको ऋत्विकों द्वारा प्राप्त करते हैं, वे यजमान यज्ञधारक, सत्यस्वरूप अग्निको, यज्ञके लिये उत्तम स्थानमें अर्थात् उत्तम वेदीपर, स्तोत्र द्वारा, धारण करते हैं।

३ जो यजमान मुख्य अग्निके लिये राक्षसों द्वारा दुष्प्राप्य हविस्वरूप अन्न प्रदान करते हैं, वे यजमान निष्पापकलेवर होते हैं। नवजात अग्नि क्रुद्ध सिंहकी तरह संगत शत्रुओंको दूर करें। सर्वत्र वर्त्तमान शत्रु मुझे छोड़कर दूरमें अवस्थिति करें।

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥ ४ ॥
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥ ५ ॥

१६ सूक्त

अग्नि देवता। अत्रिके पुत्र पुरु ऋषि। पङ्क्ति और अनुष्टुप् छन्द।

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥ १ ॥
स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥ २ ॥

---

४ सर्वत्र प्रख्यात अग्नि जननीकी तरह निखिल जनको धारण करते हैं। धारण करनेके लिये और दर्शन देनेके लिये सब कोई उनकी प्रार्थना करते हैं। जब वे धार्यमाण होते हैं, तब वे सब अन्नको जीर्ण कर देते हैं। नानारूप होकर अग्नि सर्वभूतजातका परिगमन करते हैं।

५ हे द्योतमान अग्नि, पृथु कामनाओंके पूरक और धनधारक हविर्लक्षण अन्न तुम्हारे सम्पूर्ण बलकी रक्षा करे। तस्कर जिस तरहसे गुहामध्यमें छिपाकर अपहृत धनकी रक्षा करता है, उसी तरह तुम प्रचुर धन लाभके लिये सन्मार्गको प्रकाशित करो और अत्रि मुनिको प्रीत करो।

---

१ मनुष्यगण जिन सखिभूत अग्निको, प्रकृष्ट स्तुतियों द्वारा, स्तुति करके पुरोभागमें स्थापित करते हैं, उन द्योतमान् अग्निको महान् हविर्लक्षण अन्न दिया जाता है।

२ जो अग्नि देवोंके लिये हव्य वहन करते हैं, जो बाहुबलको द्युतिसे युक्त हैं, वे अग्नि यजमानोंके लिये देवोंका आह्वान करते हैं। वे सूर्यकी तरह मनुष्योंको विशेष रूपसे वरणीय धन प्रदान करते हैं।

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥३॥
अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥४॥
नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

१७ सूक्त

अग्नि देवता पुरु ऋषि । पङ्क्ति और अनुष्टुप् छन्द ।

आ यज्ञैर्देव मर्त्यः इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥१॥
अस्य हि स्वयशस्तरः आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२॥

---

३ सब ऋत्विक् हव्य और स्तोत्र द्वारा जिन बहुशब्दविशिष्ट स्वामी अग्निमें बलका आधान, भली भाँतिसे, करते है, हम लोग उन्हीं प्रवृद्ध तेजवाले और धनवान् अग्निकी स्तुति करते हैं। हम लोग उनके साथ मित्रता करते हैं।

४ हे अग्नि, हम यजमानोंको तुम सबके द्वारा स्पृहणीय बल प्रदान करो। द्यावापृथिवीने सूर्यकी तरह श्रवणीय अग्निको परिगृहीत किया है।

५ हे अग्नि, हम यजमान तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम शीघ्र ही हमारे यज्ञमें आओ और हमारे लिये वरणीय धनका सम्पादन करो। हम यजमान स्तोता तुम्हारे लिये स्तुति करते हैं। हम लोगोंको तुम युद्धमें समृद्धियुक्त करो।

---

१ हे देव, ऋत्विग्गण अपने तेजसे प्रवृद्ध अग्निको, स्तोत्रों द्वारा तृप्त करनेके लिये, आहूत करते हैं। मनुष्य स्तोता यज्ञकालमें रक्षाके लिये अग्निकी स्तुति करते हैं।

२ हे धर्मविशिष्ट स्तोता, तुम्हारा यश श्रेष्ठ है। तुम प्रकृष्ट बुद्धि द्वारा उन्हीं अग्निकी, वचनसे, स्तुति करते हो, जिन्हें दुःख नहीं है, जिनका तेज विचित्र है और जो स्तुति-योग्य है।

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३॥
अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योग्निर्विक्षु प्रशस्यते ॥४॥
नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतेधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

१८ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य द्वित ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशस्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१॥
द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक् स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२॥

३ जो अग्नि जगद्रक्षणसमर्थ बलसे और स्तुतिसे युक्त हैं, जो आदित्यकी तरह द्योतमान हैं, जिन अग्निकी प्रभासे जगत् व्याप्त है, जिन अग्निकी बृहती दीप्ति प्रकाशित होती है, उन्हीं अग्निकी प्रभासे यह आदित्य प्रभावान् होते हैं

४ सुन्दर मतिवाले ऋत्विक् दर्शनीय अग्निका यज्ञ (पूजा) करके धन और रथ प्राप्त करते हैं। यज्ञार्थ आहूत होनेवाले अग्नि उत्पन्न होते ही, सम्पूर्ण प्रजा द्वारा, स्तुत होते हैं ।

५ हे अग्नि, हम लोगोंको शीघ्र ही वही वरणीय धन दान करो, जिस धनको स्तोता लोग तुम्हारी स्तुति करके प्राप्त करते हैं । हे बलपुत्र, हमें अभिलषित अन्न प्रदान करो, हम लोगोंकी रक्षा करो । हम मङ्गलकारक पशु आदिकी याचना तुमसे करते हैं। हे अग्नि, तुम संग्राममें हम लोगोंकी समृद्धिके लिये, होओ ।

---

१ अग्नि बहुप्रिय हैं, यजमानोंके लिये धनदाता हैं और यजमानोंके गृहमें अभिगमन करते हैं। इस तरहके अग्नि प्रातःकालमें स्तुत होते हैं । अमरणशील अग्नि यजमानोंके मध्यमें स्थित निखिल हव्यकी कामना करते हैं ।

२ हे अग्नि, अत्रिपुत्र द्वित ऋषि विशुद्ध हव्य वहन करते हैं, तुम उन्हें अपना बल प्रदान करो; क्योंकि वे सब कालमें तुम्हारे लिये सोमरसका आनयन करते हैं और तुम्हारी स्तुति करते हैं।

तं वो दीर्घायु शोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥३॥
चित्र वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥४॥
ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत् कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५॥

१६ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य वव्रि ऋषि । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

अभ्यवस्थाः प्रजायन्ते प्रवव्रेर्वव्रिश्चिकेत ।
उपस्थे मातुर्विचष्टे ॥१॥
जुहुरे विचितयन्तोनिमिषं नृम्णं पान्ति ।
आदृह्लां पुरं विविशुः ॥२॥

३ हे अग्नि, हे अश्वदाता, तुम दीर्घगमन-दीप्तिवाले हो। धनिकोंके लिये हम तुम्हारा आह्वान, स्तोत्र द्वारा, करते हैं, जिससे धनिकोंका रथ शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर युद्धमें गमन करे।

४ जिन ऋत्विकों द्वारा नानाविध यज्ञ-विषयक कार्य सम्पादन होता है, जो मुख (उच्चारण) द्वारा स्तोत्रोंकी रक्षा करते हैं, उन ऋत्विकों द्वारा, यजमानोंके स्वर्गप्रापक यज्ञमें, विस्तीर्ण कुशोंके ऊपर अन्न स्थापित होता है।

५ हे अमर अग्नि, तुम्हारी स्तुतिके अनन्तर जो धनदाता मुझे पचास अश्व प्रदान करते हैं, तुम उन धनिक मनुष्योंको दीप्तिशील परिचारकयुक्त महान् अन्न प्रदान करो।

---

१ जो अग्नि माता पृथिवीके समीप स्थित होकर पदार्थजातको देखते हैं, वे ही अग्नि वव्रि ऋषिकी अशोभन दशाको जानें और उनके हव्यको ग्रहण कर उसका अपनोदन करें।

२ तुम्हारे प्रभावको जानकर जो लोग, यज्ञके लिये, सदा तुम्हारा आह्वान करते हैं तथा जो लोग हवि और स्तोत्रके द्वारा तुम्हारे बलकी रक्षा करते हैं, वे शत्रुओं द्वारा अशक्य (दुर्गम्य) पुरीमें प्रवेश करते हैं।

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एनामध्वा न वाजयुः ॥३॥
प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोदब्धः शश्वतो दभः ॥४॥
क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥

२० सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य प्रयस्वत् ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१॥

३ महान् स्तोत्र करनेवाले, अन्नाभिलाषी, सुवर्णालङ्कारको कण्ठमें धारण करनेवाले, जायमान (उत्पन्नशील) मनुष्य (ऋत्विगादि) स्तोत्र द्वारा, अन्तरिक्षवर्ती वैद्युत अग्निके दीप्तिमान् बलको वर्धित करते हैं ।

४ पयोमिश्रित हव्यकी तरह जिन अग्निके जठरमें अन्न है अर्थात् जो हव्यजठर हैं, जो स्वयम् शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर सदा शत्रुओंके हिंसक हैं, द्यावापृथिवीके सहायभूत वे ही अग्नि दुग्धकी तरह कमनीय और निर्दोष होकर हमारे स्तोत्रको सुनें ।

५ हे प्रदीप्त अग्नि, तुम अपने द्वारा किये गये भस्मसे वनमें क्रीड़ा करते हो । प्रेरक वायु द्वारा भली भाँतिसे ज्ञायमान होकर तुम हमारे अभिमुख होओ । तुम्हारी शत्रुनाशक ज्वालाएँ हम यजमानोंके निकट सुकोमल हों ।

---

१ हे अग्नि, हे अत्यन्त अन्नप्रद, हम लोगों द्वारा प्रदत्त जो हविस्वरूप अन्न तुम्हारा अभिमत है, हम लोगोंकी स्तुतियोंके साथ उसी हव्यधनको तुम देवोंके निकट ले जाओ ।

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अपह्वरोन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२॥
होतारं त्वा वृणीमहेग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यां गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३॥
इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिःष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥४॥

---

२१ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य सस ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

मनुष्वत्त्वा निधीमहि मनुष्वत् समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१॥
त्वं हि मानुषे जनेग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ॥२॥

२ हे अग्नि, जो व्यक्ति पशुआदि धनसे समृद्ध होकर तुम्हे हव्य प्रदान नहीं करता है, वह अन्न या बलसे अत्यन्त हीन होता है । जो व्यक्ति वेद-भिन्न अन्य कर्म करता है, वह असुर तुम्हारा विरोध-भाजन होता है और तुम्हारे द्वारा हिंसित होता है ।

३ हे अग्नि, तुम देवोंके आह्वाता और बलके साधयिता हो ! हम लोग प्रयस्वत् (अन्नवान्) तुम्हारा वरण करते हैं । यज्ञमें हम श्रेष्ठ अग्निको, स्तुतिरूप वचनसे, स्तवन करते है ।

४ हे बलवान् अग्नि, प्रतिदिन जिससे हम तुम्हारी रक्षा प्राप्त करें, वैसा करो । हे सुक्रतु, हम लोग जिससे धन लाभ कर सकें और यज्ञ कर सकें, वैसा करो । हम लोग जिससे गौओंको प्राप्त करें और वीर पुत्रोंको प्राप्त कर सुखी हों, वैसा करो ।

---

१ हे अग्नि, मनुकी तरह हम तुम्हें स्थापित और संदीप्त करते हैं । हे अङ्गारात्मक अग्नि, देवाभिलाषी मनुष्य यजमानोंके लिये तुम देवोंका यजन करो ।

२ हे अग्नि, स्तोत्रों द्वारा सुप्रीत होकर तुम मनुष्योंके लिये दीप्त होते हो । हे सुजात, घृतयुक्तान्न, हव्य-विशिष्ट पात्र तुम्हें निरन्तर प्राप्त करता है ।

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्य्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीडते ॥३॥
देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः॥४॥

२२ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य विश्वसामा ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१॥
न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२॥
चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेवस इयानासो अमन्महि ॥३॥
अग्ने चिकिद्ध्यस्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४॥

३ हे क्रान्तदर्शी अग्नि, प्रसन्न होकरके सब देवोंने तुम्हें दूत बनाया था; इसीलिये परिचर्या करनेवाले यजमान तुम्हारा (अग्नि देवका), यज्ञमें देवोंको बुलानेके लिये, यजन करते हैं।

४ हे दीप्तिशील अग्नि, मनुष्य लोग देवयज्ञके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं। हवि द्वारा प्रवृद्ध होकर तुम दीप्त होओ। तुम सत्यभूत सस ऋषिके स्वर्गसाधन यज्ञस्थलमें देवरूपसे ठहरो।

---

१ हे विश्वसामा ऋषि, तुम अत्रिकी तरह शोधक दीप्तिवाले उन अग्निकी अर्चना करो, जो यज्ञमें सब ऋत्विकों द्वारा स्तुत्य हैं, देवोंके आह्वाता हैं और जो अत्यन्त स्तवनीय हैं।

२ हे यजमानो, तुम सब जातवेदा, द्योतमान् और यज्ञकारक अग्निको धारण करो—संस्थापित करो, जिससे आज देवोंके प्रिय, यज्ञसाधन और हम लोगोंके द्वारा प्रदत्त हव्य अग्निको प्राप्त करे।

३ हे दीप्तिशील अग्नि, तुम्हारा हृदय ज्ञानसम्पन्न है। तुम्हारे निकट हम लोग रक्षाके लिये उपस्थित होते हैं। हम मनुष्य सम्भजनीय अग्निको तृप्त करनेके लिये स्तवन करते हैं।

४ हे बलपुत्र अग्नि, तुम हमारे इस परिचरण स्तवनको जानो। हे सुन्दर हनू-नासिकावाले, हे गृहपति, अत्रिके पुत्र स्तोत्रों द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं और वचनों द्वारा अलङ्कृत करते हैं।

२३ सूक्त

अग्नि देवता। अत्रिके अपत्य द्युम्न ऋषि। अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द।

अग्ने सहन्तमाभर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम्।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥१॥
त्वमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आभर।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥२॥
विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३॥
स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥४॥

---

२४ सूक्त

अग्नि देवता। बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु क्रमसे चारों ऋचाओंके ऋषि हैं। ये गौपायन एवम् लौपायन नामसे प्रसिद्ध हैं। चार द्विपदासे विराट छन्द।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥१-२॥

---

१ हे अग्नि, तुम मुझ द्युम्न ऋषिके लिये एक बलशाली शत्रु-विजेता पुत्र प्रदान करो। जो पुत्र स्तोत्रसे युक्त होकर संग्राममें निखिल शत्रुओंको अभिभूत करे।

२ हे बलवान् अग्नि, तुम सत्यभूत, अद्भुत, और गोयुक्त अन्नके दाता हो। तुम इस तरहका एक पुत्र प्रदान करो, जो सेनाओंका अभिभूत करनेमें समर्थ हो।

३ हे अग्नि, तुम देवोंके आह्वाता और सबके प्रियकर हो। समान प्रीतिवाले और कुशाच्छेद करनेवाले निखिल ऋत्विक् यज्ञगृहमें बहुविध वरणीय धनकी याचना करते हैं।

४ हे अग्नि, लोकप्रसिद्ध विश्वचर्षणि ऋषि शत्रुओंके हिंसक बलको धारण करें। हे द्युतिमान्, तुम हमारे गृहमें धनयुक्त प्रकाश करो। हे पापशोधक अग्नि, तुम दीप्तियुक्त और यशोयुक्त होकर दीप्यमान होओ।

१-२ हे अग्नि, तुम सम्भजनीय, रक्षक और सुखकर हो। तुम हमारे निकटतम होओ। हे गृहदाता और अन्नदाता, तुम हम लोगोंके प्रति अनुकूल होकर अतिशय दीप्तिशील पशुस्वरूप धन हम लोगोंको प्रदान करो।

स नो बोधि श्रुधि हवमुरुष्याणो अघायतः समस्मात् ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३-४॥

२५ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिके अपत्य वसुयु ऋषि अनुष्टुप् छन्द ।

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत् पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥१॥
स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित् सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥२॥
स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥३॥
अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ४ ॥

३-४ हे अग्नि, तुम हम लोगोंको जानो । हम लोगोंके आह्वानको श्रवण करो । समस्त पापाचारियोंसे हम लोगोंकी रक्षा करो । हे अपने तेजसे प्रदीप्त अग्नि, हम लोग सुखके लिये और पुत्रके लिये तुमसे याचना करते है ।

१ हे वसुयु ऋषियो, रक्षाके लिये तुम लोग अग्निका स्तवन करो । अग्निहोत्रके लिये यजमानोंके घरमें रहनेवाले अग्नि हम लोगोंकी कामना पूर्ण करें । ऋषियोंके पुत्र (अरणि-मन्थनसे उत्पन्न) सत्यवान् अग्नि हम लोगोंका शत्रुओंसे रक्षा करें ।

२ पूर्ववर्ती महर्षियों और देवोंने जिन अग्निको सन्दीप्त किया था, जो अग्नि मोदनजिह्व (हव्य ग्रहण करके जिनकी जिह्वा मुदित होती है), शोभन दीप्तिसे युक्त, अतिशय प्रभावान् और देवोंके आह्वाता हैं, वे अग्नि सत्यप्रतिज्ञ है ।

३ हे स्तुतियों द्वारा स्तूयमान और वरणीय अग्नि, तुम हम लोगोंके अतिशय प्रशस्य और अत्यन्त श्रेष्ठ परिचरणात्मक कर्मसे और शस्त्र (स्तोत्र)से प्रसन्न होकर हम लोगोंको धन प्रदान करो ।

४ जो अग्नि देवोंके मध्यमें देवता रूपसे प्रकाशित होते हैं, जो मनुष्योंके बीच आहवनीय रूपसे प्रविष्ट होते हैं और जो हम लोगोंके यज्ञोंमें, देवताके लिये, हव्य वहन करते है, हे यजमानो, स्तुतियों द्वारा तुम लोग उन अग्निकी परिचर्या करो ।

अग्निस्तुविश्रवस्तम तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥५॥
अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥६॥
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७॥
तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥८॥
एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९॥

२६ सूक्त

अग्नि देवता । वसुयु ऋषि । गायत्री छन्द ।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१॥

५ हवि देनेवाले यजमानोंको अग्नि एक ऐसा पुत्र प्रदान करें, जो बहुविध अन्नोंसे युक्त, बहुत स्तोत्रवाला, उत्तम, शत्रुओं द्वारा अहिंसित और अपने कर्मसे पिता-पितामह आदिके यशको प्रख्यात करनेवाला हो ।

६ अग्नि हम लोगोंको उस तरहका पुत्र दें, जो सत्यका पालन करनेवाला हो और अपने परिजनोंके साथ, युद्धमें, शत्रुओंको पराभूत करनेवाला हो एवम् द्रुत वेगवाला और शत्रुओंको जीतनेवाला घोड़ा भी दें ।

७ जो श्रेष्ठतम स्तोत्र है, वह अग्निके लिये ही किया जाता है । हे तेजोधन अग्नि, हम लोगोंको बहुत धन प्रदान करो; क्योंकि तुम्हारे समीपसे ही महान् धन उत्पन्न हुए हैं और निखिल अन्न भी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं ।

८ हे अग्नि, तुम्हारी शिखाएँ दीप्तिमती हैं । तुम सोमलतापेषक पत्थरकी तरह महान् कहे जाते हो । तुम द्योतमान् हो । तुम्हारा शब्द मेघगर्जनकी तरह ऊपरमें व्याप्त होता है ।

९ हम (वसुयुगण) इस प्रकारसे बलवान् अग्निका स्तवन करते हैं । शोभनकर्मा अग्नि हम लोगोंको निखिल शत्रुओंसे उत्तीर्ण करें, जैसे नौका द्वारा नदी पार की जाती है ।

---

१ हे शोधक और द्योतमान् अग्नि, तुम अपनी दीप्तिसे और देवोंको प्रहृष्ट करनेवाली जिह्वासे, यज्ञमें देवोंको आनयन करो और उनका यजन करो ।

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
देवाँ आ वीतये वह ॥२॥
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।
अग्ने बृहन्त मध्वरे ॥३॥
अग्ने विश्वेभिरागहि देवेभिर्हव्यदातये ।
होतारं त्वा वृणीमहे ॥४॥
यजमनाय सुन्वत अग्ने सुवीर्यं वह ।
देवैरासत्सि बर्हिषि ॥५॥
समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानाँ दूत उक्थ्यः ॥६॥
न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम । दधाता देव मृत्विजम् ॥७॥
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदं ॥८॥
एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः । देवासः सर्वया विशा ॥९॥

---

२ हे घृतोत्पन्न और हे बहुविध रश्मिवाले अग्नि, तुम सर्वद्रष्टा हो । हम लोग तुमसे याचना करते हैं कि, हव्य भक्षणके लिये तुम देवोंका वहन करो ।

३ हे क्रान्तदर्शी (ज्ञानसम्पन्न) अग्नि, तुम हव्य-भक्षणशील, दीप्तिमान् और महान् हो । हम लोग तुम्हें यज्ञस्थलमें सन्दीप्त करते हैं ।

४ हे अग्नि, सब देवोंके साथ तुम हव्यदाता यजमानके यज्ञमें उपस्थित होओ । तुम देवोंके आह्वानकारी हो । हम लोग तुमसे प्रार्थना करते हैं ।

५ हे अग्नि, अभिषव (यज्ञस्नान) करनेवाले यजमानको तुम शोभन बल प्रदान करो एवम् देवोंके साथ कुशपर उपवेशन करो ।

६ हे सहस्रोंको जीतनेवाले अग्नि, हवि द्वारा प्रज्वलित होकर, प्रशस्यमान होकर और देवोंके दूत होकर तुम हम लोगोंके यज्ञकर्मका पोषण करते हो ।

७ हे यजमानो, तुम लोग अग्निको संस्थापित करो । वे भूतजातको जाननेवाले, यज्ञके प्रापक, युवतम द्योतमान और ऋत्विक् (यष्टा) हैं ।

८ प्रकाशमान स्तोताओं द्वारा प्रदत्त हविरन्न आज देवोंके निकट निरन्तर गमन करे । हे ऋत्विक् तुम अग्निके उपवेशनार्थ (बैठनेके लिये) कुश विस्तृत करो--बिछाओ ।

९ मरुद्गण, देवभिषक् अश्विद्वय, सूर्य, वरुण आदि देव अपने परिजनोंके साथ कुशपर उपवेशन करें ।

---

२७ सूक्त

अग्नि देवता। ६ के अग्नि और इन्द्र देवता। अत्रि ऋषि अथवा त्रिवृष्णके अपत्य त्र्यरुण, पुरुकुत्सके अपत्य त्रसदस्यु और भरतके अपत्य अश्वमेध ऋषि। त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द।

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥१॥
यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥२॥
एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥३॥
यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये।
ददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥४॥
यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥५॥

१ हे मनुष्योंके नेता अग्नि, तुम साधुओंके पालक, ज्ञानसम्पन्न, बलवान् और धनवान् हो। त्रिवृष्णके पुत्र त्र्यरुण नामक राजर्षिने शकट-संयुत दो वृषभ और दस सहस्र सुवर्ण मुझे प्रदान करके ख्यातिलाभ किया था अर्थात् उसी दानके कारण सब लोगोंने उन्हें जाना था।

२ जिस त्र्यरुणने मुझे सौ सुवर्ण, बीस गौएं और रथसे युक्त भार वहन करनेवाले दो घोड़े दिये थे, हे वैश्वानर अग्नि, हम लोगोंके द्वारा स्तुत होकर और हवि द्वारा वर्द्धमान होकर तुम उस त्र्यरुणको सुख प्रदान करो।

३ हे अग्नि, हम बहुत सन्तानवालोंको स्तुतिसे प्रसन्न होकर त्र्यरुणने जैसे हमें कहा था, "यह ग्रहण करें, यह ग्रहण करें।" हे स्तुतियोग्य अग्नि, वैसे ही तुम्हारी स्तुति कामना करनेवाले त्रसदस्युने भी हमसे प्रार्थना की थी कि, "यह ग्रहण करें, यह ग्रहण करें।"

४ हे अग्नि, जब कोई भिक्षाभिलाषी, तुम्हारी स्तुतिके साथ, धनदाता राजर्षि अश्वमेधके निकट जाकर कहता है कि, "हमें धन दो," तब वे उस याचकको धन देते हैं। हे अग्नि, यज्ञकी इच्छा करनेवाले अश्वमेधको तुम यज्ञ करनेकी बुद्धि प्रदान करो।

५ राजर्षि अश्वमेध द्वारा प्रदत्त, अभिलाषाओंके पूरक सौ बैलोंने हमें प्रमुदित किया है। हे अग्नि, दही, सत्तू और दूध आदि तीन द्रव्योंसे मिश्रित सोमकी तरह वे बैल तुम्हारी प्रीतिके लिये हों।

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥६॥

---

२८ सूक्त

*अग्नि देवता । अत्रिगोत्रोत्पन्ना विश्ववारा ऋषि । * त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और गायत्री छन्द ।*

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया विभाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईलाना हविषा घृताची ॥१॥
समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृवन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यामिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत् पुरः ॥२॥
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभीतिष्ठा महांसि ॥३॥

---

६ हे इन्द्र और अग्नि, तुम दोनों याचकोंके लिये, अपरिमित धनके दाता राजर्षि अश्वमेधको अन्तरिक्ष-स्थित सूर्यकी तरह, शोभन बलके साथ (दीप्तिमान्), महान् और जरारहित (अक्षय) धन प्रदान करो ।

---

१ भलीभाँतिसे दीप्त अग्नि द्योतमान अन्तरिक्षमें तेजको प्रकाशित करते हैं और उषाके अभिमुख विस्तृत होकर विशेष शोभा पाते हैं । इन्द्र आदि देवोंका स्तवन करती हुई और पुरोडाश आदिसे युक्त स्रुक्को लेकर विश्ववारा पूर्वकी ओर मुँह करके अग्निके अभिमुख गमन करती है ।

२ हे अग्नि, तुम भली भाँतिसे प्रज्वलित होकर उदकके ऊपर प्रभुत्व करते हो और हव्यदाता यजमान द्वारा, मङ्गलार्थ, सेवित होते हो । तुम जिस यजमानके निकट गमन करते हो, वह पशु आदि समस्त धनको धारण करता है । हे अग्नि, तुम्हारे आतिथ्य-योग्य हव्यको वह यजमान तुम्हारे सम्मुख स्थापित करता है ।

३ हे अग्नि, तुम हम लोगोंके प्रभूत ऐश्वर्यके लिये और शोभन धनके लिये शत्रुओंको दमन करो । तुम्हारे धन या तेज उत्कृष्ट हों । हे अग्नि, तुम दाम्पत्य कार्यको, अच्छी तरहसे, सुनियमित करो और शत्रुओंके तेजको आक्रान्त करो ।

---

* उस समय स्त्रियाँ विदुषी होती थीं, वेद पढ़ती थीं, वेद-मन्त्रोंको सङ्कलित करती थीं और पतिके साथ यज्ञसम्पादन करती थीं । इस सूक्तके ऊपर विचार करनेसे ये बातें स्पष्ट हो जाती हैं ।

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥४॥
समिद्धो अग्न आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर ।
त्वं हि हव्यवालसि ॥५॥
आ जुहोता दुवस्याग्निं प्रयत्यध्वरे ।
वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥६॥

२९ सूक्त

इन्द्र देवता एवम् नवम ऋक्के प्रथम चरणके उशना देवता । शक्तिगोत्रोत्पन्ना गौरिवीति ऋषि।
त्रिष्टुप् छन्द ।

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्तः ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥१॥
अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥२॥

---

४ हे अग्नि, जब तुम प्रज्वलित और दीप्तिमान होते हो, तब हम यजमान तुम्हारी दीप्तिका स्तवन करते हैं। तुम कामनाओंके पूरक, धनवान् और यज्ञस्थलमें भली भाँतिसे दीप्त होते हो।

५ हे अग्नि, हे यजमानों द्वारा आहूत, हे शोभन यज्ञवाले, भली भाँतिसे दीप्त होकर तुम इन्द्र आदि देवोंका यजन करो; क्योंकि तुम हव्यका वहन करते हो।

६ हे ऋत्विको, तुम लोग हमारे यज्ञमें प्रवृत्त होकर हव्यवाहक अग्निमें हवन करो और उनका परिचरण तथा सम्भजन करो एवम् देवोंके निकट हव्य वहनार्थ उनका वरण करो।

---

१ मनुसम्बन्धी यज्ञमें जो तीन तेज हैं तथा अन्तरिक्षमें उत्पन्न होनेवाले जो रोचमान वायु, अग्नि और सूर्यात्मक तेज हैं, उनको मरुतोंने धारण किया है। हे इन्द्र, शुद्ध बलवाले मरुद्गण तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम बुद्धिमान् हो, इन मरुतोंको देखो।

२ जब मरुतोंने अभिषुत सोमरसके पानसे तृप्त इन्द्रकी स्तुति की, तब इन्द्रने वज्र ग्रहण किया और वृत्रको मारा एवम् वृत्रनिरुद्ध महान् जल-राशिको, स्वेच्छानुसारसे, बहनेके लिये मुक्त किया।

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥३॥
आद्रोदसी वितरं विष्कभायत् संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्त्तीमिन्द्रो अपजगु राणः प्रति श्वसन्तमव दानवंहन् ॥४॥
अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत् सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥५॥
नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥६॥
सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥७॥
त्रीयच्छता महिषाणामघोमास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवाभरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥८॥

३ हे बृहत् मरुतो, तुम सब और इन्द्र भली भाँतिसे हमारे इस अभिषुत सोमरसका पान करो। तुम लोगोंके द्वारा यह सोमात्मक हव्य पिया जाय, जिससे मनुष्य यजमान गौओंको प्राप्त करे। इस सोमरसको पीकर इन्द्रने वृत्रको मारा था।

४ सोमपानके अनन्तर इन्द्रने द्यावापृथिवीको निश्चल किया था। गमनशील होकर इन्द्रने मृगवत् पलायमान वृत्रको भयभीत किया था। दनुपुत्र (वृत्र) छिप रहा था और भयसे श्वास ले रहा था। इन्द्रने उसे आच्छादनविहीन करके मारा था।

५ हे धनवान् इन्द्र, तुम्हारे इस कर्मसे वह्नि आदि निखिल देवोंने तुम्हें अनुक्रमसे सोमरस, पानके लिये, दिया था। तुमने एतशके लिये सम्मुखवर्ती सूर्यके अश्वोंका गतिरोध किया था।

६ जब धनवान् इन्द्रने वज्र द्वारा शम्बरके ९९ नगरोंको एक कालमें ही विनष्ट किया था, तब मरुतोंने संग्राम-भूमिमें ही इन्द्रकी स्तुति, त्रिष्टुप् छन्दसे, की थी। इस तरहसे मरुतोंके मन्त्रों द्वारा स्तुत होनेपर दीप्त इन्द्रने शम्बर असुरको पीड़ित किया था।

७ इन्द्रके मित्रभूत अग्निने मित्र इन्द्रके कार्यके लिये सौ महिषोंको शीघ्र ही पकाया था। परमैश्वर्ययुक्त इन्द्रने वृत्रको मारनेके लिये मनु-सम्बन्धी तीन पात्रोंमें स्थित सोमरसको एक कालमें ही पिया था।

८ हे इन्द्र, जब तुमने तीन सौ महिषोंके मांसका भक्षण किया था, धनवान् होकर जब तुमने तीन पात्रोंमें स्थित सोमरसका पान किया था, जब तुमने वृत्रका वध किया था, तब सब देवोंने युद्धके लिये सोमपानसे पूर्ण इन्द्रका आह्वान किया था, जैसे स्वामी दासका आह्वान करते हैं।

उशना यत्सहस्यैरयातं गृहमिन्द्र जुजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥९॥
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः ॥१०॥
स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरंधयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥११॥
नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥१२॥
कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥१३॥

९ हे इन्द्र, तुम और कवि (उशना) जब अभिभवनशील एवम् द्रुतगामी अश्वोंके साथ कुत्सके गृहमें उपस्थित हुए थे, तब तुमने शत्रुओंको हिंसित करके कुत्स और देवोंके साथ एक रथपर आरूढ़ हुए थे। हे इन्द्र, शुष्णनामक असुरको तुमने ही मारा है।

१० हे इन्द्र, पहले ही तुमने सूर्यके दो चक्रोंमेंसे एक चक्रेको पृथक् किया था एवम् दूसरे एक चक्केको तुमने धन-लाभके लिये कुत्सको दिया था। तुमने शब्द-रहित असुरोंको हतबुद्धि करके वज्र द्वारा संग्राममें मारा था।

११ हे इन्द्र, गौरिवीति ऋषिके स्तोत्र तुम्हें वर्द्धित करें। तुमने विदथिपुत्र ऋजिश्वाके लिये पिप्रु नामक असुरको वशीभूत किया था। ऋजिश्वा नामवाले किसी ऋषिने तुम्हारी सखिताके लिये पुरोडाश आदिको पकाकर तुम्हें अभिमुख किया था। तुमने ऋजिश्वाके सोमका पान किया था।

१२ नौ महीनोंमें समाप्त होनेवाले और दस महीनोंमें समाप्त होनेवाले यज्ञको करनेवाले अङ्गिरा लोग सोमाभिषव करके अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा इन्द्रकी स्तुति करते हैं। स्तुति करनेवाले अङ्गिरा लोगोंने असुरों द्वारा आच्छादित गो-समूहको उन्मुक्त किया था।

१३ हे धनवान् इन्द्र, तुमने जिस वीर्य (पराक्रम) को प्रकट किया था, हम उसको जानते हुए भी किस प्रकारसे तुम्हारे लिये प्रकट करें—क्योंकर स्तवन करें? हे बलवान् इन्द्र, तुम जिस नूतन वीर्य (पराक्रम) को प्रकट करोगे, हम यज्ञमें तुम्हारे उस वीर्यका कीर्तन करेंगे।

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन् कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्या ॥१४॥
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥१५॥

---

३० सूक्त

इन्द्र देवता और कहीं ऋणञ्चय राजा देवता । बभ्रु ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

कस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥१॥
अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२॥
प्र नु वयं सुते या ते कृतानींद्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेयं मघवा सर्वसेनः ॥३॥

---

१४ हे इन्द्र, तुम शत्रुओं द्वारा दुर्द्धर्ष हो । तुमने अपने प्रकृत बलसे प्रत्यक्ष दृश्यमान बहुतेरे भुवन-जातको किया है । हे वज्रधर, शत्रुओंको शीघ्र ही विनष्ट करते हुए तुम जो कुछ करते हो, तुम्हारे उस बल या कर्मका निवारण कोई भी नहीं कर सकता है ।

१५ हे अतिशय बलवान् इन्द्र, हम लोगोंने आज तुम्हारे लिये जिन नूतन स्तोत्रोंको किया है, हम लोगों द्वारा विहित उन सकल स्तोत्रोंको तुम ग्रहण करो । हम धीमान्, शोभन कर्म करनेवाले और धनाभिलाषी है । इन भजनीय स्तोत्रोंको हम वस्त्र और रथकी तरह तुम्हें अर्पित करते हैं ।

---

१ वज्रधर, बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र दान योग्य धनके साथ सोमाभिषव करनेवाले यजमानकी इच्छा करते हुए, रक्षाके लिये यजमानके गृहमे जाते है । वह पराक्रमी इन्द्र कहाँ विद्यमान हैं ? अपने दोनों घोड़ों द्वारा आकृष्ट सुखकर रथपर जानेवाले इन्द्रको किसने देखा है ?

२ हमने इन्द्रके अन्तर्हित और उग्र स्थानको देखा है । अन्वेषण करते हुए हम आधारभूत इन्द्रके स्थानमें गये हैं । हमने अन्य विद्वानोंसे भी इन्द्रके सम्बन्धमें पूछा है । पूछे जानेपर यज्ञके नेता और ज्ञानाभिलाषियोंने हमें कहा कि, हम लोगोंने इन्द्रको प्राप्त किया है ।

३ हे इन्द्र, तुमने जिन कार्योंको किया है, सोमाभिषव करनेपर हम स्तोता उनका वर्णन करते है । तुमने भी हमारे लिये जिन कर्मोंका सेवन किया है, उन कर्मोंको इसके पहले नहीं जाननेवाले लोग जानें । जो लोग जानते हैं, वे नहीं जाननेवालोंको सुनावें । सब सेनाओंसे युक्त होकर धनवान् इन्द्र अश्वपर आरोहण कर उन जाननेवाले और सुननेवालेके पास गमन करें ।

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४॥
परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५॥
तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥६॥
वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन् गवा मघवन्त्संचकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥८॥

४ हे इन्द्र, उत्पन्न होते ही तुमने सब शत्रुओंको जीतनेके लिये चित्तको स्थिर [दृढ़ संकल्प] किया था। हे इन्द्र, अकेले ही तुमने बहुतेरे राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये गमन किया था। गौओंके आवरक पर्वत को तुमने बल द्वारा विदीर्ण किया था। तुमने क्षीरदायिनी गौओंके समूहको प्राप्त किया था।

५ हे इन्द्र तुम सर्व-प्रधान और उत्कृष्टतम हो। दूरसे ही श्रवणीय नामको धारण करके जब तुम उत्पन्न हुए थे, तब अग्नि आदि देवता इन्द्रसे भयभीत हुए थे। वृत्र द्वारा पालित सकल उदकको इन्द्रने वशीभूत किया था।

६ ये स्तुतिपाठ करनेवाले सुखी मरुद्गण स्तोत्र द्वारा सुख उत्पन्न करते हैं। हे इन्द्र, ये तुम्हारा ही स्तवन करते हैं और सोमलक्षण अन्न प्रदान करते हैं। जो वृत्र समस्त जलराशिको आच्छन्न करके निद्रित था, अपनी शक्ति द्वारा इन्द्रने उस कपटी और देवोंको बाधा पहुचानेवाले वृत्रको अभिभूत किया था।

७ हे धनवान् इन्द्र, हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम देवपीड़क वृत्रको वज्र द्वारा पीड़ित करो। तुमने जन्मसे ही शत्रुओंका संहार किया है। हे इन्द्र, इस युद्धमें तुम हमारे सुखके लिये दास नमुचिके सिरको चूर्ण करो।

८ हे इन्द्र, तुमने शब्द करनेवाले और भ्रमण-शील मेघकी तरह, दास नमुचि असुरके मस्तकको चूर्ण करके हमारे साथ मैत्री की थी। उस समय मरुतोंके प्रभावसे द्यावापृथिवी चक्रकी तरह घूमने लगी थी।

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥९॥
समत्र गावोभितोनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सन्ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥१०॥
यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥११॥
भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन् गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२॥
सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥१३॥
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥

९ दास नमुचिने स्त्रियोंको युद्धसाधन (सेना) बनाया था । असुरकी वह स्त्री-सेना मेरा क्या कर लेगी ? इस तरह सोचकर इन्द्रने उन सेनाओंके मध्यसे उस असुरकी दो प्रेयसी स्त्रियोंको, गृह-मध्यमें, रख लिया और नमुचिसे लड़नेके लिये प्रस्थान किया ।

१० जब गौएँ बछड़ोंसे वियुक्त हुई थीं, तब उस समय वे नमुचि द्वारा अपहृत गौएँ इधर-उधर सर्वत्र भटक रही थीं । बभ्रु ऋषि द्वारा अभिषुत सोमसे जब इन्द्र प्रहृष्ट हुए, तब समर्थ मरुतोंके साथ इन्द्रने बभ्रुकी गौओंको बछड़ोंके साथ मिला दिया ।

११ जब बभ्रुके अभिषुत सोमने इन्द्रको प्रहृष्ट किया, तब कामनाओंके पूरक इन्द्रने, संग्राममें, महान् शब्द किया । पुरन्दर [नगर-विनाशक] इन्द्रने सोम पान किया और बभ्रुको फिरसे दुग्ध देनेवाली गौएँ दीं ।

१२ हे अग्नि, ऋणञ्चय राजाके किंकर रुशम देशवासियोंने मुझे चार सहस्र गौएँ देकर कल्याण-कारक कर्म किया था । नेताओंके बीच श्रेष्ठ नेता ऋणञ्चय राजा द्वारा प्रदत्त गोरूप रत्नोंको मैंने ग्रहण किया है ।

१३ हे अग्नि, ऋणञ्चय राजाके किंकर रुशम देशवासियोंने मुझे अलङ्कार और आच्छादन आदिसे सुसज्जित गृह तथा हजार गौएँ दी हैं । रात्रिके बीतनेपर अर्थात् उषाकालमें सरस सोमने इन्द्रको प्रसन्न किया था [गौओंको पाकर बभ्रु ने तुरत ही इन्द्रको सोमरस पिलाया था] ।

१४ रुशम देशके राजा ऋणञ्चयके समीपमें ही सर्वत्र गमन करनेवाली रात्रि बीत गयी । बुलाये जानेपर बभ्रु ऋषिने वेगवान् घोड़ेकी तरह चार सहस्र शीघ्रगामिनी गौओंको प्राप्त किया ।

चतुः सहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥

३१ सूक्त

इन्द्र देवता । अत्रिके अपत्य अवस्यु ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१॥
आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनांश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२॥
उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा सम्ववृत्वत्तमोवः ॥३॥
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४॥

---

१५ हे अग्नि, हमने रुशम देशवासियोंसे चार सहस्र गौएँ प्राप्त की हैं। हम मेधावी हैं। यज्ञके लिये महावीरकी तरह सन्तप्त हिरण्मय कलशको, हमने रुशम देशवासियोंसे दूध दूहने के लिये, ग्रहण किया है।

——

१ धनवान् इन्द्र जिस रथ पर अधिष्ठान करते हैं, उस रथका संचालन भी करते हैं। गोपालक जिस तरहसे पशुओंके समूहको प्रेरित करते हैं, उसी तरहसे इन्द्र शत्रुसेनाओंको प्रेरित करते हैं। शत्रुओं द्वारा अहिंसित और देव-श्रेष्ठ इन्द्र शत्रुओंके धनकी कामना करते हुए गमन करते हैं।

२ हे हरिनामक अश्ववाले, तुम हम लोगोंके अभिमुख भली भाँतिसे गमन करो; किन्तु हम लोगोंके प्रति हीनमनोरथ—उदासीन—मत होओ। हे बहुविध धनवाले इन्द्र, तुम हम लोगोंका सेवन करो। हे इन्द्र, दूसरी कोई भी वस्तु तुमसे श्रेष्ठ नहीं है। अपत्नीकोंको तुम स्त्री प्रदान करते हो।

३ जब सूर्यका तेज उषाके तेजमें बढ़ जाता है, तब इन्द्र यजमानोंको निखिल धन प्रदान करते हैं। वे निवारक पर्वतके मध्यसे दुग्धदायिनी निरुद्ध गौओंको मुक्त करते हैं और तेज द्वारा संवरणशील (सर्वत्र व्याप्त) अन्धकारको दूर करते हैं।

४ हे बहुजनाहूत इन्द्र, ऋभुओंने तुम्हारे रथको घोड़ोंसे संयुक्त होनेके योग्य बनाया है, त्वष्टाने तुम्हारे वज्रको द्युतिमान् किया है। इन्द्रकी पूजा करनेवाले अङ्गिरा लोगोंने अथवा मरुतोंने वृत्रवधके लिये लिये, स्तोत्रों द्वारा, इन्द्रको संवर्द्धित किया है।

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोरथा इन्द्रे षिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५॥
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६॥
तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित् परिमाया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥७॥
त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥८॥
इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेनावामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥९॥

५ हे इन्द्र, तुम अभिलाषाओंके पूरक हो। सेचनसमर्थ मरुतोंने जब तुम्हारी स्तुति की थी, तब सोमाभिषव करनेवाले पत्थर भी प्रसन्न होकर संगत हुए थे। इन्द्र द्वारा प्रेषित होनेपर अश्वहीन और रथहीन मरुतोंने अभिगमन करके शत्रुओंको अभिभूत किया था।

६ हे इन्द्र, हम तुम्हारे पुरातन तथा नूतन कर्मोंका स्तवन करते हैं। हे धनवान् इन्द्र, तुमने जिन कार्योंको किया है, हम उसे कहते हैं। हे वज्रधर इन्द्र, तुम द्यावापृथिवीको वशीभूत करके मनुष्योंके लिये विचित्र जल धारण करते हो।

७ हे दर्शनीय तथा बुद्धिमान् इन्द्र, वृत्रको मार करके तुमने जो अपने बलको इस लोकमें प्रकाशित किया है, वह तुम्हारा ही कर्म है। तुमने शुष्ण असुरकी युवतीको ग्रहण किया है। हे इन्द्र, युद्धस्थलमें जाकर तुमने असुरोंको विनष्ट किया है।

८ हे इन्द्र, नदीके तीरमें प्रवृद्ध होकर अर्थात् अवस्थान करके यदु और तुर्वश राजाओंको तुमने वनस्पतियोंको बढ़ानेवाला जल दिया है। हे इन्द्र, कुत्सके प्रति आक्रमण करनेवाले भयानक शुष्णको मार-कर तुमने कुत्सको अपने गृहमें पहुँचा दिया था। तब उशना (भार्गव) और देवोंने तुम दोनोंका सम्भजन किया था।

९ हे इन्द्र और कुत्स, एक रथपर आरूढ़ तुम दोनोंको अश्वगण यजमानोंके निकट आनयन करें। तुम दोनोंने शुष्णको उसके आवासभूत जलसे दूर किया था। तुम दोनोंने धनवान् यजमानोंके हृदयसे अज्ञान-रूप अन्धकारको, दूर किया था।

वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान् कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१०॥
सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः संरिणाति पुरोदधत् सनिष्यति क्रतुं नः ॥११॥
आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२॥
ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३॥

३२ सूक्त

इन्द्र देवता । अत्रिके अपत्य गातु ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अदर्दरुत्समसृजो विखानित्वमर्णवान्वद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वियद्वः सृजो विधारा अवदानवं हन् ॥१॥

---

१० विद्वान अवस्यु नामक ऋषिने वायुकी तरह वेगवान् और रथमें भली भाँतिसे युक्त करनेके योग्य अश्वोंको प्राप्त किया है। हे इन्द्र, अवस्युके मित्रभूत सकल स्तोताओंने, स्तोत्रों द्वारा, तुम्हारे बलको संवर्द्धित किया है ।

११ पूर्वमें जब एतश ऋषिके साथ सूर्यका संग्राम हुआ था, तब इन्द्रने सूर्यके वेगवान् रथकी गतिको अवरुद्ध किया था। इन्द्रने पूर्वमें द्विचक्र रथके एक चक्रको हरण किया था। उसी चक्र द्वारा इन्द्र शत्रुओंका विनष्ट करते हैं। हम लोगोंको पुरस्कृत करके इन्द्र हम लोगोंके यज्ञका सम्भजन करें।

१२ हे मनुष्यो, तुम लोगोंका देखनेके लिये इन्द्र सोमाभिषव करनेवाले मित्रस्वरूप यजमानोंकी इच्छा करते हुए आये है। अध्वर्युगण जिस पत्थरका प्रेरण करते हैं, वह सोमाभिषव करनेवाला पत्थर शब्द करता हुआ वेदीके ऊपर आरोहण करता है।

१३ हे इन्द्र, हे अमरणशील, जो मनुष्य तुम्हारी कामना करता है और शीघ्रतापूर्वक तुम्हारी अभिलाषा करता है, उस मरणशील मनुष्यका कोई अनर्थ नहीं हो। तुम यजमानोंका सम्भजन करो—उनके प्रति प्रसन्न होओ। जिन मनुष्योंके मध्यमें हमलोग स्तोता हैं, वे सब तुम्हारे हों। हे इन्द्र, तुम उन मनुष्योंको बल प्रदान करो।

१ हे इन्द्र, तुमने बरसनेवाले मेघको विदीर्ण किया है और मेघस्थ जलके निर्गमन द्वारको विसृष्ट किया है—बनाया है। हे इन्द्र, तुमने प्रभूत मेघको उद्घाटित करके जल बरसाया है एवम् दनुपुत्र वृत्रका संहार किया है।

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिंचिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥२॥
त्यस्य चिन्महतोनिर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इद प्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥३॥
त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधन्तमोगाम् ।
वृषप्रभर्म्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्रीनि जघान शुष्णम् ॥४॥
त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्रप्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५॥
त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चै रिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥

२ हे वज्रवान् इन्द्र, तुम वर्षाकालमें निरुद्ध मेघोंको बन्धनमुक्त करो। तुम मेघको बलसम्पन्न करो। हे उग्र, जलमें शयन करनेवाले वृत्रको तुमने मारा है और अपने बलको प्रख्यात किया है अर्थात् वृत्रवधके अनन्तर इन्द्र लोगोंके मध्य प्रख्यात होते हैं।

३ अप्रतिद्वन्द्वी एक मात्र इन्द्रने ही प्रभूत मृगकी तरह शीघ्रगामी उस वृत्रके आयुधोंको अपने बल द्वारा विनष्ट किया। उस समय वृत्रके शरीरसे दूसरा अतिशय बलवान् असुर प्रादुर्भूत हुआ। *

४ वर्षणशील मेघके ऊपर प्रहार करनेवाले वज्रधर इन्द्रने वज्र द्वारा बलवान् शुष्णको मारा था। शुष्ण वृत्रासुरके क्रोधसे उत्पन्न होकर अन्धकारमें विचरण करता था और सेचन-समर्थ मेघकी रक्षा करता था। वह सम्पूण प्राणियोंके अन्नको स्वयम् खाकर प्रमुदित होता था।

५ हे इन्द्र, हे बलवान्, मादक सोमरसके पानसे हृष्ट होकर तुमने अन्धकारमें निमग्न युद्धाभिलाषी वृत्रको जाना था। अपनेको मर्महीन (अवध्य) समझनेवाले वृत्रके प्राणस्थानको तुमने उसके कार्यों द्वारा जाना था।

६ वृत्र सुखकर उदकके साथ जलमें शयन करता हुआ अन्धकारमें वर्द्धमान हो रहा था। अभिषुत सोमपानसे हृष्ट होकर अभिलाषाओंके पूरक इन्द्रने वज्रको ऊपर उठाकर उसे मारा था।

---

* इन्द्रसे युद्ध करते समय भग्नायुध वृत्रके शरीरसे महान् बलवान् शुष्ण नामका एक दूसरा असुर प्रकट हुआ। इन्द्रने वृत्रको मारकर शुष्णको भी मारा।—सायण।

उग्रदिन्द्रो महते दानवाय वधर्येमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमश्चकार ॥७॥
त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन निदुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम् ॥८॥
को अस्य शुष्मन्तविषीं वरात एकोधना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥ ९ ॥
न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
संयदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥ १० ॥
एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि जशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥ ११ ॥
एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया नि दधुः काममिन्द्र ॥१२॥

---

७ जब इन्द्रने उस प्रभूत दानव वृत्रके प्रति विजयी वज्रको उठाया था, जब वज्रके द्वारा उसके ऊपर प्रहार किया था, तब सब प्राणियोंके बीच उसे नीच बनाया था।

८ उग्र इन्द्रने महान्, गमनशील मेघको घेरकर शयन करनेवाले, जल-रक्षक, शत्रुओंके संहारक और सबको आच्छादित करनेवाले वृत्रको ग्रहण किया और उसके अनन्तर संग्राममें पाद रहित, परिमाण-रहित और जृम्भाभिभूत वृत्रको अपने प्रभूत वज्र द्वारा भली भाँतिसे मारा।

९ इन्द्रके शोषक बलका निवारण कौन कर सकता है? किसीके द्वारा भी अप्रतीयमान इन्द्र अकेले ही शत्रुओंके धनको हरण करते हैं। द्योतमान द्यावा-पृथिवी वेगवान् इन्द्रके बलसे भीत होकर शीघ्र ही चलायमान होती है।

१० स्वयम् धार्यमाण और द्योतमान द्युलोक इन्द्रके लिये नीचभावसे गमन करता है। भूमि अभिलाषिणी स्त्रीकी तरह इन्द्रके लिये आत्म-समर्पण करता है। जब इन्द्र अपने समस्त बलको प्रजाओंके मध्यमें स्थापित करते हैं, तब मनुष्यगण अनुक्रमसे, बलवान् इन्द्रके लिये नमस्कार करते हैं।

११ हे इन्द्र, हमने ऋषियोंसे सुना है कि, तुम मनुष्योंके मध्यमें मुख्य हो, सज्जनोंके पालक हो, पञ्चजन मनुष्योंके हितके लिये उत्पन्न हुए हो और यशोयुक्त हो। दिन-रात स्तुति करनेवाली और अपनी अभिलाषाओंको कहनेवाली हमारी सन्तान स्तुतियोग्य इन्द्रको प्राप्त करे।

१२ हे इन्द्र, हमने सुना है कि, तुम समय-समयपर जन्तुओंको प्रेरित करते हो और स्तोताओंको धन प्रदान करते हो, यह झूठ ही मालूम पड़ता है। हे इन्द्र, जो स्तोता तुममें अपनी अभिलाषा स्थापित करते हैं, तुम्हारे वे महान् सखा तुमसे क्या प्राप्त करते हैं?

प्रथम अध्याय समाप्त

द्वितीय अध्याय

३३ सूक्त

३ अनुवाक । इन्द्र देवता । प्रजापतिके अपत्य सम्बरण ऋषि । त्रिष्टुप छन्द ।

महिमहे तवसे दीध्ये नॄनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥१॥

स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥२॥

न ते त इन्द्राभ्य स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठारथमधितं वज्रहस्ता रश्मिन्देव यमसे स्वश्वः ॥३॥

पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४॥

१ हम सम्वरण ऋषि अत्यन्त दुर्बल हैं। हम महाबलवान् इन्द्रके लिये प्रभूत स्तोत्र करते हैं, जिससे हमारी तरहके मनुष्य बलवान् हों। संग्राममें अन्न लाभके लिये स्तुत होनेपर इन्द्र स्तोताओंके साथ हमारे (सम्वरणके) प्रति अनुग्रह प्रदर्शन करें।

२ हे अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले इन्द्र, तुम हम लोगोंका ध्यान करते हुए एवम् जो स्तोत्र तुम्हें प्राप्ति उत्पन्न करें, उन स्तोत्रों द्वारा रथमें जुते हुए घोड़ोंकी लगामको ग्रहण करते हो। हे मघवा, इस तरहसे तुम हमारे शत्रुओंको पराभूत करो।

३ हे तेजोविशिष्ट इन्द्र, जो मनुष्य तुम्हारे भक्तोंसे भिन्न है और जो तुम्हारे साथ नहीं रहता है, ब्रह्मकर्मसे हीन होनेके कारण वह मनुष्य तुम्हारा नहीं है। हे वज्रधारी इन्द्र, इस लिये तुम हमारे यज्ञमें आनेके लिये उस रथपर आरोहण करो, जिस रथका सञ्चालन तुम स्वयम् करते हो।

४ हे इन्द्र, तुम्हारे स्वविषयक अनेक स्तोत्र हैं; इसीलिये तुम उर्वरा भूमिके ऊपर जल वर्षण करनेके लिये वृष्टि-निरोधकारकोंका संहार करते हो। तुम कामनाओंके पूरक हो। तुम सूर्यके अपने स्थानमें वृष्टिप्रतिबन्धकारक दासोंके साथ युद्ध करके, उनके नामतकको नष्ट कर देते हो।

वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
अस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥५॥
पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६॥
एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७॥
उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥८॥
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥९॥

५ हे इन्द्र, हम लोग जो ऋत्विक् यजमान आदि हैं, वे सब तुम्हारे हैं । यज्ञ करके हम लोग तुम्हारे बलको वर्द्धित करते हैं और होम करनेके लिये तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं । हे इन्द्र, तुम्हारा बल सर्वव्यापी है । तुम्हारे अनुग्रहसे युद्ध-क्षेत्रमें भगकी तरह प्रशंसनीय (चारु) विश्वस्त भृत्य आदि हमारे निकट आवें ।

६ हे इन्द्र, तुम्हारा बल पूजनीय है । तुम सर्वव्यापी और अमरणशील हो । अपने तेजसे तुम जगत्को आच्छादित करके श्वेतवर्णका प्रभूत धन हम लोगोंको दो । हम लोग प्रभूत धनवाले दाताके दानकी स्तुति करते हैं ।

७ हे शूर इन्द्र, हम लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं और यजन करते हैं । रक्षा द्वारा तुम हम लोगोंका पालन करो । संग्राममें तुम अपने आच्छादक रूपको प्रदान करके हमारे अभिषुत सोमरसके द्वारा सन्तुष्ट होओ ।

८ गिरिक्षित-गोत्रोत्पन्न पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु हिरण्यवान् और प्रेरक हैं । उन्होंने हमें जो दस अश्व प्रदान किया था, वे शुभ्रवर्णवाले दसो अश्व हमें वहन करें । रथनियोजनादि कार्यों द्वारा हम शीघ्र ही गमन करें ।

९ मरुताश्वके पुत्र विदथने हमारे लिये जिन रक्तवर्ण और श्रेष्ठ (शीघ्रगामी) अश्वोंको प्रदान किया था, वे हमें वहन करें । उन्होंने हम पूज्यको सहस्र परिमित धन दिया है और अपने शरीरका अलङ्कार प्रदान किया है ।

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥१०॥

---

३४ सूक्त

इन्द्र देवता । सम्वरण ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥१॥
आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥२॥
यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥३॥
यस्यावधीत् पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्विषादीषते वस्व आकरः ॥४॥

१० लक्ष्मणके पुत्र ध्वन्यने हमें जो दीप्तिमान् और कर्मक्षम अश्व प्रदान किया था, वे हमें वहन करें। गौएँ जैसे गोचरण-स्थान (गोष्ठ) को प्राप्त करती हैं, उसी तरह मे उनके (ध्वन्य) द्वारा प्रदत्त महान् धन सम्वरण ऋषिके गृहमें उपस्थित हों ।

---

१ जिनके शत्रु उत्पन्न नहीं हुए हैं और जो शत्रुओंका विनाश करते हैं, उन्हें अक्षीण, स्वर्गप्रद और अपरिमित हव्य प्राप्त करते हैं। हे ऋत्विको, उन्हीं इन्द्रके लिये तुम लोग पुरोडाश आदिका पाक करो और अपने उचित कर्मको धारण करो । इन्द्र स्तोत्रवाहक है और बहुस्तुत हैं ।

२ इन्द्रने सोमरस द्वारा अपने जठरको परिपूर्ण किया था और मधुर सोमपानसे प्रमुदित हुए थे, जब कि, मृगनामक असुरको मारनेकी इच्छा करके उन्होंने अपरिमित तेजवाले महान् वज्रको ऊपर उठाया था ।

३ जो यजमान इन्द्रके लिये अहर्निश सोमाभिषव करते हैं, वे द्युतिमान् होते हैं। जो यजमान यज्ञ नहीं करते हैं; लेकिन धर्म-सन्ततिकी कामना करते हैं और शोभनीय अलङ्कार आदि धारण करते हैं तथा धनवान् होकर कुत्सित पुरुषोंका साहाय्य करते हैं, समर्थ इन्द्र उन्हें छोड़ देते हैं ।

४ समर्थ इन्द्रके जिस यष्टाने पिता, माता और भ्राताका वध किया है, उस यष्टाके निकटसे भी इन्द्र दूर नहीं जाते हैं और उसके द्वारा प्रदत्त हव्यकी कामना भी करते हैं। शासक और धनाधिपति इन्द्र पापसे भी विचलित नहीं होते हैं ।

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥५॥
वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥६॥
समीम्पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥७॥
सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्द्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥८॥
सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन् क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥९॥

---

५ शत्रुओंको मारनेके लिये इन्द्र पाँच या दस सहायकोंकी कामना नहीं करते हैं। जो सोमाभिषव नहीं करता है और बन्धुओंका पोषण नहीं करता है, उसके साथ इन्द्र संगति नहीं करते हैं। शत्रुओंके कम्पक इन्द्र उसे बाधा पहुँचाते है और उसका बध करते हैं। इन्द्र यज्ञ करनेवाले यजमानोंके गोष्ठको गोविशिष्ट करते हैं।

६ संग्राममें शत्रुओंको क्षीण करनेवाले इन्द्र रथचक्रको वेगवान करते हैं। सोमाभिषव नहीं करनेवाले यजमानसे वे दूर रहते हैं और सोमाभिषव करनेवाले यजमानको वर्द्धित करते हैं। विश्व-शिक्षक और भयजनक स्वामी इन्द्र यथेच्छ दासकर्म करनेवालेको अपने वशमें लाते हैं।

७ इन्द्र बनियों (लोभियों) की तरह अन्न चुरानेके लिये गमन करते हैं और मनुष्योंकी शोभाको बढ़ानेवाले उस धनको तथा बहुविध अन्य धनको लाकर यजन करनेवाले यजमानोंको देते हैं अर्थात यज्ञ नहीं करनेवालोंका धन यज्ञ करनेवालोंको देते हैं। जो व्यक्ति इन्द्रके बलको क्रुद्ध करता है अर्थात् बली इन्द्रको कोपयुक्त करता है, वह सकल व्यक्ति महाविपद्में स्थापित होता है।

८ शोभन धनवाले और बृहत् साहाय्यवाले दो व्यक्ति जब शोभन गौओंके लिये परस्पर प्रति-द्वन्द्वी होते हैं, तब ऐसा जानकर इन्द्र यज्ञ करनेवाले यजमानकी सहायता करते हैं। मेघोंको कपाने-वाले इन्द्र उस यज्ञकारी यजमानको गोसमूह प्रदान करते हैं।

९ हे अङ्गनादि गुणविशिष्ट इन्द्र, हम अपरिमित धनके दाता, अग्निवेशके पुत्र प्रसिद्ध शत्रिनामक राजर्षिकी स्तुति करते हैं। वे उपमानभूत और प्रख्यात हैं। जलराशि उन्हें अच्छी तरहसे सन्तुष्ट करें, उनका धन बलवान् और दीप्तिमान् हो।

---

३५ सूक्त

इन्द्र देवता। अङ्गिराके अपत्य प्रभूवसु ऋषि। अनुष्टुप् छन्द।

यस्ते साधिष्ठो वस इन्द्र क्रतुष्टमाभर।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥१॥
यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत् सु न आ भर ॥२॥
आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥३॥
वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः।
स्व क्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥४॥
त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥५॥

१ हे इन्द्र, तुम्हारा जो अतिशय साधक कर्म (प्रज्ञा) है, वह हम लोगोंकी रक्षाके लिये हो। तुम्हारा कर्म सब मनुष्योंका अभिभव करनेवाला है, शुद्ध है और संग्राममें दूसरोंके द्वारा अनभिभवनीय है।

२ हे इन्द्र चार वर्णोंमें जो तुम्हारा रक्षाकार्य है हे शूर, तीन लोकोंमें जो तुम्हारा रक्षाकार्य विद्यमान है और जो पञ्चजन-सम्बन्धी तुम्हारा रक्षाकार्य है, उस समस्त रक्षाकार्यको तुम हमलोगोंके लिये भलीभाँतिसे आहरण करो।

३ हे इन्द्र, तुम अभिमत फलके निरतिशय साधक, वृष्टिकर्ता और शीघ्र शत्रुसंहारक हो। हे इन्द्र, तुम्हारा रक्षणकार्य वरणीय है। हम उसका आह्वान करते है। तुम सर्वव्यापी मरुतोंके साथ मिलित होकर प्रदान करो।

४ हे इन्द्र, तुम अभीष्ट फलवर्षक हो। यजमानोंको धन देनेके लिये तुमने जन्म ग्रहण किया है। तुम्हारा बल फल वर्षण करता है। तुम्हारा मन स्वभावसे ही बलवान है और विरोधियोंका दमनकारी है। हे इन्द्र, तुम्हारा पौरुष संघविनाशक है।

५ हे इन्द्र, तुम वज्रधारी हो। तुम्हारा रथ सर्वत्र अप्रतिहतगतिसे गमन करता है। तुम सौ यज्ञोंके अनुष्ठानकर्त्ता हो और बलके अधिपति हो। जो मनुष्य तुम्हारे प्रति शत्रुताका आचरण करता है, तुम उसके विरुद्ध यात्रा करते हो।

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्त बर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥६॥
आस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवारथम् ॥७॥
अस्माकमिन्द्रेहिनो रथमवापुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिविश्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८॥

---

३६ सूक्त

इन्द्र देवता । अङ्गिराके अपत्य प्रभूवसु ऋषि । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥१॥
आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत् सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२॥

६ हे शत्रुओंके हन्ता इन्द्र, यज्ञ करनेवाले मनुष्य संग्राममें तुम्हारा ही आह्वान करते हैं; क्योंकि तुम उद्यतायुध और बहुत प्रजाके मध्यमें पुरातन हो ।

७ हे इन्द्र, तुम हमारे रथकी रक्षा करो । यह रथ संग्राममें सब प्रकारके धनकी इच्छा करता है, अनुचरोंके साथ गमन करता है, दुर्निवार्य है और रणसंकुल है ।

८ हे इन्द्र, हमारे निकट तुम आत्मीय होकर आओ । अपनी उत्कृष्ट बुद्धि द्वारा हमारे रथकी रक्षा करो । तुम निरतिशय बलशाली और दीप्तिमान् हो । तुम्हारे अनुग्रहसे हम वरणीय धन या कीर्त्ति तुममें स्थापित करते हैं । तुम द्योतमान् हो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

---

१ इन्द्र हमारे यज्ञमें आगमन करें । जो देव धन देनेके लिये जानते हैं, वे किस तरहके हैं? इन्द्र धनके दाता हैं अथवा स्वभावसे ही दानी हैं । धनुषके साथ गमन करनेवाले धानुष्ककी तरह साहसपूर्ण गमन करनेवाले और अत्यन्त तृषित इन्द्र अभिषुत सोमपान करें ।

२ हे अश्वद्वय-सम्पन्न शूर इन्द्र, हम लोगोंके द्वारा दिया गया सोमरस पर्वत शिखरकी तरह तुम्हारे संहारक हनुप्रदेशमें आरोहण करे । हे राजमान इन्द्र, तृण द्वारा जैसे घोड़े तृप्त होते हैं, उसी तरहसे हम तुम्हें स्तुतियों द्वारा प्रीत करते हैं । हे इन्द्र, तुम बहुस्तुत हो ।

चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनोभिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवनपुरूवसुः ॥३॥
एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥४॥
वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन् भरे धाः ॥५॥
यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनावान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥६॥

३७ सूक्त

इन्द्र देवता । अत्रि ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१॥

३ हे बहुस्तुत, हे वज्रवान् इन्द्र, भूमिमें वर्तमान चक्रकी तरह हमारा हृदय दारिद्र्य-भयसे काँप रहा है। हे सर्वदा वर्द्धमान इन्द्र, स्तोता पुरुवसु ऋषि शीघ्र ही बहुलतासे तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम रथाधिरूढ़ हो।

४ हे इन्द्र, प्रभूत फलको भोगनेवाले स्तोता अभिषव करनेवाले पत्थरकी तरह तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे धनवान् और हरिनामक अश्ववाले इन्द्र, तुम वामहस्तसे धन दान करते हो और दक्षिण हस्तसे भी धन दान करते हो। तुम हमें विफलमनोरथ मत करो।

५ हे इन्द्र, तुम अभिलाषाओंके पूरक हो। अभीष्टवर्षी द्यावापृथिवी तुम्हें संवर्द्धित करें। तुम वर्षण-कारी हो। घोड़े तुम्हें यज्ञस्थलमें वहन करते हैं। हे शोभन हनुवाले, हे वज्रधर इन्द्र, तुम्हारा रथ कल्याणवर्षी है। संग्राममें तुम हम लोगोंकी रक्षा करो।

६ हे इन्द्रके सहायक मरुतो, अन्नवान् श्रुतरथ राजाने हमें लोहित वर्णवाले दो अश्व और तीन सौ धेनुरूप धन दिया था। नित्य तरुण उस श्रुतरथ राजाके लिये सकल प्रजा परिचर्यासम्पन्न होकर प्रणाम करती है।

१ यथाविधि आहूत अग्निमें हव्य प्रदान करनेसे अग्नि प्रदीप्त होकर सूर्यरश्मिके साथ आहूयमान होते हैं। जो यजमान "इन्द्रके लिये होम करो" यह कहता है, उस यजमानके लिये उषा अहिंसित होती है।

समिद्धाग्निर्वनवत् स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥२॥
वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥३॥
न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम्।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४॥
पुष्यात् क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥५॥

---

३८ सूक्त

इन्द्र देवता। अत्रि ऋषि। अनुष्टुप् छन्द।

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥१॥

२ अग्निको प्रदीप्त करनेवाले और कुशको विस्तृत करनेवाले यजमान सम्भजन करते हैं। पाषाणोत्तोलनपूर्वक जिन्होंने सोमरस निःसृत किया है, वे स्तुति करते हैं। जिस अध्वर्युके पाषाणसे सुमधुर शब्द होता है, वह अध्वर्यु हव्य लेकर नदीमें अवगाहन करते हैं।

३ पत्नी पतिकी इच्छा करती हुई यज्ञमें उसका अनुगमन करती है। इन्द्र इसी प्रकारसे अनुगामिनी महिषीका आनयन करते हैं। इन्द्रका रथ हम लोगोंके निकट प्रचुर धन वहन करे। वह अधिक शब्द करता है। वह चारों तरफ सहस्र धन निक्षेप करे।

४ जिनके यज्ञमें इन्द्र दुग्धमिश्रित मदजनक सोमरस पान करते हैं, वह राजा कभी व्यथित नहीं होते हैं। वह राजा अनुचरोंके साथ सर्वत्र गमन करते हैं, शत्रुओंका संहार करते हैं, प्रजाओंकी रक्षा करते हैं और सुख-सम्भोगसे युक्त होकर इन्द्रकी स्तुतिका पोषण करते हैं।

५ जो इन्द्रको अभिषुत सोम प्रदान करता है, वह बन्धुबान्धवोंका पोषण करता है, वह प्राप्त धनकी रक्षा करनेमें और अप्राप्त धनकी प्राप्तिमें समर्थ होता है। वह वर्तमान तथा नियत अहोरात्रको जीतता है। वह सूर्य और अग्नि दोनोंका ही प्रियपात्र होता है।

---

१ हे इन्द्र, तुमने बहुत कर्म किया है। तुम प्रभूत धनका महान् दान करते हो। हे सर्वदर्शी, हे शोभन धनवाले, तुम हम लोगोंको महान् धन प्रदान करो।

यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
प्रप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥२॥
शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥३॥
उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमाभरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥४॥
नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥५॥

---

३९ सूक्त

इन्द्र देवता । अत्रि ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

यदिन्द्र चित्रमेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्याभर ॥१॥
यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदाभर ।
विद्याम तस्य वयमकूपारस्य दावने ॥२॥

२ हे महाबलशाली हिरण्यवर्ण इन्द्र, यद्यपि तुम सुप्रसिद्ध प्रचुर अन्नके अधिपति हो; तथापि यह अत्यन्त दुर्लभ रूपसे सर्वत्र कीर्तित होता है।

३ हे वज्रधर इन्द्र, पूजनीय एवम् विख्यात कर्मवाले मरुद्गण तुम्हारे बलस्वरूप हैं। तुम और वे (इन्द्र-मरुत) दोनों ही पृथ्वीके ऊपर स्वेच्छाविहारी होकर शासन करते हो।

४ हे वृत्रहन्ता इन्द्र, हम लोग तुम्हारी उपासना करते हैं। तुम हम लोगोंको किसी क्षमताशाली का धन लाकर देते हो; क्योंकि तुम हम लोगोंको धनाढ्य करनेके अभिलाषी हो।

५ हे सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र, तुम्हारे अभिगमनसे हम शीघ्र ही समृद्ध हों। हे इन्द्र, तुम्हारे सुखमें हम अंशभागी हों। हे शूर, तुम्हारे द्वारा हम सुरक्षित हों।

---

१ हे इन्द्र, हे वज्रधर, तुम्हारा रूप अत्यन्त विचित्र है। देनेके लिये तुम्हारे पास जो महामूल्य धन है, हे धनवान् इन्द्र, उसे तुम हम लोगोंको, दोनों हाथोंसे, प्रदान करो।

२ हे इन्द्र, जिस अन्नको तुम श्रेष्ठ समझते हो, वह अन्न हम लोगोंको प्रदान करो। हम तुम्हारे उस श्रेष्ठ अन्नके दानपात्र हों।

यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥
मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥४॥
अस्मा इदु काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५॥

---

४० सूक्त

प्रथम ४ ऋक्के इन्द्र देवता, ५के सूर्य और अवशिष्ट ४ ऋक्के अत्रि देवता ।

अत्रि ऋषि । अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥१॥
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥२॥

३ हे इन्द्र, तुम्हारा मन दान देनेके लिये विश्रुत और महान् है। हे वज्रधर, तुम हम लोगोंको सारवान अन्न प्रदान करनेके लिये आदर प्रदर्शित करते हो।

४ इन्द्र हविर्लक्षण धनसे युक्त हैं। वे तुम लोगोंके अत्यन्त पूजनीय हैं। वे मनुष्योंके अधिपति हैं। स्तोता लोग प्राचीन स्तोत्रों द्वारा प्रशंसा करनेके लिये उनकी सेवा करते हैं।

५ इन्द्रके लिये ही यह काव्य, वाक्य और उक्थ उच्चार्य हुआ है। वे स्तोत्रवाहक हैं। अत्रिपुत्र उनके निकटमें ही स्तोत्रोंको उच्चस्वरसे उच्चारित करते हैं और उद्दीपित करते।

---

१ हे इन्द्र, तुम हम लोगोंके यज्ञमें आओ। हे सोमके स्वामी इन्द्र, , आकर पत्थरों द्वारा अभिषुत सोमका पान करो। हे फलवर्षक, हे शत्रुओंके अतिशय हन्ता, फलवर्षी मरुतोंके साथ तुम सोम पान करो।

२ अभिषवसाधन पाषाण वर्षणकारी है। सोमपान-जनित हर्ष वर्षणकारी है। यह अभिषुत सोम वर्षणकारी है। हे फलवर्षक, हे शत्रुओंके अतिशय हन्ता, फलवर्षी मरुतोंके साथ तुम सोम पान करो।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिश्चित्राभिरूतिभिः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥३॥
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् शुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥४॥
यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥५॥
स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥६॥
मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥७॥

३ वज्रधर इन्द्र, तुम सोमरसके सेचनकर्त्ता और अभीष्टवर्षी हो । हम विचित्र रक्षाके लिये तुम्हारा आह्वान करते हैं। हे फलवर्षक, हे शत्रुओंके अतिशय हन्ता, फलवर्षी मरुतोंके साथ तुम सोम पान करो।

४ इन्द्र ऋजीषी (सोमरसकी सिट्ठीवाले) और वज्रधर हैं । इन्द्र अभीष्टवर्षी, शत्रु-संहार-कर्त्ता, बलवान्, सबके ईश्वर, वृत्रहन्ता और सोमपानकर्ता हैं । इस तरहके इन्द्र घोड़ोंको रथमें युक्त करके हम लोगोंके अभिमुख आवें और माध्यन्दिन सवनमें सोमपानसे हृष्ट हों।

५ हे सूर्य (प्रेरक देव), स्वर्भानु नामक असुरने जब तुम्हें अन्धकारसे आच्छन्न कर लिया था, तब उस समय सकल भवन उसी तरहसे दीख रहा था, जैसे वहाँवाले सब लोग अपने-अपने स्थानको नहीं जान रहे हैं और मूढ़ हैं।

६ हे इन्द्र, जब तुमने सूर्यके अधोदेशमें वर्तमान, स्वर्भानु असुरकी द्योतमान मायाको दूरमें ही अपसारित किया था, तब व्रतविघातक अन्धकार द्वारा समाच्छन्न सूर्यको अत्रिने चार ऋचाओं द्वारा प्रकाशित किया था।

७ (सूर्यवाक्य—) हे अत्रि, ऐसी अवस्थावाले हम तुम्हारे हैं । अन्नकी इच्छासे द्रोह करनेवाले असुर भयजनक अन्धकार द्वारा हमें नहीं निगल जायँ; अतः तुम और वरुण दोनों ही हमारी रक्षा करो। तुम हमारे मित्र और सत्यपालक हो ।

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात् स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥८॥
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥९॥

---

४१ सूक्त

विश्वेदेव देवता । अत्रिके अपत्य भौम ऋषि । जगती, विराट् और त्रिष्टुप् छन्द ।

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥१॥
ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥२॥
आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥३॥

---

८ उस समय ऋत्विक् अत्रिने सूर्यको उपदेश दिया, प्रस्तरखण्डोंका घर्षण करके इन्द्रके लिये सोमाभिषव किया, स्तोत्रों द्वारा देवोंकी पूजा की और मन्त्र-प्रभावसे अन्तरिक्षमें सूर्यके चक्षुको संस्थापित किया। उस समय उन्होंने स्वर्भानुकी समस्त मायाको दूरसे अपसारित किया।

९ असुर स्वर्भानुने जिस सूर्यको अन्धकार द्वारा आच्छन्न किया था, अत्रिपुत्रने अवश्यमेव उन्हें मुक्त किया। दूसरे कोई समर्थ नहीं हुए।

---

१ हे मित्रावरुण देव, तुम दोनोंके यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला कौन यजमान समर्थ होता है? तुम दोनों स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्षके किस स्थानमें रहकर हम लोगोंकी रक्षा करते हो और हव्यदाता यजमानको पशु तथा धन प्रदान करते हो।

२ हे मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा और मरुद्गण, तुम सब देव हमारे शोभन और पापवर्जित स्तोत्रका सेवन करो। तुम सब रुद्रके साथ प्रीयमाण होकर पूजा ग्रहण करो।

३ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों दमनकारी हो। हम तुम्हारे रथको वायुवेग द्वारा वेगवान् करनेके लिये तुम दोनोंका आह्वान करते हैं। हे ऋत्विको, तुम लोग द्योतमान और प्राणापहारक रुद्रके लिये स्तोत्र और हव्यका सम्पादन करो।

प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वतो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥४॥
प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥५॥
प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्रदेवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६॥
उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥७॥
अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीँरोषधीराय एषे ॥८॥

४ मेधावी लोग जिनका आह्वान करते हैं, जो यज्ञका सेवन करते हैं, शत्रुओंका विनाश करते हैं और स्वर्गीय हैं, वे (वायु, अग्नि, पूषा) क्षिति आदि तीनों स्थानोंमें जायमान होकर सूर्यके साथ तुल्यरूपसे प्रीति उत्पन्न करते हैं। ये सकल विश्वरक्षक देव यज्ञस्थलमें शीघ्र आगमन करें जैसे वेगवान् अश्व संग्राममें वेगसे प्रधावित होते हैं।

५ हे मरुतो, तुम लोग अश्वसहित धनका सम्पादन करो। स्तोता लोग गो, अश्व आदि धन लाभके लिये और प्राप्त धनकी रक्षाके लिये तुम लोगोंकी स्तुति करते हैं। उशिजपुत्र कक्षीवान्के होता अत्रि गमनशील अश्वों द्वारा सुखी हों। जो घोड़े वेगवान् और तुम्हारे हैं।

६ हे हमारे ऋत्विको, तुम लोग यातमान, कामनाओंके विशेषपूरक या विप्रवत् पूज्य और स्तुति-योग्य अथवा फलप्रदाता वायुदेवको यज्ञमें जानेके लिये अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा रथाधिरूढ़ करो। गमनवती, यज्ञग्रहणकारिणी, रूपवती और प्रशंसनीय देवपत्नियाँ हमारे यज्ञमें आगमन करें।

७ हे अहोरात्राभिमानी देवो, तुम दोनों महान् हो। वन्दनीय स्वर्गस्थ देवोंके साथ हम तुम दोनोंको सुखदायक और ज्ञापक मन्त्रोंके साथ हव्य प्रदान करते हैं। हे देवो, तुम दोनो सब कर्मजातको जानकर यजमानके यज्ञाभिमुख आगमन करो।

८ तुम सब बहुत लोगोंके पोषक और यज्ञके नेता हो। स्तोत्र आदिके द्वारा अथवा हवि देकर हम तुम्हारी स्तुति, धन लाभके लिये, करते हैं। वास्तुपति त्वष्टाकी हम स्तुति करते हैं। धन देनेवाली और अन्यान्य देवोंके साथ गमन करनेवाली या आनन्दित होनेवाली धिषणा (वाणी) की हम स्तुति करते हैं। वनस्पतियों और औषधियोंकी हम स्तुति करते हैं।

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥९॥
वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१०॥
कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११॥
शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परिस्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥१२॥
विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व आवयन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३॥

९ वीरोंकी तरह जगत्के संस्थापक मेघ, विस्तृत दानके विषयमें, हम लोगोंके प्रति अनुकूल हों। वे स्तुतियोग्य, आप्त्य, यजनीय, मनुष्योंके हितकारी और हम लोगोंकी स्तुतिसे सदा प्रसन्न होकर हम लोगोंको समृद्ध करें।

१० हम वर्षणकारी, अन्तरिक्ष (मेघ) के गर्भस्थानीय जलके रक्षक वैद्युत अग्निकी, पापवर्जित शोभन स्तोत्रों द्वारा, स्तुति करते हैं। अग्नि तीन स्थानोंमें व्याप्त और त्रिविध हैं। मेरे गमनकालमें अग्नि सुखकर रश्मियों द्वारा मेरे ऊपर क्रुद्ध नहीं होते हैं; किन्तु प्रदीप्त ज्वाला धारण कर वे जंगलोंको जलाते हैं।

११ हम अत्रिगोत्रोत्पन्न किस प्रकारसे महान् रुद्रपुत्र मरुतोंकी स्तुति करें? सर्वविद् भगदेवको, धन लाभके लिये, कौनसा स्तोत्र कहें। जलदेवता, ओषधियाँ, द्युदेवता, वन और वृक्ष जिनके केशस्वरूप हैं, वे पर्वत हम लोगोंकी रक्षा करें।

१२ बल अथवा अन्नके अधिपति और अकाशचारी वायु हमारी स्तुतियोंको सुनें। नगरकी तरह उज्ज्वल, बड़े पर्वतके चतुर्दिक् सरणशील वारिधारा हमारी वाणी सुने।

१३ हे महान् मरुतो, तुम लोग शीघ्र ही स्तोत्रोंको जानो। हे दर्शनीयो, तुम्हारी स्तुति करनेवाले हम लोग श्रेष्ठ हव्य धारण करके तुम्हारी स्तुति करते हैं। मरुद्गण अनुकूल भावसे आगमन करके, क्षोभ द्वारा अभिभूत मनुष्य वैरियोंको अस्त्रों द्वारा मार करके, हम लोगोंके निकट उपस्थित हों।

आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्द्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४॥
पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥१५॥
कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६॥
इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः ।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥१७॥
तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८॥

१४ हम देवसम्बन्धी और पृथ्वीसम्बन्धी जन्म तथा जल लाभ करनेके लिये सुन्दर यज्ञवाले मरुतोंकी स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतियाँ वर्द्धमान हों। प्रीतिदायक स्वर्ग समृद्धि-सम्पन्न हो। मरुतों द्वारा परिपुष्ट नदियाँ जलपूर्ण हों।

१५ हम सदा स्तुति करते हैं। जो उपद्रवोंका निवारण करके हम लोगोंकी रक्षा करनेमें समर्थ होती है, वह सबकी निर्मात्री, पूज्या भूमि हम लोगोंकी स्तुतिको ग्रहण करे। प्रशस्त वचनवाले मेधावी स्तोताओंके प्रति वह प्रसन्न हो और अनुकूल हस्त होकर हम लोगोंको कल्याण प्रदान करे।

१६ हम लोग किस प्रकारसे दानशील मरुतोंका समुचित स्तवन करें? किस प्रकार वर्तमान स्तोत्र द्वारा मरुतोंके योग्य उपासना करें? वर्तमान स्तोत्र द्वारा मरुतोंका स्तवन कैसे सम्भव है? अहिर्बुध्न्य देव हम लोगोंका अनिष्ट नहीं करें; शत्रुओंको विनष्ट करें।

१७ हे देवो, मनुष्य यजमान सन्तानके लिये और पशुओंके लिये शीघ्र ही तुम लोगोंकी उपासना करते हैं। हे देवो, मनुष्य लोग तुम्हारी उपासना करते हैं। इस यज्ञमें निर्ऋति देवता कल्याणकर अन्न द्वारा हमारे शरीरका पोषण करें और जरा दूर करें।

१८ हे द्योतमान वसुओ, हम लोग तुम्हारी उस सुमति धेनुसे बलकारक और हृदय-पोषक अन्न लाभ करें। वह दानशीला और सुखदायिनी देवी हम लोगोंके सुखके लिये शीघ्र आगमन करे।

अभि न इड़ा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१६॥
सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२०॥

४२ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । भौम ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥१॥
प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात् सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥२॥
उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३॥

१६ गोसंघकी निर्मात्री इड़ा और उर्वशी नदियोंके साथ हम लोगोंके प्रति अनुकूल हों । निरतिशय दीप्तिशालिनी उर्वशी हम लोगोंके यज्ञ आदि कार्यकी प्रशंसा करके यजमानोंको दीप्ति द्वारा समाच्छादित करके उपस्थित हो ।

२० पोषक ऊर्जव्य राजाका देवसंघ हम लोगोंका सेवन करे ।

---

१ प्रदत्त हव्यके साथ हमलोगोंका निरतिशय सुखदायक स्तोत्र वरुण, मित्र, भग और आदित्यके निकट उपस्थित हो । जो प्राण आदि पञ्च वायुके साधक हैं, जो विविध वर्णके अन्तरिक्षमें अवस्थान करते हैं, जिनकी गति अप्रतिहत है, जो प्राणदाता और सुखसम्पादक हैं, वह वायु हम लोगोंका स्तोत्र श्रवण करें ।

२ हमारे हृदयङ्गम और सुखकर स्तोत्रको अदिति देवता ग्रहण करें, जैसे जननी अपने पुत्रको ग्रहण करती है । अहोरात्राभिमानी देव मित्र और वरुणके उद्देशसे हम मनोहर, आनन्ददायक और देवग्राह्य स्तोत्र (मन्त्र जात)प्रदान करते हैं ।

३ हे ऋत्विको, तुम लोग अतिशय कान्तदर्शी और पुरोवर्ती अग्नि अथवा सविताको उद्दीप्त करो— प्रमुदित करो । मधुर सोमरस और घृत द्वारा इन्हें अभिषिक्त करो—तृप्त करो । वे सविता देव हम लोगोंको शुद्ध, हितकर तथा आल्हादक हिरण्य प्रदान करें ।

समिन्द्रणो मनसा नेषि गोभिः संसूरिभिर्हरिवः संस्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४॥
देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य सञ्जितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५॥
मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं नूतनः कश्चनाप ॥६॥
उपस्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥७॥
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥८॥

४ हे इन्द्र, तुम हमलोगोंको प्रसन्न मनसे गौएं प्रदान करते हो। हे अश्वद्वय-सम्पन्न इन्द्र, तुम हम लोगोंको मेधावी पुत्र अथवा ऋत्विक्, कल्याण, देवताओंके हितकर अन्न और यज्ञीय देवोंका अनुग्रह प्रदान करते हो।

५ भगदेव, धनस्वामी सविता, वृत्रहन्ता इन्द्र, भली भाँतिसे धनके विजेता ऋभुक्षा, वाज और पुरन्धि आदि समस्त अमर शीघ्र ही हम लोगोंके यज्ञमें उपस्थित होकर हम लोगोंकी रक्षा करें।

६ हम यजमान मरुद्वान् इन्द्रके कार्योंका वर्णन करते हैं। वे युद्धसे कभी पलायमान नहीं होते हैं। वे जयनशील और जरारहित हैं। हे इन्द्र, तुम्हारे पराक्रमको किसी पुरातन पुरुषने नहीं पाया है, उनके पीछे होनेवालोंने भी नहीं पाया है। और क्या, आश्चर्यभूत किसी नवीनने भी तुम्हारे पराक्रमको नहीं पाया है।

७ हे अन्तरात्मा, तुम अतिशय श्रेष्ठ और रमणीय धनदाता बृहस्पति (मन्त्रपति) की स्तुति करो। वे हविर्लक्षण धनके विभागकर्ता हैं। वे स्तोत्रकर्त्ता यजमानको महान् सुख प्रदान करते हैं। आह्वान करनेवाले यजमानके निकट वे प्रभूत धन लेकर आगमन करते हैं।

८ हे बृहस्पति, तुम्हारे द्वारा रक्षित होनेपर मनुष्य लोग अहिंसित, धनवान् और सुन्दर पुत्रोंसे युक्त होते हैं। तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत होकर जो कोई धनवान् अश्व, गौ और वस्त्र दान करता है, वह धन लाभ करे।

विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान् प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥९॥
य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान् कामान् करते सिष्विदानः॥१०॥
तमुष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११॥
दमुनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२॥
प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरम्भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३॥

---

९ हे बृहस्पति, जो स्तुतिप्रतिपादक हमलोगोंको नहीं दान देकर स्वयम् उपभोग करता है, जो व्रत धारण नहीं करता है, जो मन्त्रविद्वेषी है, उसके धनको तुम नष्ट करो। सन्ततिसम्पन्न होकर; यद्यपि वह मनुष्यलोकमें वर्द्धमान हो रहा है; तथापि तुम उसे सूर्यसे पृथक् करो अर्थात् अन्धकारमें रखो।

१० हे मरुतो, जो यजमान देवयज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है अर्थात् अनुष्ठानको आसुरी बना देता है, अन्न, अश्व, कृषि आदिके द्वारा उत्पन्न भागके लिये, जो अपनेको क्लेश देता [घर्माक्त करता] है और जो तुम्हारी स्तुति करनेवालेकी निन्दा करता है, उस यजमानको चक्रविहीन रथ द्वारा तुम लोग अन्धकारमें निमग्न कर देते हो।

११ हे आत्मा, तुम रुद्रदेवकी स्तुति करो, जिनके बाण और धनुष सुन्दर हैं—विरोधियोंके नाशक हैं। जो समस्त औषधोंके ईश्वर हैं, उन्हीं रुद्रका यजन करो और महान् कल्याणके लिये द्योतमान और बलवान् या प्राणदाता रुद्रकी परिचर्या करो।

१२ दान्त मनवाले और चमस-अश्व-रथ-गौ आदिके निर्माणमें कुशलहस्त ऋभुगण, वर्षणकारी इन्द्रकी पत्नी गङ्गा आदि नदियाँ, विभु द्वारा कृत सरस्वती नदी और दीप्तिमती राका आदि अभीष्टवर्षी तथा दीप्त हैं। ये हमलोगोंको धन प्रदान करें।

१३ महान् और शोभन रक्षक इन्द्र या पर्जन्यके लिये हम अतिशय स्तुत्य और सद्योजात स्तुति प्रदान करते हैं। इन्द्र वर्षणकारी हैं। वे कन्यारूप पृथिवीके हितके लिये नदियोंका रूप-विधान करते हैं और हमलोगोंको जल प्रदान करते हैं।

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिड़स्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४॥
एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँ युवन्यूँ रुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१५॥
प्रैषः स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मानो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६॥
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१७॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८॥
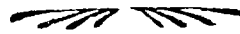
१४ हे स्तोताओ, तुम्हारी शोभन स्तुति गर्जनशील और शब्दकारी उदकस्वामी पर्जन्यके पास पहुँचती है। वे मेघोंको धारण करते हैं और वारिवर्षण करके द्यावापृथिवीको वैद्युतालोकसे आलोकित करके गमन करते हैं।

१५ हमारे द्वारा सम्पादित स्तोत्र रुद्रके तरुण पुत्र मरुतोंके अभिमुख भली भाँतिसे उपस्थित हो। हे मन, धनेच्छा हम लोगोंको निरन्तर उत्तेजित करती है। विविध (पृषत्) वर्णके अश्वपर आरोहण करके, जो यज्ञमें गमन करते हैं, उनकी स्तुति करो।

१६ धनके लिये हमारे द्वारा विहित यह स्तोत्र पृथिवी, स्वर्ग, वृक्ष और ओषधियोंके निकट गमन करे। हमारे लिये सब देवोंका सुन्दर आह्वान हो। माता पृथिवी हम लोगोंको दुर्मतिमें मत स्थापित करे।

१७ हे देवो, हमलोग निरन्तर निर्विघ्न महा सुखका भोग करें।

१८ हम लोग अश्विद्वयकी उस रक्षाको प्राप्त करें, जिसका पहले किसीने भी अनुभव नहीं किया है, जो आनन्ददायक तथा सुखसम्पन्न है। हे अमरणशील अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हम लोगोंको ऐश्वर्य, वीर पुत्र और समस्त सौभाग्य प्रदान करो।

४३ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । अत्रि ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥१॥
आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥२॥
अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥३॥
दशक्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद्दुहे शुक्रमंशुः ॥४॥

१ द्रुतगामिनी नदियाँ अहिंसित होकर (कोई अनिष्ट नहीं उत्पन्न करके) मधुर रसके साथ हम लोगोंके निकट आगमन करें। विशेष प्रीति उत्पन्न करनेवाले स्तोता महान् धन लाभके लिये आनन्ददायक सप्त महा नदियोंका आह्वान करें।*

२ हम अन्न लाभके लिये शोभन स्तव और हव्य द्वारा हिंसारहित द्यावा पृथिवीको प्रसन्न करनेकी इच्छा करते हैं। प्रियवचन, शोभनहस्त और यशोयुक्त मातृपितृस्वरूप द्यावापृथिवी सम्पूर्ण संग्राम या यज्ञमें हम लोगोंकी रक्षा करें।

३ हे अध्वर्युओ, तुम लोग मधुर आज्य आदि हव्य प्रस्तुत करो और वह रमणीय तथा दीप्त सोम सर्वप्रथम वायुको, अर्पित करो। हे वायु, तुम होताकी तरह इस सोमको अन्य देवोंसे पहले पियो। हे वायुदेव, यह मधुर सोमरस तुम्हारे हर्षके लिये देते हैं।

४ ऋत्विकोंकी सोमपेषक दसो अंगुलियाँ और सोमरस-निस्सारणपटु दोनों बाहु पाषाण ग्रहण करते हैं। कुशलाङ्गुलियुक्त ऋत्विक् आनन्दित होकर मधुर सोमसे शैलज रस दोहन करते हैं एवम् सोमसे निर्मल रस निःसृत होता है।

---

* यहाँ भी गंगा आदि सात नदियोंके लिये सङ्केत है। "इमं मे गङ्गे" ऋ० १० । ७५ । ५ ।

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥५॥
आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥६॥
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥७॥
अच्छामही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥ ८ ॥
प्र तव्यसो नम उक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥ ९ ॥

५ हे इन्द्र, तुम्हारी सेवाके लिये, वृत्रवधादि कार्यके लिये, बलके लिये और महान् हर्षके लिये सोमरस समर्पित किया जाता है। हे इन्द्र, इसलिये हम लोग तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम प्रिय, सुशिक्षित और विनम्र अश्वद्वयको रथमें युक्त करके हम लोगोंके निकट आगमन करो।

६ हे अग्नि, तुम हम लोगोंके साथ प्रीयमाण होकर मधुर सोमपानसे प्रहृष्ट होनेके लिये देवगन्तव्य मार्ग द्वारा ग्ना देवीको हम लोगोंके निकट लाओ। वह बलशालिनी देवी सर्वत्र गमन करे और समस्त यज्ञको जाने। स्तोत्रके साथ उस देवीको हव्य समर्पित हो।

७ मेधावी अध्वर्युओंने अग्निके ऊपर हव्यपात्र स्थापित किया है, जैसे पिताकी गोदमें प्रियतम पुत्र हो। मालूम पड़ता है जैसे स्थूलकाय पशुको वे सब अग्नि द्वारा दग्ध कर रहे हैं।

८ हम लोगोंका यह पूजनीय, महान् और सुखदायक स्तोत्र अश्विद्वयको इस स्थानमें आह्वान करनेके लिये दूतकी तरह गमन करे। हे सुखदायक अश्विद्वय, तुम दोनों एक रथपर आरोहण करके अर्पित सोमके निकट भारवाहक कीलकी तरह आगमन करो। जैसे बिना कीलवाली नाभिसे रथका निर्वाहण नहीं होता है, उसी तरहसे बिना तुम्हारे सोमयागका निर्वाह नहीं होता है।

९ हम (ऋषि) बलवान् और वेगपूर्वक गमन करनेवाले पूषा तथा वायुदेवकी स्तुति करते हैं। ये दोनों देव धन और अन्नके लिये लोगोंको बुद्धिको प्रेरित करें अथवा जो देव संग्रामके प्रेरक है, वे धन प्रदान करें।

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्तु मरुतो विश्व ऊती ॥१०॥
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥११॥
आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥१२॥
आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥१३॥
मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥१४॥

१० हे उत्पन्न मात्रका जाननेवाले अग्नि, हम लोगोंके द्वारा आहूयमान होकर तुम विविध (इन्द्र वरुण आदि) नामधारी और विभिन्नाकृति निखिल मरुतोंका यज्ञमें वहन करते हो। हे मरुतो, तुम सब रक्षाके साथ यजमानके यज्ञमें, शोभन फलवाली स्तुतिमें और पूजामें उपस्थित होओ।

११ हम लोगों द्वारा यष्टव्य सरस्वती द्योतमान द्युलोकसे यज्ञस्थलमें आगमन करे तथा महान् मेघसे आगमन करे। हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वह स्वेच्छापूर्वक हमारे सम्पूर्ण सुखकर स्तोत्रोंको सुने।

१२ बलवान्, पुष्टिकारक और स्निग्धाङ्ग बृहस्पतिको यज्ञगृहमें स्थापित करो। वे गृहके मध्यमें अवस्थित होकर सर्वत्र प्रभा विस्तृत करते हैं। वे हिरण्यवर्ण और दीप्तिमान् हैं। हम लोग उनकी पूजा करते हैं।

१३ अग्नि सबको धारण करते हैं। वे अत्यन्त दीप्तिशाली, अभीष्टवर्षी तथा शिखा और औषधिसमूह द्वारा आच्छादित हैं। वे अप्रतिहतगति और त्रिविध शृङ्गविशिष्ट (लोहित, शुक्ल और कृष्णवर्णकी ज्वालाओंसे व्याप्त) हैं। वे वर्षणकारी और अन्नदाता है। हम लोग उनका आह्वान करते हैं। वे सम्पूर्ण रक्षाके साथ आगमन करें।

१४ यजमानके होता, हव्यपात्रधारी ऋत्विग्गण जननीस्वरूप पृथिवीके उज्ज्वल और अत्युत्कृष्ट स्थान (उत्तर वेदी) पर गमन करते हैं। जीवनवृद्धिके लिये जैसे लोग शिशुके अङ्गोंका घर्षण करते हैं, उसी तरह वे नवजात कोमलप्रकृति अग्निका पोषण, स्तुतियोंके साथ हव्य प्रदान करके, करते हैं।

बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५॥
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१६॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१७॥

---

४४ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । कश्यपके अपत्य अवत्सार ऋषि ।

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे ॥१॥

---

१५ हे अग्नि, तुम बृहत्स्वरूप हो। धर्म-कार्य द्वारा जीर्ण होकर स्त्री-पुरुष (दम्पति) एक साथ ही तुम्हें प्रभूत अन्न प्रदान करते हैं।* देवगण हमारे द्वारा भलीभाँतिसे आहूत हों। जननी-स्वरूप पृथिवी हमारे प्रति विरुद्ध बुद्धि नहीं धारण करें।

१६ हे देवो, हम लोग निर्मर्याद और बाधा-शून्य सुख प्राप्त करें।

१७ हम लोग अश्विद्वयकी उस रक्षाको प्राप्त करें, जिसका पहले किसीने भी अनुभव नहीं किया है, जो आनन्द-दायक तथा सुख-सम्पन्न है। हे अमरणशील अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हम लोगोंका ऐश्वर्य, वीरपुत्र और समस्त सौभाग्य प्रदान करो।

---

१ प्राचीन यजमानगण, हमारे पूर्ववर्ती लोग, समस्त प्राणी और आधुनिक लोग जिस तरहसे इन्द्रकी स्तुति करके पूर्णमनोरथ हुए हैं, हे अन्तरात्मा, उसी तरहसे तुम भी उनकी स्तुति करके पूर्णमनोरथ होओ। वे देवोंके मध्यमें जेष्ठ, कुशासीन, सर्वज्ञ, हम लोगोंके सम्मुखवर्ती, बलशाली, वेगवान् और जयशील हैं। इस तरहकी स्तुति द्वारा तुम उन्हें संवर्द्धित करो।

* पतिके साथ स्त्रियोंको भी अग्न्यधिकार है।

श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥२॥
अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३॥
प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥४॥
सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथशोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५॥
यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सञ्छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥६॥

---

२ हे इन्द्र, तुम स्वर्गमें प्रभा विस्तारित करते हो । अवर्षणकारी मेघके मध्यमें जो सुन्दर जलराशि है, उसे मनुष्योंके हितके लिये समस्त दिशाओंमें प्रेरित करते हो । वृष्टि आदि सुन्दर कर्म द्वारा तुम मनुष्योंकी रक्षा करो । प्राणियोंके बधके लिये तुम मत होओ । शत्रुओंकी मायाका तुम अतिक्रम करते हो । तुम्हारा नाम सत्यलोकमें विद्यमान है ।

३ अग्नि नित्य, फलसाधक और विश्वधारक हव्यको सतत वहन करते हैं । अग्नि अप्रतिहत-गति, होमनिर्वाहक और बल-विधायक हैं । वे विशेषत: कुशके ऊपर होकर गमन करते हैं । फलवर्षण-कारी, शिशु , तरुण, जरारहित और औषधियोंके मध्यमें स्थित हैं ।

४ इन यजमानोंके लिये यज्ञको बढ़ानेवाली ये सूर्यकी किरणें परस्पर भलीभाँतिसे संयुक्त होकर यज्ञभूमिमें गमन करनेकी अभिलाषासे अवतीर्ण होती हैं। वेगपूर्वक गमन करनेवाली और सबका नियमन करनेवाली इन समस्त किरणों द्वारा आदित्य जलराशिको निम्न देशमें प्रेरण करते हैं ।

५ हे अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र अत्यन्त मनोहर है। जब निःसृत सोमरस काष्ठमय पात्रमें गृहीत होता है एवम् तुम उस सोमरसको ग्रहण करके मनोहर स्तोत्रको सुनकर उल्लासित होते हो, तब उपासकोंके मध्यमें तुम्हारी विशेष शोभा होती है। हे जीवनदाता, यज्ञमें तुम रक्षण करने-वाली शिखाको सर्वत्र वर्द्धित करो ।

६ यह वैश्वदेवी जिस प्रकार दृष्ट होती है, उसी प्रकार वर्णित भी होती है। साधक दीप्तिके साथ यह जलके मध्यमें अपना रूप या स्तुति धारण करती है। वे देवता हमलोगोंके द्वारा पूज्य प्रभूत धन, महावेग, असंख्य वीर्यशाली पुत्र और अक्षय बल प्रदान करें।

वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७॥
ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८॥
समुद्रमासामवतस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९॥
स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥१०॥
श्येन आसामदितिः कक्ष्यो मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥११॥

७ यह सर्वदर्शी, अग्रगामी सूर्य असुरोंके साथ युद्धाभिलाषी होकर पत्नी उषाके समभिव्या-हारके लिये साहसपूर्वक अग्रसर होते हैं। धन इन्हींके अधीन है। वे हमलोगोंको उज्ज्वल और सर्वत्र रक्षाकारी गृह तथा पूर्ण सुख प्रदान करें।

८ हे देवश्रेष्ठ सूर्य या अग्नि, यजमान तुम्हारे निकट गमन करते हैं। तुम उदयादि लक्षण द्वारा परिज्ञात होते हो। ऋषि लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं, जिससे तुम्हारा नाम वर्द्धित होता है। वे जिस विषयकी कामना करते हैं, कार्य द्वारा उसे प्राप्त करते हैं। एवम् जो अपनी इच्छासे पूजा करते हैं, वे प्रचुर पुरस्कार प्राप्त करते हैं।

९ हम लोगोंके इन समस्त स्तोत्रोंके मध्यमें प्रधान स्तोत्र समुद्र-तुल्य सूर्यके निकट उप-स्थित हो। यज्ञ-गृहमें जो उनका स्तोत्र विस्तीर्ण होता है, वह नष्ट नहीं होता है। जिस स्थानमें (स्तोताओंके गृहमें) पवित्र सूर्यके प्रति चित्त समर्पित होता है, वहाँ उपासकोंका हृदयगत अभिलाष विफल नहीं होता है।

१० वह सविता देव सबके द्वारा स्तुत्य हैं—सबकी कामनाओंके पूरक हैं। उनके निकटसे हम क्षत्र, मनस, अवद, यजत, सध्रि और अवत्सार नामक ऋषि ज्ञानियों द्वारा भोगयोग्य बल-वान् अन्नको चिन्ता द्वारा पूर्ण करते हैं।

११ विश्ववार, यजत और मायी ऋषिका सोमरस-जनित मद शंसनीय-गमन श्येन पक्षीकी तरह शीघ्रगामी है, अदितिकी तरह विस्तृत और कक्षापूरक है। वे सोमपान करनेके लिये पर-स्पर प्रार्थना करते हैं और प्रचुर पान करके अतिरिक्त मत्तता लाभ करते हैं।

सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥१२॥
सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३॥
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४॥
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१५॥

---

१२ सदापृण, यजत, बाहुवृक्त, श्रुतवित् और तर्य ऋषि तुम लोगोंके साथ मिलित होकर शत्रु-संहार करें। वे ऋषि इहलोक और परलोक दोनों लोकोंका सकल श्रेष्ठ कामना लाभ कर दीप्तिमान् हों; क्योंकि वे सुमिश्रित हव्य या स्तोत्र द्वारा विश्वदेवोंकी उपासना करते हैं।

१३ यजमान अवत्सारके यज्ञमें सुतम्भर ऋषि सुन्दर फलोंके पालयिता होते हैं। समस्त यज्ञ-कार्यको ऊर्द्ध्वमें उन्नीत करते हैं। गौएं सुन्दर रसयुक्त दुग्ध प्रदान करती हैं। यह दुग्ध वितरित होता है। इस क्रमसे घोषणा करके अवत्सार निद्रा-परित्याग-पूर्वक अध्ययन करते हैं।

१४ जो देव सर्वदा गृहमें जागरित रहते हैं, ऋचाएं उनकी कामना करती हैं। जो देव सदा जागरूक रहते हैं, साम (स्तोत्र आदि) उन्हें प्राप्त करता है। जो देव सर्वदा जागरित रहते हैं, उनसे यह अभिषुत सोम कहे कि "हमें स्वीकार करे। हे अग्नि, हम तुम्हारे नियत स्थानमें सहवास करें।"

१५ अग्निदेव सर्वदा गृहमें जागरित रहते हैं, ऋचाएं उनकी कामना करती हैं। अग्निदेव सदा जागरूक रहते हैं, साम (स्तोत्र आदि) उन्हें प्राप्त करता है। अग्निदेव सर्वदा जागरित रहते हैं, उनसे यह अभिषुत सोम कहे कि, "हमें स्वीकार करें। हे अग्नि हम तुम्हारे नियत स्थानमें सहवास करें।"

४५ सूक्त

४ अनुवाक । विश्वदेवगण देवता । सदापृण ऋषि । त्रिष्टुप छन्द ।

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥१॥
वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद्गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः स्वादो अर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥२॥
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥३॥
सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४॥

१ अङ्गिराओंकी स्तुतियोंसे इन्द्रने स्वर्गसे वज्र निक्षेप करके पणियों द्वारा अपहृत निगूढ़ धेनुओंका पुनरुद्धार किया था। आगामिनी उषाकी रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होती हैं। पुञ्जभूत अन्धकार (निशा) को विनष्ट करके सूर्य उदित होते हैं। मनुष्योंके गृहद्वारोंको उन्होंने उन्मुक्त किया है।

२ पदार्थ (घट-पट आदि) जिस प्रकारसे भिन्न-भिन्न रूप (नील पीत आदि) प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकारसे सूर्य अपनी दीप्ति विस्तारित करते हैं। किरण-जालकी जननी उषा सूर्यके आगमनकी उत्प्रेक्षा करके विस्तृत अन्तरिक्षसे अवतीर्ण होती हैं। तटको विध्वंस करनेवाली नदियाँ प्रवहमान वारिराशिके साथ प्रवाहित होती हैं। गृहमें स्थापित सुघटित स्तम्भकी तरह स्वर्ग सुदृढ़ भावसे अव-स्थान करता है।

३ महान् स्तोत्रोंके उत्पादक प्राचीनोंकी तरह जबतक हम स्तुति करते हैं, तबतक मेघके गर्भमें स्थित वारि-राशि हमारे ऊपर पतित होती है। मेघसे जल पतित होता है। आकाश अपने कार्यका साधन करता है। सर्वत्र परिचर्या करनेवाले अङ्गिरा लोग कर्मानुष्ठान द्वारा नितान्त परिश्रान्त होते हैं।

४ हे इन्द्र, हे अग्नि, हम परित्राणके लिये देवोंके द्वारा सेवनीय उत्कृष्ट स्तोत्रोंसे तुम दोनोंका आह्वान करते हैं। भली भाँतिसे यज्ञ करनेवाले मरुतोंकी तरह कर्मतत्पर-परिचरण करने-वाले ज्ञानी लोग, स्तोत्र द्वारा, तुम दोनोंकी उपासना करते हैं।

एतो न्वद्य सुध्यो भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥ ५ ॥
एता धियं कृणवाम सखायोप या मातॉ ऋणुत व्रजं गोः।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६॥
अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥७॥
विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद्गोभिरङ्गिरसो नवन्त।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद्गाः ॥८॥
आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद्गोषु गच्छन् ॥९॥

५ इस यज्ञदिनमें शीघ्र आगमन करो। हम लोग शोभन कर्म करनेवाले होते हैं। विशेष रूपसे शत्रुओंकी हिंसा करते हैं। प्रच्छन्न शत्रुओंको दूर करते हैं और यजमानोंके अभिमुख शीघ्र गमन करते हैं।

६ हे मित्रो, आओ। हम लोग स्तोत्र पाठ करें। जिसके द्वारा अपहृत धेनुओंका गोष्ठ उद्घाटित हुआ था। जिसके द्वारा मनुने हनुविहीन शत्रुको जीता था। जिसके द्वारा वणिककी तरह बहु-फलाकांक्षी कक्षीवानने जलकी इच्छासे वनमें जाकर जल लाभ किया था।

७ इस यज्ञमें ऋत्विकोंके हस्त द्वारा संचालित पाषाण-खण्डसे शब्द उत्थित होता है, जिसके द्वारा नवग्वों और दशग्वोंने इन्द्रको पूजा की थी। यज्ञमें उपस्थित होकर सरमाने गौओंको प्राप्त किया था और अङ्गिराओंके सकल स्तवादि कर्म सफल हुए थे।

८ इस पूजनीय उषाके उदयकालमें जब अङ्गिरा लोग प्राप्त धेनुओंके साथ मिलित हुए थे, तब उस उत्कृष्ट यज्ञशालामें उपयुक्त दुग्धस्राव होने लगा; क्योंकि सत्य मार्गसे सरमाने गौओंको देख पाया था।

९ सात अश्वोंके अधिपति सूर्य हम लोगोंके सम्मुख उपस्थित हों; क्योंकि उन्हें आयास-साध्य पथ द्वारा एक सुदूरवर्ती गन्तव्य स्थानमें उपस्थित होना होगा। वे श्येन पक्षीकी तरह शीघ्रगामी होकर प्रदत्त हव्यके उद्देशसे अवतरण करते हैं। वे स्थिर-यौवन तथा दूरदर्शी देव निज रश्मिके मध्यमें अवस्थान करके प्रभा विस्तारित करते हैं।

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्रा न नावमनयन्त धीरा आश्रृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१०॥
धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरं दशमासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥११॥

---

४६ सूक्त

प्रथम ६ ऋक्के विश्वदेवगण देवता और सप्तम तथा अष्टमके देवपत्नी देवता ।
प्रतिक्षत्र ऋषि । जगती और त्रिष्टुप छन्द ।

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरः एत ऋजुनेषति ॥१॥

---

१० उज्ज्वल वारिराशिके ऊपर सूर्य आरोहण करते हैं। जब वे कान्तपृष्ठवाले अश्वोंको रथमें युक्त करते हैं, तब उन्हें धीमान् यजमान्, जैसे जलके ऊपर नाव हो, उसी तरहसे आनयन करते हैं। वारिराशि उनके आदेशको श्रवण करके अवनत होती है।

११ हे देवो, हम जलके लिये तुम लोगोंके सर्वदायक स्तोत्रका पाठ करते हैं। नवग्वगणने जिसके द्वारा दशमास-साध्य यज्ञका सम्पादन किया था। जिस स्तोत्र-पाठसे हमलोग देवोंके द्वारा रक्षणीय हों और पापकी सीमाका अतिक्रमण करें।

---

१ सर्वज्ञ प्रतिक्षत्रने यज्ञभारमें अपनेको शकटमें अश्वकी तरह नियोजित किया है। हम होता अथवा अध्वर्यु उस अलौकिक रक्षाविधायक भारको वहन करते हैं। इस भारवहनसे हम छुटकारा पानेकी इच्छा नहीं करते हैं। यह भार बारम्बार हमारे प्रति समर्पित हो, ऐसी कामना भी हम नहीं करते हैं। मार्गाभिज्ञ, अन्तर्यामी देव पुरोगामी होकर सरल पथ द्वारा मनुष्योंको ले जायँ।

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्द्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२॥
इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३॥
उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥४॥
उत त्यन्नो मारुतं शर्द्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं वरुणो मित्रो अर्यमा ॥५॥
उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६॥

२ हे अग्नि, इन्द्र वरुण और मित्र आदि देवो, तुम सब हमें बल प्रदान करो। विष्णु और मरुत् बल प्रदान करें। नासत्यद्वय, रुद्र, देवपत्नियाँ, पूषा, भग और सरस्वती हम लोगोंकी पूजासे प्रसन्न हों ।

३ हम रक्षाके लिये इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, आदित्य, द्यावापृथिवी, मरुद्गण, पर्वत, जल, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति और सविताका आह्वान करते हैं ।

४ विष्णु अथवा अहिंसाकारी वायु अथवा धनदाता सोम हम लोगोंको सुख प्रदान करें । ऋभुगण, अश्विद्वय, त्वष्टा और विभु हम लोगोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिये अनुकूल हों ।

५ पूजनीय तथा स्वर्गलोकमें वर्त्तमान मरुद्गण कुशाके ऊपर उपवेशन करनेके लिये हम लोगोंके निकट आगमन करें । बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमा हम लोगोंको सम्पूर्ण गृहसम्बन्धी सुख प्रदान करें ।

६ शोभन स्तुतिवाले पर्वत और दानशीला नदियाँ हम लोगोंकी रक्षा करें । धनदाता भगदेव अन्न और रक्षाके साथ आगमन करें । सर्वत्र व्याप्त होनेवाली देवमाता अदिति हमारे स्तोत्र या आह्वानको श्रवण करें ।

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥७॥
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥८॥

७ इन्द्र आदि देवोंकी पत्नियाँ हमलोगोंके स्तोत्रकी कामना करके हमलोगोंकी रक्षा करें। वे हम लोगोंकी इस तरहसे रक्षा करें, जिससे हमलोग बलवान् पुत्र तथा प्रभूत अन्न लाभ करें। देवियो, तुम सब पृथिवीपर रहो या अन्तरिक्षमें उदकव्रत (कर्म) में निरत रहो; परन्तु हमलोग तुम्हारा सुन्दर आह्वान करते हैं। तुम सब हमलोगोंको सुख प्रदान करो।

८ देवियाँ, देवपत्नियाँ हव्य भक्षण करें। इन्द्राणी, अग्नायी, दीप्तिमती अश्विनी, रोदसी, वरुणानी आदि प्रत्येक हमलोगोंकी स्तुतिको श्रवण करें। देवियाँ हव्य भक्षण करें। देवपत्नियोंके मध्यमें जो ऋतुओंकी अधिष्ठात्री देवी है, वह स्तोत्र श्रवण करें और हव्य भक्षण करें।

द्वितीय अध्याय समाप्त

तृतीय अध्याय
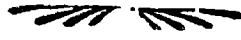
४७ सूक्त

विश्वदेवगण देवता। प्रतिरथ ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१॥
अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवाँसो अमृतस्य नाभिम्।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥२॥
उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥३॥
चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दशगर्भञ्चरसे धापयन्ते।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥४॥

---

१ परिचर्याकारिणी, नित्य तरुणी, पूजनीया और पूजिता उषा आहूत होकर शक्तिमती जननीकी तरह कन्या-स्वरूप पृथिवीका चैतन्य विधान करती हैं, मानवोंके कार्यको प्रवर्तित करती हैं और द्युलोकसे रक्षाकारी देवोंके साथ यज्ञगृहमें आगमन करती हैं।

२ असीम और सर्वव्यापिनी रश्मियाँ प्रकाशन रूप अपने कर्तव्यका सम्पादन करके, अमर सूर्य-मण्डलके साथ एकत्र उपवेशन करके द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षमें परितः गमन करती हैं।

३ उदक अथवा कामनाओंके सेचक, देवोंके आनन्द-विधायक, दीप्तिमान् और द्रुतगामी रथने जनक-स्वरूप पूर्व दिशामें प्रवेश किया था। पश्चात् स्वर्गके मध्यमें निहित विभिन्नवर्ण और सर्वव्यापी सूर्य अन्तरिक्षके उभय प्रान्तमें अग्रसर हुए थे और जगत्की रक्षा की थी।

४ अपनी कल्याण-कामना करके चार ऋत्विक् सूर्यको हवि द्वारा धारण करते हैं। दसों दिशा निज गर्भजात आदित्यको दैनिक गतिके लिये प्रेरित करती हैं। आदित्यको, शीत, ग्रीष्म और वर्षाके भेदसे, त्रिविध रश्मियाँ अन्तरिक्षकी सीमामें द्रुतवेगसे परिभ्रमण करती हैं।

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या सबन्धू ॥५॥
वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥६॥
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शंयोरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥७॥

४८ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । अत्रिके अपत्य प्रतिभानु ऋषि । जगती छन्द ।

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आं अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥१॥

---

५ हे ऋत्विको, यह पुरोभागमें दृश्यमान शरीरमण्डल अतिशय स्तवनीय है । इसी मण्डलसे नदियाँ प्रवाहित होती हैं । जलराशि इसमें अवस्थान करती है । अन्तरिक्षसे अन्य युग्मभूत समानबल अहोरात्र इसीसे उत्पन्न हुए हैं । वे इसे धारण करते हैं ।

६ इसी सूर्यके लिये यजमान स्तोत्र और यज्ञका विस्तार करते हैं । इसी पुत्रस्वरूप सूर्यके लिये माताएँ (उषा या दिशाएँ) तेजोरूप वस्त्र बुनती हैं । वर्षणकारी सूर्यके सम्पर्कसे हृष्ट होकर पत्नी-स्वरूप रश्मियाँ आकाश-मार्ग होकर हमलोगोंके निकट उपस्थित हों ।

७ हे मित्र और वरुण, इस स्तोत्रको ग्रहण करो । हे अग्नि, हमलोगोंके मिश्र (विशुद्ध) सुखके लिये इस स्तोत्रको ग्रहण करो । हमलोग स्थिति और प्रतिष्ठा लाभ करें । हम दीप्तिमान, शक्तिमान् और सबके आश्रयभूत सूर्यको नमस्कार करते हैं ।

---

१ सबके प्रिय और पूजनीय उस वैद्युत तेजकी कब हम पूजा करेंगे ? जो स्वाधीन बल है और जिसके सब अन्न अपने हैं । जब आच्छादनकारिणी या सेव्यमाना आग्नेय शक्ति प्रभावती होकर परिमेय अन्तरिक्षमें मेघके ऊपर वृष्टिजलको विस्तारित करती है ।

ता अत्नत वयूनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥२॥
आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमाजिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वेदमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥३॥
तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥४॥
स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥५॥

२ ऋत्विकों द्वारा प्राप्त करने योग्य ज्ञानको ये उषा विस्तारित करती हैं क्या ? एक प्रकारकी आवरक दीप्ति द्वारा सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करती है । देवाभिलाषी लोग निवृत्त (व्यतीत) और आगामिनी उषाओंको त्याग कर वर्तमान उषाके द्वारा अपनी बुद्धिको वर्द्धित करते हैं ।

३ अहोरात्रमें निष्पन्न सोम द्वारा हृष्ट होकर इन्द्र मायावी वृत्रके लिये दीर्घ वज्रको दीप्त करते है । इन्द्रात्मक आदित्यकी शतसंख्यक रश्मियाँ दिवसोंको भलीभाँतिसे निवर्तित और प्रवर्तित करके अपने गृह आकाशमें विचरण करती हैं ।

४ परशुकी तरह अग्निकी उस स्वाभाविक जातिको हम देखते हैं । रूपवान् आदित्यके रश्मिसमूहका कीर्त्तन हम भोगके लिये करते हैं । वह देव (आदित्य) सहायक होकर यज्ञस्थलमें आह्वानकारी यजमानको अन्नपूर्ण गृह तथा रत्न प्रदान करते हैं ।

५ रमणीय तेजसे आच्छादित होकर अग्नि अन्धकार और शत्रुओंको विनष्ट करते हैं तथा चारों तरफ ज्वालाको विस्तारित करके जिह्वा द्वारा घृतादिको प्राप्त करते हैं । पुरुषत्व द्वारा कामनाओंके पूरक अग्निको हम नहीं जानते हैं; क्योंकि ये महान् भजनीय सविता देव वरणीय धन प्रदान करते हैं ।

४९ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । अत्रिके अपत्य प्रतिप्रभ ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥१॥
प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥२॥
अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥३॥
तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धवः इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥४॥
प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥५॥

१ अभी हम तुम यजमानोंके लिये सविता और भगदेवके समीप उपस्थित होते हैं। वे मनुष्य यजमानोंको धन प्रदान करते हैं । हे नेतृस्वरूप बहुभोगकर्ता अश्विद्वय, तुम दोनोंसे मैत्री-की कामना करके हम प्रतिदिन तुम दोनोंकी उपस्थिति-प्रार्थना करते हैं ।

२ हे अन्तरात्मा, शत्रुओंके निवारक सविताका प्रत्यागमन जानकर सूक्तों द्वारा उनकी परि-चर्या करो । वे मनुष्योंको श्रेष्ठ धन दान करते हैं । नमस्कार अथवा हविर्विशेषसे उनका स्तवन करो ।

३ पोषक, भजनीय तथा अखण्डनीय अग्नि जिह्वा द्वारा वरणीय काष्ठको दहन करते हैं अथवा वरणीय अन्न यजमानको प्रदान करते हैं। सूर्य तेजको आच्छादित करते हैं। इन्द्र, विष्णु, वरुण, मित्र और अग्नि आदि दर्शनीय देव शोभन (याग-दानादिविशिष्ट) दिवसको उत्पन्न करते हैं।

४ किसीके द्वारा भी अतिरस्कृत सविता देव हमलोगोंको अभिमत धन प्रदान करें। उस धनको देनेके लिये स्पन्दनशील नदियाँ गमन करें। इसीलिये हम यज्ञके होता स्तोत्र पाठ करते हैं। हम बहुविध धनके स्वामी हों, अन्न और बलसे रमणीय हों।

५ जिन यजमानोंने वसुओंको (यज्ञमें निवास करनेवाले देवोंको) गमनशील अन्न दिया है और जिन्होंने मित्र तथा वरुणके लिये स्तोत्र पाठ किया है, उन्हें महान् तेज प्राप्त हो। हे देवो, उन्हें दीर्घतर सुख प्रदान करो । हम द्यावा-पृथिवीकी रक्षा प्राप्त कर हृष्ट हों।

५० सूक्त

विश्वदेवगण देवता। अत्रिके अपत्य स्वति ऋषि। अनुष्टुप् और पंक्ति छन्द।

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥१॥
ते ते देव नतर्ये चेमाँ अनुशसे। ते राया ते ह्या पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥२॥
अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥३॥
यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद्द्रोण्यः पशुः।
नृमणा वीरपस्त्योर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥
एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः।
शं राये शं स्वस्तय इषः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥

१ सम्पूर्ण मनुष्य सविता देवसे सखिताकी प्रार्थना करते हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उनसे धन चाहते हैं। उनके अनुग्रहसे सब लोग, पुष्टिके लिये, पर्याप्त धन प्राप्त करते हैं।

२ हे नेता, हे देव, तुम्हारे उपासक हम यजमान तथा इन्द्रादिके उपासक होता प्रभृति तुम्हारे ही हैं। हम और वे दोनों ही धनयुक्त हों। हमलोगोंकी कामना सिद्ध हो।

३ इसलिये इस यज्ञमें हम ऋत्विजोंके, अतिथिकी तरह, पूज्य देवोंकी परिचर्या करो। इसलिये इस यज्ञमें हविः प्रदान करके देवपत्नियोंकी परिचर्या करो। हे देवो, पृथक्कर्ता देव-समूह या सविता दूर मार्गमें वर्तमान समस्त वैरियोंको या अन्य शत्रुओंको दूर करें।

४ जिस यज्ञमें यज्ञको वहन करनेवाला, यूपयोग्य पशु यूपके निकट उपस्थित होता है, उस यज्ञमें सविता यजमानको कुशल तथा धीर स्त्रीकी तरह गृह, पुत्र, भृत्यादि और धन प्रदान करते हैं।

५ हे नेता, हे सविता देव तुम्हारा यह धनवान और सबको पालन करनेवाला रथ हम लोगोंका कल्याण करे। हम सब स्तुतियोग्य सविताके स्तोता हैं। हम धनके लिये, सुखके लिये तथा अविनष्ट होनेके लिये उनकी स्तुति करते हैं एवम हम सविता देवके स्तोता उनकी स्तुति करते हैं।

५१ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । स्वस्ति ऋषि । गायत्री, जगती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरागहि । देवेभिर्हव्यदातये ॥१॥

ऋतधीतय आगत सत्यधर्माणो अध्वरम् । अग्नेः पिबत जिह्वया ॥२॥

विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरागहि । देवेभिः सोमपीतये ॥३॥

अयं सोमश्चमू सुतोमत्रे परिषिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ॥४॥

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये । पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥५॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः । ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥६॥

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं नयन्ति सिन्धवोभि प्रयः ॥७॥

---

१ हे अग्नि, तुम सोमपानके लिये इन्द्र आदि सम्पूर्ण रक्षक देवोंके साथ हव्य देनेवाले हम यजमानोंके समीप आओ ।

२ हे सत्यस्तुतिवाले अथवा अबाध्य कर्म करनेवाले देवो, हे सत्यको धारण करनेवालो, तुम सब हमारे यज्ञमें आगमन करो और अग्निकी जिह्वा द्वारा आज्य अथवा सोमरस आदिका पान करो ।

३ हे मेधाविन् अथवा विविध कामनाओंके पूरक सम्भजनीय अग्नि, प्रातःकालमें आनेवाले मेधावी देवोंके साथ तुम सोमपानके लिये आगमन करो ।

४ यह पुरोभागमें वर्तमान सोम अभिषवण फलक द्वारा अभिषुत हुआ है और पात्रमें पूर्ण किया गया है । यह इन्द्र और वायुके लिये प्रिय है । हे इन्द्र और वायु, इस सोमरसको पीनेके लिये आगमन करो ।

५ हे वायु, हवि देनेवाले यजमानके लिये प्रीयमाण होकर तुम सोमपान करनेके लिये आगमन करो । आकरके अभिषुत सोमरूप अन्नका भक्षण करो ।

६ हे वायु, तुम और इन्द्र इस अभिषुत सोमको पान करनेके योग्य हो; इसीलिये अहिंसक होकर तुम दोनों इस सोमरसका सेवन करो और सोमात्मक अन्नके उद्देशसे आगमन करो ।

७ इन्द्र तथा वायुके लिये दधिमिश्रित सोम अभिषुत हुआ है—सम्पादित हुआ है । हे इन्द्र और वायु, निम्नगामिनी नदियोंकी तरह वह सोम तुम दोनोंके अभिमुख गमन करता है ।

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥८॥

सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥९॥

सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥१०॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११॥

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३॥

---

८ हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण देवोंके साथ मिलकर तथा अश्विद्वय और उषाके साथ समान प्रीति स्थापित करके आगमन करो। यज्ञमें जैसे अत्रि रमण करते हैं, वैसे ही तुम भी अभिषुत सोममें रमण करो।

९ हे अग्नि, तुम मित्र, वरुण, सोम तथा विष्णुके साथ मिलकर आगमन करो। यज्ञमें जैसे अत्रि रमण करते हैं, वैसे ही तुम भी अभिषुत सोममें रमण करो।

१० हे अग्नि, तुम आदित्य, वसुगण, इन्द्र और वायुके साथ मिलकर आगमन करो। यज्ञमें जैसे अत्रि रमण करते हैं, वैसे ही तुम भी अभिषुत सोममें रमण करो।

११ हम लोगोंके लिये अश्विद्वय अविनश्वर कल्याण करें, भग कल्याण करें तथा देवी अदिति कल्याण करें। बलवान् अथवा सत्यशील और शत्रु-संहारक अथवा बलदाता पूषा हम लोगोंका मङ्गल करें। शोभन ज्ञानविशिष्ट द्यावापृथिवी हम लोगोंकाका मङ्गल करें।

१२ कल्याणके लिये हमलोग वायुका स्तवन करते हैं और सोमका भी स्तवन करते हैं। सोम निखिल लोकके पालक हैं। सब देवोंके साथ मन्त्रपालक बृहस्पतिकी स्तुति कल्याणके लिये करते हैं। अदितिके पुत्र देवगण अथवा अरुणादि द्वादश देव हम लोगोंके लिये कल्याणकर हों।

१३ इस यज्ञ दिनमें सम्पूर्ण देव हमलोगोंके लिये कल्याण करें और रक्षा करें। मनुष्योंके नेता और गृहदाता अग्नि हम लोगोंके लिये कल्याण करें और रक्षा करें। दीप्तिमान् ऋभुगण भी हमलागोंके कल्याणकी रक्षा करें। रुद्रदेव हम लोगोंके कल्याणकी, पापसे, रक्षा करें।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥१४॥
स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥१५॥

५२ सूक्त

मरुद्गण देवता । अत्रिके अपत्य श्यावाश्व ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥१॥
ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥२॥

---

१४ हे अहोरात्राभिमानी मित्र और वरुण देव, तुम दोनों मङ्गल करो । हे हितमार्गाभिमानिनी धनवती देवी, कल्याण करो । इन्द्र और अग्नि दोनों ही हम लोगोंका कल्याण करें । हे अदिति देवी; तुम हम लोगोंका कल्याण करो ।

१५ सूर्य और चन्द्र जिस तरहसे निरालम्ब मार्गमें राक्षसादिके उपद्रवके विना सञ्चरण करते हैं, उसी तरहसे हम लोग भी मार्गमें सुखपूर्वक विचरण करें । प्रवासमें चिरकाल ह जानेसे भी अक्रुद्ध और स्मरण करनेवाले बन्धुओंसे हम मिलित हों ।

---

१ हे श्यावाश्व ऋषि, तुम धीरतासे स्तुतियोग्य मरुतोंकी अर्चना करो । यागयोग्य मरुद्गण प्रतिदिन हविर्लक्षण अहिंसक अन्नको प्राप्त करके प्रमुदित होते हैं ।

२ वे अविचलित बलके सखा हैं, वे धीर हैं, वे मार्गमें परिभ्रमण करते हैं और स्वेच्छापूर्वक हमारे पुत्र-भृत्यादिकी रक्षा करते हैं ।

ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽतिस्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥३॥
मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥४॥
अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥५॥
आ रुक्मैरायुधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥६॥
ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥७॥
शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥८॥

३ स्पन्दनशील और जलवर्षक मरुद्गण रात्रिको अतिक्रम करके गमन करते हैं। जिस लिये वे इस प्रकारके हैं; इसीलिये हम अभी मरुतोंके द्युलोक और भूमिमें वर्तमान तेजकी स्तुति करते हैं।

४ हे होताओ, तुम लोग धीरतापूर्वक मरुतोंको किस लिये स्तवन और हव्य प्रदान करते हो? इसीलिये कि, वे सम्पूर्ण मरणशील मनुष्योंको सब कालमें हिंसकोंसे बचाते हैं।

५ हे होताओ, जो पूजनीय, सुन्दर दानविशिष्ट, कर्मके नेता और अधिक बलवाले हैं, ऐसे यागयोग्य द्योतमान मरुतोंको यज्ञसाधन हव्य प्रदान करो।

६ वृष्टिके नेता महान मरुद्गण रोचमान आभरण-विशेषसे तथा आयुध-विशेषसे शोभित होते है। मेघभेदनके लिये वे आयुध-विशेषको प्रक्षिप्त करते है। विद्युत् शब्द करनेवाली जलराशिकी तरह मरुतोंका अनुगमन करती है। द्योतमान् मरुतोंकी दीप्ति स्वयम् निःसृत होती है।

७ जो पृथ्वी-सम्बन्धी मरुद्गण हैं, और वर्द्धमान होते हैं, जो महान् अन्तरिक्षमें वर्द्धमान् होते हैं, वे नदियोंके बल (धारा) में तथा महान् द्युलोकके मध्यमें वृद्धि प्राप्त करें। इस प्रकार वृष्टिके लिये सर्वत्र वर्द्धमान मरुत् मेघभेदनके लिये आयुध-विशेषको प्रक्षिप्त करते हैं।

८ हे स्तोताओ, मरुतोंके उत्कृष्ट बलकी स्तुति करो। वह बल अत्यन्त प्रवृद्ध तथा सत्य मूल है। वृष्टिके नेता मरुद्गण, गमनशील होकर सबकी रक्षा-बुद्धिसे, जलके लिये, स्वयम् परिश्रान्त होते हैं।

उत स्मा ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥९॥

आपथयो विपथयोन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥१०॥

अधा नरो न्योहतेधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥११॥

छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कारिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्नतायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२॥

य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३॥

अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४॥

---

९ मरुद्गण परुष्णी नामक नदीमें वर्तमान रहते हैं और सबको शुद्ध करनेवाली दीप्ति द्वारा अपनेको आच्छादित करते हैं। वे अपने रथचक्रके द्वारा या बलके द्वारा मेघ अथवा पर्वतको विदीर्ण करते हैं।

१० जो मरुद्गण हम लोगोंके अभिमुख मार्गसे गमन करते हैं, जो सर्वत्र गमन करते हैं, जो गिरि-कन्दराओंमें गमन करते हैं और जो अनुकूल मार्गगामी हैं, वे उपर्युक्त चारों नामवाले मरुद्गण विस्तृत होकर हमारे लिये यज्ञ वहन करते हैं।

११ अभिमत वृष्ट्यादिके नेता जगत्का अतिशय वहन करते हैं। स्वयम् सम्मिलित करनेवाले जगत्का अतिशय वहन करते हैं। दूर देश अन्तरिक्षमें वे ग्रह, तारा, मेघ आदिको धारण करते हैं। इस प्रकारसे उनके रूप नानाविध और दर्शनीय होते हैं।

१२ छन्द द्वारा स्तुति करनेवाले और जलकी इच्छा करनेवाले स्तोता लोगोंने मरुतोंकी स्तुति की थी तथा तृषित गोतमके पानार्थ कूपका आनयन किया था। उनमें कुछ मरुतोंने अदृश्य तस्करकी तरह स्थित होकर हमारी रक्षा की थी तथा कितने ही प्राण रूपसे दृश्यमान होकर शरीरका बल साधन किया था।

१३ हे श्यावाश्व ऋषि, जो मरुद्गण दर्शनीय, विद्युद् रूपी आयुधसे विद्योतमान, मेधावी और सबके विधाता हैं, उन मरुद्गणकी, रमणीय स्तुतिसे, तुम परिचर्या करो।

१४ हे ऋषि, तुम हविर्दान तथा स्तुतिके साथ मरुतोंके निकट आदित्यकी तरह उपस्थित होओ। हे बल द्वारा पराभूत करनेवाले मरुतो, तुमलोग द्युलोकसे अथवा अन्य दोनों लोकोंसे हमारे यज्ञमें आगमन करो। हम सब तुम्हारी स्तुति करते हैं।

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥१५॥
प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥१६॥
सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥१७॥

---

५३ सूक्त

मरुद्गण देवता । अत्रिके अपत्य श्यावाश्व ऋषि । ककुप्, बृहती, गायत्री, अनुष्टुप् और उष्णिक् छन्द ।

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥१॥

---

१५ स्तोता शीघ्रतासे मरुतोंकी स्तुति करके अन्य देवोंकी अभिप्राप्ति-कामना नहीं करते हैं। स्तोता ज्ञानसम्पन्न, शीघ्र गमनमें प्रसिद्ध तथा फलदाता मरुतोंसे अभिमत दान प्राप्त करते हैं।

१६ जिन प्रेरक मरुतोंने हमें अपने बन्धुओंके अन्वेषणमें यह वचन कहा था। उन्होंने द्यु देवता अथवा पृश्निवर्ण गौको माता बताया था और अन्नवान् अथवा गमनवान् रुद्रको अपना पिता बताया था, वे समर्थ हैं।

१७ सप्त-सप्त-सङ्ख्यक * सर्वसमर्थ मरुद्गण एक-एक होकर हमें शतसंख्यक गौ-अश्व आदि दें। इनके द्वारा प्रदत्त गोसमूहात्मक प्रसिद्ध धनको हम यमुना नीरमें प्राप्त करें। उनके द्वारा प्रदत्त-अश्व समूहात्मक धनको प्राप्त करें।

---

१ कौन पुरुष मरुतोंकी उत्पत्तिको जानता है? कौन पहले मरुतोंके सुखमें वर्तमान था? जब उन्होंने पृषतीको रथमें युक्त किया था, तब इनके बललक्षक सुखको कौन जानता था?

---

* अदितिके गर्भमें वर्तमान वायुको इन्द्रने जाकर सात टुकड़ा किया था; फिर एक-एक टुकड़ेको सात-सात खण्ड किया था। वे ही उनचास मरुत् हुए। —सायण।

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इलाभिर्वृष्टयः सह ॥२॥
ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥३॥
ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥४॥
युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥५॥
आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥६॥
ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥७॥

---

२ ये मरुद्गण रथपर उपविष्ट हुए हैं, यह किसने सुना है अथवा इनकी रथध्वनिको किसने सुना है ? यह किस प्रकार गमन करते हैं, यह कौन जानता है ? अथवा देव आदि किस प्रकार इनका अनुगमन करें ? किस दानशीलके लिये बन्धुभूत वर्षक मरुद्गण, बहुत अन्नके साथ, अवतीर्ण होंगे ?

३ सोमपान-जनित हर्षके लिये द्युतिमान् अश्वोंपर आरोहण करके जो मरुत् हमारे निकट आये थे, उन्होंने कहा था – वे नेता, मनुष्योंके हितकर्ता और मूर्त्तिहीन हैं। उस प्रकार हम लोगोंको स्थित देखकर उन्होंने कहा कि, हे ऋषि, स्तवन करो।

४ हे मरुतो, जो दीप्ति तुमलोगोंके आभरणके आश्रयभूत है, जो आयुधोंमें है जो माला-विशेषमें है, जो उरोभूषणमें है और जो हस्त-पादस्थित कटकोंमें है एवम् जो दीप्ति रथ तथा धनुषमें विद्यमान है उन समस्त दीप्तियोंकी हम वन्दना करते हैं।

५ हे शीघ्र दान देनेवाले मरुतो, वृष्टिकी सर्वत्र गमनशील दीप्तिकी तरह तुम लोगोंके दृश्यमान रथको देखकर हम प्रमुदित होते हैं और स्तुति करते हैं।

६ नेता तथा शोभन दानवाले मरुद्गण हवि देनेवाले यजमानके लिये अन्तरिक्षसे जलधारक मेघको बरसाते हैं। वे द्यावापृथिवीके लिये मेघको विमुक्त करते हैं। इसके अनन्तर वृष्टिप्रद मरुत सर्वत्र गमनशील उदकके साथ व्याप्त होते हैं।

७ निर्भिद्यमान मेघसे निःसृत जलराशि उदकके साथ अन्तरिक्षमें प्रसारित होती है, जैसे दुग्ध सिञ्चन करनेवाली नवप्रसूता गौ हो। मार्गमें जानेके लिये विमुक्त शीघ्रगामी अश्वकी तरह नदियाँ महावेगसे प्रधावित होती हैं।

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ॥८॥
मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तु वः ॥९॥
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥
शर्धं शर्धं व एषां व्रातं व्रातं गणङ्गणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥
कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।
एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥
येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥१३॥

८ हे मरुतो, तुम लोग द्युलोकसे, अन्तरिक्षसे अथवा इसी लोकसे आगमन करो। दूर देश द्युलोक इत्यादिमें अवस्थान नहीं करो।

९ हे मरुतो, रसा, अनितभा और कुभा नामकी नदियाँ एवम् सर्वत्र गमनशील सिन्धु (समुद्र) तुम लोगोंको नहीं रोकें। जलमयी सरयू तुम लोगोंको निरुद्ध नहीं करें। हम सब तुम्हारे आगमन-जनित सुख प्राप्त करें।

१० तुमलोगोंके प्रेरक नूतन रथके बलकर और दीप्त मरुद्गणका हम स्तवन करते हैं। वृष्टि मरुतोंका अनुगमन करती है अथवा वृष्टिप्रद मरुद्गण सर्वत्र गमन करते हैं।

११ हे मरुतो, हम शोभन स्तुति और हविः प्रदानादि लक्षण कार्य द्वारा तुम्हारे बलको, अविवक्षित गणका और सम-सम-समुदायात्मक गणका अनुसरण करते हैं।

१२ आजके दिन किस हव्य देनेवाले यजमानके निकट, प्रकृष्ट रथ द्वारा, मरुद्गण गमन करेंगे ?

१३ जिस दयायुक्त हृदयसे तुम लोग पुत्र और पौत्रको अक्षीण धान्यबीज बहु बार प्रदान करते हो, उसी चित्तसे हम लोगोंको भी वह धान्यबीज प्रदान करो। क्योंकि हम लोग तुम्हारे निकट सर्वान्नोपेत अथवा आयुर्युक्त तथा सौभाग्यात्मक धनकी याचना करते हैं।

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥१४॥
सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः समर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥१५॥
स्तुहि भोजान्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥

५४ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
धर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥१॥

---

१४ हे मरुतो, हम लोग कल्याण द्वारा पापको परित्याग करके निन्दक शत्रुओंको जीतें। तुम्हारे द्वारा वृष्टिके प्रेरित होनेपर हम सुख, पाप-निवारक उदक और गोयुक्त औषध प्राप्त करें।

१५ हे पूजित और नेता मरुतो, तुम लोग जिसकी रक्षा करते हो, वह देवों द्वारा अनुगृहीत और शोभन पुत्र-पौत्रादिसे युक्त होता है। हम लोग उसी व्यक्तिकी तरह हों; क्योंकि हम लोग तुम्हारे ही हैं।

१६ हे ऋषि, स्तुति करनेवाले इस यजमानके यज्ञमें तुम दाता मरुद्गणकी स्तुति करो। तृणादि भक्षण करनेके लिये गमन करनेवाली गौओंकी तरह मरुद्गण आनन्दित होते हैं। पुरातन बन्धुकी तरह गमनशील मरुतोंका आह्वान करो। स्तवनकी इच्छा करनेवाले मरुतोंकी, वचन द्वारा, स्तुति करो।

---

१ मरुत्सम्बन्धी बलके लिये इस क्रियमाण स्तुतिको प्रेषित करो अर्थात् मरुतोंके बलकी प्रशंसा करो। वे स्वयम् तेजोविशिष्ट पर्वतोंको विदिर्ण करनेवाले, घर्मशोषक, द्युलोकसे आगत और द्योतमान अन्नवाले हैं। इन्हें प्रचुर अन्न प्रदान करो।

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोवना परिज्रयः ॥२॥
विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृत स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥३॥
व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यंतरिक्षं विरजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥४॥
तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥५॥
अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥६॥

२ हे मरुतो, तुम्हारे गण प्रादुर्भूत होते हैं। वे दीप्तमान्, जगद्रक्षणार्थ जलाभिलाषी, अन्नके वर्द्धयिता, गमन करनेके लिये अश्वोंको रथमें युक्त करनेवाले सर्वत्र गमनशील और विद्युत्‌के साथ सम्मिलित होनेवाले हैं। उसी समय त्रित (मेघ या मरुद्गण) शब्द करते हैं और चतुर्दिक् गमन करनेवाली जलराशि भूमिपर पतित होती है।

३ विद्योतमान तेजवाले, वृष्टि आदिके नेता, आयुधसे युक्त (पत्थर रूप आयुधवाले), प्रदीप्त, पर्वत अथवा मेघको विदीर्ण करनेवाले, बारम्बार उदक-दाता, वज्रक्षेपक, एकत्र शब्द करनेवाले, उद्धतबल, मरुद्गण वृष्टिके लिये प्रादुर्भूत होते हैं।

४ हे रुद्रपुत्र मरुतो, तुम लोग अहोरात्रको प्रवर्तित करो। हे सर्वसमर्थ, तुम लोग अन्तरिक्ष तथा लोकोंको विक्षिप्त करो। हे कम्पनकारी, तुम लोग समुद्रगर्भस्थ नौकाकी तरह मेघोंको कम्पित करो। तुम लोग शत्रुओंके नगरोंको विध्वस्त करो। हे मरुतो, हिंसा मत करो।

५ हे मरुतो, सूर्य जिस तरहसे बहुत दूरतक अपनी दीप्तिको विस्तारित करते हैं अथवा देवोंके अश्व जिस तरहसे गमनमें दीर्घताको विस्तारित करते हैं, उसी तरहसे तुम्हारे सुप्रसिद्ध वीर्य और महिमाको स्तोता लोग दूरतक विस्तारित करते हैं।

६ हे वृष्टिके विधाता मरुतो, तुम लोग उदकवान् मेघको ताड़ित करते हो। तुम्हारा बल शोभमान होता है। हे परस्पर समान प्रीतिवाले मरुतो, नयन जिस तरहसे मार्गप्रदर्शनमें नायक होता है, उसी तरहसे तुम लोग हमें सुगम मार्ग द्वारा धनादिके समीप ले जाओ।

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७॥
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथीवीं मध्वो अन्धसा ॥८॥
प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९॥
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥१०॥
अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११॥

---

७ हे मरुतो, तुम लोग जिस मन्त्रद्रष्टा ब्राह्मण या राजाको सत्कर्ममें प्रेरित करते हो, वह दूसरोंके द्वारा न पराभूत होता है और न हिंसित होता है। वह न कभी क्षीण होता है, न पीड़ित होता है और न कोई बाधा प्राप्त करता है। उसका धन और उसकी रक्षा कभी नष्ट नहीं होती है।

८ नियुत्संज्ञक अश्वोंसे युक्त, संघातमक पदार्थोंके विश्लेषयिता (मिलित पदार्थोंको पृथक् करनेवाले), नराकार अथवा नेता अथवा ग्रामजेता मनुष्यकी तरह और आदित्यकी तरह दीप्त मरुद्गण उदकवान् होते हैं। जब वे अधिपति होते हैं, तब कूपादि निम्न प्रदेशको अथवा मेघको जलपूर्ण करते हैं और शब्दायमान होकर सुमधुर तथा सारभूत जलसे पृथ्वीको सिंचित करते हैं।

९ यह पृथिवी मरुतोंके लिये विस्तीर्ण प्रदेशवाली होती है अर्थात् सम्पूर्ण पृथिवी मरुतोंकी है। द्युलोक भी मरुतोंके संचारणके लिये विस्तीर्ण होता है। अन्तरिक्षस्थित मार्ग मरुतोंके गमनके लिये विस्तीर्ण होता है। मरुतोंके लिये ही मेघ या पर्वत शीघ्र वर्षक होते हैं।

१० हे महाबलवाले सबके नेता मरुतो तथा हे द्युलोकके नेता, तुम लोग सूर्यके उदित होनेपर सोमपानके लिये हृष्ट होते हो, उस समय तुम लोगोंके अश्व गमनकार्यमें शिथिल नहीं होते हैं। तुम लोग भी तीनों लोकोंके सम्पूर्ण मार्गको पार करते हो।

११ हे मरुतो, तुम लोगोंके स्कन्ध प्रदेशमें आयुध शोभमान होते हैं। पैरोंमें कटक, वक्षःस्थलमें हार और रथके ऊपर शोभमान दीप्ति है। तुम लोगोंके हस्तद्वयमें अग्निदीप्त रश्मियाँ हैं और मस्तकपर विस्तीर्ण हिरण्मयी पगड़ी है।

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥१२॥
युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्यो यथा दिवो स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३॥
यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥
तद्वो यामि द्रविणं सद्य ऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नॄँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥१५॥

१२ हे मरुतो, जब तुम लोग गमन करते हो, तब अप्रतिहत दीप्तिशाली स्वर्ग और समुज्ज्वल वारिराशि विचलित हो जाती है। जब तुम लोग हमारे द्वारा प्रदत्त हव्यको खाकर बलशाली होते हो और उज्ज्वल भावसे दीप्ति प्रकाशित करते हो एवम् जब तुम लोग उदकवर्षणकी अभिलाषा प्रकट करते हो, तब तुम लोग भीषण रूपसे गर्जना करते हो।

१३ हे विविध बुद्धिवाले मरुतो, हम लोग रथाधिपति हैं। हम लोग तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्नवान् धनके स्वामी हों। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन कभी नष्ट नहीं होता है, जैसे आकाशसे सूर्य कभी नहीं विलग होते है। हे मरुतो, हम लोगोंको अपरिमित धन द्वारा आनन्दित करो।

१४ हे मरुतो, तुम लोग धन और स्पृहणीय पुत्र-भृत्यादि प्रदान करो। हे मरुतो, तुम लोग सोमसहित विप्रकी रक्षा करो। हे मरुतो, तुम लोग श्यावाश्वको धन और अन्न प्रदान करो। वे देवोंका यजन करते हैं। हे मरुतो, तुम लोग राजाको सुखयुक्त करो।

१५ हे सद्यः रक्षणशील मरुतो, तुम लोगोंसे हम धनकी याचना करते हैं। सूर्य जिस तरहसे अपनी रश्मिको दूरतक विस्तारित करते हैं, उसी तरहसे हम भी अपने पुत्र-भृत्यादिको उसी धनसे विस्तारित करें। हे मरुतो, तुम लोग हमारे इस स्तोत्रकी कामना करो, जिससे हम सौ हेमन्त अतिक्रमण करें अर्थात् सौ वर्ष जीवित रहें।

५५ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥२॥
साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥३॥
आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥५॥

---

१ अतिशय यष्टव्य और दीप्त आयुधवाले मरुद्गण यौवन रूप प्रभूत अन्न धारण करते हैं। वे वक्षःस्थलपर हार धारण करते हैं । सुखपूर्वक नियमन योग्य (विनीत) तथा शीघ्रगामी अश्व उन्हें वहन करते हैं । शोभनभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

२ हे मरुतो, तुम लोग जैसा जानते हो अर्थात् जो उचित समझते हो, वैसी सामर्थ्य स्वयम् धारण करते हो तुम्हारी सामर्थ्य अप्रतिबद्ध है । हे मरुतो, तुम लोग महान् और दीर्घ होकर शोभमान होओ; अन्तरिक्षको बल द्वारा व्याप्त करो । शोभमान भावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

३ महान् मरुद्गण एक साथ ही उत्पन्न हुए हैं और एक साथ ही वर्षक होते हैं । वे अतिशय शोभाके लिये सर्वत्र वर्द्धमान हुए हैं । सूर्यरश्मिकी तरह वे यागादि कार्यके नेता तथा शोभासम्पन्न हैं । शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

४ हे मरुतो, तुम लोगोंकी महत्ता स्तवनीय है । तुम लोगोंका रूप सूर्यकी तरह दर्शनीय है । हमारे मोक्षमें अर्थात् स्वर्ग प्राप्तिके विषयमें तुम लोग हमारे सहायक होओ । शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

५ हे मरुतो, तुम लोग अन्तरिक्षसे वृष्टिको प्रेरित करो । हे जलसम्पन्न, तुम लोग वर्षण करो । हे दर्शनीयो अथवा शत्रुसंहारको, तुम्हारे प्रीणयिता (सन्तुष्ट करनेवाले) मेघ कभी भी शुष्क नहीं होते हैं । शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान् प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६॥
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७॥
यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥८॥
मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातनम् शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

६ हे मरुतो, जब तुम लोग रथके अग्र भागमें पृषती (मरुतोंके घोड़ेका नाम अथवा पृषद्वर्णवाली घोड़ी) अश्वको युक्त करते हो, तब हिरण्य वर्णवाले कवचको उतार देते हो । तुम लोग सब संग्रामोंमें विजय प्राप्त करते हो । शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करने वाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

७ हे मरुतो, पर्वत तथा नदियाँ तुम लोगोंके लिये प्रतिरोधक नहीं हों । तुम लोग जिस किसी यज्ञादि स्थानमें जानेके लिये सङ्कल्प करते हो, वहाँ जाते ही हो । वृष्टिके लिये तुम लोग द्यावा-पृथिवीमें व्याप्त होते हो । शोभमानभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करने वाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

८ हे मरुतो, जो यागादि कार्य पूर्वमें अनुष्ठित हुआ है और जो अभी हो रहा है, हे वसुओ, जो कुछ मन्त्र गीत होता है तथा जो कुछ स्तोत्र पाठ होता है, तुम लोग वह सब जानो । शोभनभावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

९ हे मरुतो, तुम लोग हमें सुखी करो । हम लोगोंके द्वारा किसी अनिष्ट कार्यके हो जानेसे, जो तुम्हें कोप उत्पन्न हुआ है, उससे हम लोगोंको बाधा मत पहुँचाओ । हम लोगों को अत्यन्त सुख प्रदान करो । स्तुतिको अवगत करके हम लोगोंके साथ मैत्री करो । शोभन भावसे अथवा उदकके प्रति गमन करनेवाले मरुतोंके रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ।

१० हे मरुतो, तुम लोग हमें ऐश्वर्यके अभिमुख ले जाओ । हम लोगोंके स्तोत्रसे प्रसन्न होकर हम लोगोंको पापसे उन्मुक्त करो । हे यजनीय मरुतो, तुम लोग हम लोगोंके द्वारा प्रदत्त हव्य ग्रहण करो, जिससे हम लोग बहुविध धनके अधिपति हों ।

५६ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । बृहती छन्द ।

अग्ने शर्द्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१॥
यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्द्ध भीमसंदृशः ॥२॥
मीह्लुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३॥
नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४॥
उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५॥

१ हे अग्नि, रोचमान आभरणोंसे युक्त और शत्रुओंको पराभूत करनेवाले अथवा यज्ञके प्रति उत्साहित होनेवाले मरुतोंका आह्वान करो। आज यज्ञ दिनमें दीप्तिमान् स्वर्गसे हम लोगोंके अभिमुख आनेके लिये मरुतोंका आह्वान करते हैं।

२ हे अग्नि, जिस प्रकारसे तुम मरुतोंको अत्यन्त पूजित जानते हो--उनका आदर करते हो, उसी प्रकारसे वे हम लोगोंके निकट उपकारक-भावसे आगमन करें। जो तुम्हारे आह्वान-श्रवण मात्रसे ही आगमन करते हैं, उन भयङ्कर-दर्शनवाले मरुतोंको हव्य प्रदान द्वारा वर्द्धित करो।

३ पृथ्वीपर अधिष्ठित मनुष्य दूसरे व्यक्ति द्वारा अभिभूत होनेपर जैसे अपने प्रबल स्वामीके निकट गमन करता है, उसी प्रकार मरुत्सेना उल्लासित होकर हम लोगोंके निकट आगमन करती है। हे मरुतो, तुम लोग अग्निकी तरह कर्मक्षम और भीषणकी तरह दुर्द्धर्ष हो।

४ दुर्द्धर (कठिनतासे हिंसनीय) अश्वकी तरह जो मरुद्गण अपने बलसे विना आयासके ही, शत्रुओंको विनष्ट करते हैं, वे गमन द्वारा शब्दायमान, व्याप्त और संसारको पूर्ण करनेवाले जलसे युक्त मेघको जलके लिये प्रेरित करते हैं।

५ हे मरुतो, तुम लोग उत्थित होओ। हम लोग स्तोत्र द्वारा वर्द्धित, वारिराशिकी तरह समृद्धि-शाली, बलसम्पन्न और अपूर्व मरुतोंका (स्तोत्र द्वारा) आह्वान करते हैं।

युङ्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥६॥
उतस्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत् प्र तं रथेषु चोदत ॥७॥
रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥८॥
तं वः शर्द्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥९॥
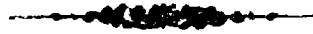
६ हे मरुतो, तुम लोग रथमें अरुषी (रोचमान वड़वा)को युक्त करो। रथसमूहमें रोहित वर्ण अश्वको युक्त करो। भारवहनके लिये शीघ्र गमनवाले हरिद्वयको युक्त करो। * जो वहनकार्यमें सुदृढ़ हैं, उन्हें भार वहनके लिये युक्त करो।

७ हे मरुतो, रथमें नियोजित, दीप्तिमान् प्रभूत ध्वनिकारी और दर्शनीय वह अश्व तुम लोगोंकी यात्राके सम्बन्धमें विलम्बोत्पादन नहीं करे। रथमें नियुक्त उस अश्वको तुम लोग इस प्रकारसे प्रेरित करो, जिससे वह विलम्बोत्पादन नहीं करे।

८ हम लोग मरुद्गणके उस अन्नपूर्ण रथका आह्वान करते हैं, जिस रथके ऊपर सुरमणीय जलको धारण करके मरुतोंके साथ रोदसी (रुद्रकी पत्नी अथवा मरुतोंकी माता या वायुपत्नी, माध्यमिका देवी) अवस्थित हैं।

हे मरुतो, हम तुम लोगोंके उस रथका आह्वान करते हैं, जो शोभाकारी, दीप्तिमान् और स्तुति-योग्य है। जिसके मध्यमें सुजाता, सौभाग्यशालिनी मीळ्हुषी ⊙ मरुतोंके साथ पूजित होती है।

---

* सूर्यके अश्वका नाम अरुण, अग्निके अश्वका नाम रोहित और इन्द्रके अश्वका नाम हरि है।
⊙ मरुन्माता, रुद्रपत्नी, रोदसी।

५७ सूक्त

५ अनुवाक । मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वा स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथनाशुभम् ॥२॥
धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं श्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ।३॥
वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेसशः ॥
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४॥
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥५॥

---

१ हे परस्पर सदयचित्त, सुवर्णमय रथारूढ़, इन्द्रके अनुचर रुद्रपुत्रो, तुम लोग सुगम्य यज्ञमें आगमन करो। हम तुम लोगोंके उद्देशसे यह स्तोत्र पाठ करते हैं। तुम लोग तृषार्त्त और जलाभिलाषी गोतमके निकट जिस प्रकार स्वर्गसे जल लाये थे, उसी प्रकार हम लोगोंके निकट भी आगमन करो।

२ हे सुबुद्धि मरुतो, तुम लोगोंको भक्षणसाधन आयुध, छुरिका, उत्कृष्ट धनुर्बाण, तूणीर और श्रेष्ठ अश्व तथा रथ है। तुम लोग अस्त्र द्वारा सुसज्जित होओ। हे पृश्निपुत्रो, हम लोगोंके कल्याण-विधानार्थ आगमन करो।

३ हे मरुतो, तुमलोग अन्तरिक्षमें मेघोंको विक्षिप्त करो, हव्य-दाताको धन प्रदान करो। तुम लोगोंके आगमन-भयसे वन विकम्पित होते हैं। हे पृश्निपुत्रो, हे कोपनशील बलवालो, जब तुमलोग जलके लिये अपने पृषती अश्वको रथमें युक्त करते हो, तब पृथ्वीके ऊपर कोप प्रकाशित करते हो।

४ मरुद्गण दीप्तिमान, वृष्टिशोधक, यमजकी तरह तुल्यरूप, दर्शनीय-मूर्ति, श्यामवर्ण और अरुण-वर्ण, अश्वोंके अधिपति, निष्पाप और शत्रु क्षयकारी हैं। वे विस्तृत आकाशकी तरह विस्तीर्ण हैं।

५ प्रभूत वारि वर्षणकारी, आवरणधारी, दानशील, उज्ज्वलमूर्ति, अक्षय धनसम्पन्न, सुजन्मा, वक्षःस्थलपर हार धारण करनेवाले और पूजनीय मरुद्गण द्युलोकसे आगमन करके अमरण-साधक उदक (अमृत) प्राप्त करते हैं।

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥६॥
गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७॥
हये नरो मरुतो मृड़ता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥

५८ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥१॥
त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वंदस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥२॥

६ हे मरुतो, तुम लोगोंके स्कन्धदेशमें आयुध-विशेष, बाहुद्वयमें शत्रुनाशक बल, शिरोदेशमें सुवर्णमय उष्णीष, रथके ऊपर आयुध प्रभृति और अङ्गोंमें शोभा अवस्थित है।

७ हे मरुतो, तुम लोग हम लोगोंको बहुत गौ, अश्व, रथ, प्रशस्त पुत्र और हिरण्यके साथ अन्न प्रदान करो। हे रुद्रपुत्रो, तुम लोग हम लोगोंकी समृद्धिको वर्द्धित करो। हम तुम लोगोंकी स्वर्गीय रक्षाका भोग करें।

८ हे मरुतो, तुम लोग हम लोगोंके प्रति अनुकूल होओ। तुम लोग नेता, अतुल ऐश्वर्यशाली, अविनश्वर, वारिवर्षक, सत्य फलसे प्रसिद्ध, ज्ञानसम्पन्न, तरुण, प्रचुर स्तुतियुक्त और प्रभूत वर्षणकारी हो।

---

१ आज यज्ञ दिनमें हम दीप्तिमान् और स्तुतियोग्य मरुतोंका स्तवन करते हैं। मरुद्गण शीघ्रगामी अश्वोंके अधिपति, बलपूर्वक सर्वत्र गतिशील, जलके अधिपति और निज प्रभा द्वारा प्रभान्वित हैं।

२ हे होता, तुम दीप्तिमान् बलशाली, वलय-मण्डित-हस्त, कम्पन-विधायक, ज्ञानसम्पन्न और धनदाता मरुतोंकी पूजा करो। जो सुखदाता हैं, जिनका महत्त्व अपरिमित है, जो अतुल ऐश्वर्यसम्पन्न नेता हैं, उन मरुतोंकी बन्दना करो।

आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३॥
यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४॥
अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५॥
यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभि मरुतो रथेभिः
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यावो स्त्रिय वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६॥
प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७॥

३ जो विश्वव्यापी मरुद्गण वृष्टि प्रेरित करते हैं, वे जलवाहक मरुद्गण अभी तुमलोगोंके निकट उपस्थित हों। हे तरुण और ज्ञानसम्पन्न मरुतो, तुमलोगोंके लिये जो अग्नि प्रज्वलित हुआ है, उसीके द्वारा तुम लोग प्रीति लाभ करो।

४ हे पूजनीय मरुतो, तुम लोग यजमानको अथवा राजाको एक पुत्र प्रदान करो, जो दीप्तिमान, शत्रुसंहारक और विभ्व द्वारा निर्मित हो। हे मरुतो, तुम लोगोंसे हो अपने भुजबल द्वारा शत्रुहन्ता, शत्रुओंके प्रति बाहुप्रेरक और असख्य अश्वोंके अधिपति पुत्र उत्पन्न होते हैं।

५ रथके शङ्कु (कील) की तरह तुमलोग एक साथ हो उत्पन्न हुए हो। दिवसोंकी तरह परस्पर समान हो। पृश्निके पुत्र समान रूपसे ही उत्पन्न हुए है, कोई भी दीप्तिके विषयमें निकृष्ट नहीं हैं। वेगगामी मरुद्गण स्वतः प्रवृत्त होकर भली भाँतिसे वारिवर्षण करते हैं।

६ हे मरुतो, जब तुमलोग पृषती अश्व द्वारा आकृष्ट दृढ़चक्र रथपर आरोहण करके आगमन करते हो, तब वारिराशि पतित होती है, वन भग्न होते है और सूर्य-किरणसे सम्पृक्त वारिवर्षणकारी पर्जन्य अधोमुख होकर वृष्टिके लिये शब्द करते हैं।

७ मरुतोंके आगमनसे पृथ्वी उर्वरता प्राप्त करती है। पति जिस तरहसे भार्याका गर्भ उत्पादन करते हैं, उसी तरह मरुद्गण पृथ्वीके ऊपर गर्भस्थानीय सलिल स्थापित करते हैं। रुद्रके पुत्र शीघ्रगामी अश्वोंको रथके अग्र भागमें युक्त करके वृष्टि उत्पन्न करते हैं।

हये नरो मरुतो मृडतो नस्तुवीमघासो अमृतो ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥

५६ सूक्त

मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । जगती और त्रिष्टुप छन्द ।

प्र वः स्पलक्रन्त्सुविताय दावनेर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१॥
अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥२॥
गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्वश्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३॥
को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४॥

---

८ हे मरुतो, तुम लोग हमारे प्रति अनुकूल होओ । तुम लोग नेता, विपुल ऐश्वर्यशाली, अविनश्वर, वारिवर्षक, सत्य फलसे प्रसिद्ध, ज्ञानसम्पन्न, तरुण, प्रचुर स्तुतियुक्त और प्रभूत वर्षणकारी हो ।

---

१ हे मरुतो, कल्याणके लिये हव्यदाता होता तुम लोगोंका स्तवन भली भाँतिसे करते हैं । हे होता, तुम द्योतमान द्युदेवका स्तवन करो । हे आत्मा, हम पृथ्वीका स्तवन करते हैं । मरुद्गण सर्वव्यापिनी वृष्टिको पातित करते हैं । वे अन्तरिक्षमें सर्वत्र सञ्चरण करते हैं और मेघोंके साथ अपने तेजको प्रकाशित करते हैं ।

२ प्राणियोंसे पूर्ण नौका जैसे जलमध्यमें कम्पित होकर गमन करती है, वैसे ही मरुतोंके भयसे पृथिवी कम्पित होती है । वे दूरसे ही दृश्यमान होनेपर भी गति द्वारा परिज्ञात होते हैं । नेता मरुद्गण द्यावापृथिवीके मध्यमें अधिक हव्य भक्षणके लिये चेष्टा करते हैं ।

३ हे मरुतो, तुमलोग शोभाके लिये गोश्रृङ्गकी तरह उत्कृष्ट शिरोभूषण धारण करते हो । दिवसके नेता सूर्य जिस प्रकारसे निज रश्मि विकीर्ण करते हैं, उसी तरह तुमलोग वृष्टिके लिये सर्वप्रकाशक तेज धारण करते हो । तुमलोग अश्वोंकी तरह वेगवान् और मनोहर हो । हे नेता मरुतो, यजमान आदि जैसे यज्ञादि कार्यको जानते हैं, वैसे ही तुमलोग भी जानते हो ।

४ हे मरुतो, तुम सब पूजनीय हो । तुमलोगोंकी पूजा कौन कर सकता है ? कौन तुमलोगोंके स्तोत्र-पाठमें समर्थ हो सकता है ? कौन तुम लोगोंके वीरत्वकी घोषणा कर सकता है ? क्योंकि तुमलोगोंके द्वारा वृष्टिपात होनेसे भूमि किरणकी तरह कम्पित होने लगती है ।

अश्वा इवेदरुषासः सबन्धवः शूरा इव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्रमिनन्ति वृष्टिभिः ॥५॥
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६॥
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥७॥
मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥

६० सूक्त

अग्नि और मरुद्गण देवता । श्यावाश्व ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१॥

---

५ अश्वोंकी तरह वेगगामी, दीप्तिमान, समान बन्धुवाले मरुद्गण वीरोंकी तरह युद्ध कार्यमें व्याप्त हैं। समृद्धि-सम्पन्न मनुष्योंकी तरह नेता मरुद्गण अत्यन्त शक्तिशाली होकर, वृष्टि द्वारा, सूर्यके चक्षुको आवृत करते हैं।

६ मरुतोंके मध्यमें कोई भी किसीकी अपेक्षा, ज्येष्ठ या कनिष्ठ नहीं हैं। शत्रुसंहारक मरुतोंके मध्यमें कोई भी मध्यम नहीं है। सब तेजोविशेषसे वर्द्धमान हैं। हे सुजन्मा, मानवोंके हितकारी, पृश्निपुत्र मरुतो, तुमलोग द्युलोकसे हमलोगोंके अभिमुख आगमन करो।

७ हे मरुतो, तुमलोग पङ्क्तिबद्ध होकर उड़नेवाले पक्षीकी तरह बलपूर्वक विस्तीर्ण और समुन्नत नभोमण्डलके उपरि भाग होकर अन्तरिक्षके पर्यन्त भागमें गमन करते हो। तुम्हारे अश्व मेघसे वृष्टि पातित करते हैं—यह देव और मनुष्य दोनों ही जानते हैं।

८ द्यावापृथिवी हमलोगोंकी पुष्टिके लिये वृष्टि उत्पादन करें। निरतिशय दानशीला उषा हमलोगोंके कल्याणके लिये यत्न करें। हे ऋषि, ये रुद्रपुत्र तुम्हारे स्तवनसे प्रसन्न होकर स्वर्गीय वृष्टि-वर्षण करें।

---

१ हम श्यावाश्व ऋषि स्तोत्र द्वारा रक्षाकारी अग्निकी स्तुति करते हैं। वे अभी यज्ञमें उपस्थित होकर प्रसन्नतापूर्वक उस स्तोत्रको जानें। जैसे रथ अभिमत स्थानको प्राप्त करता है, उसी तरहसे हम अन्नाभिलाषी स्तोत्रों द्वारा अपने अभीष्टका सम्पादन करते हैं। प्रदक्षिणा करके हम मरुतोंके स्तोत्रको वर्द्धित करें।

आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥२॥
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुतः ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३॥
वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥४॥
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५॥
यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६॥

२ हे उद्यतायुध रुद्रपुत्र मरुतो, तुम लोग प्रसिद्ध अश्वों द्वारा आकृष्ट, शोभन तथा अक्ष-समन्वित रथपर आरूढ़ होकर गमन करो, जब तुम लोग रथाधिरूढ़ होते हो, तब वन तुम्हारे भयसे कम्पित होते हैं।

३ हे मरुतो तुम लोगोंके द्वारा भयङ्कर शब्द किये जानेपर अत्यन्त वर्द्धमान पर्वत भी भीत हो जाते हैं और अन्तरिक्षके उन्नत या विस्तृत प्रदेश भी कम्पित हो जाते हैं। हे मरुतो, तुम सब आयुधवान् हो। जब तुम लोग क्रीड़ा करते हो, तब उदककी तरह प्रधावित होते हो ।

४ विवाहके योग्य धनवान् युवा जिस प्रकार सुवर्णमय-अलङ्कार तथा उदकके द्वारा अपने शरीरको भूषित करता है, उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ, बलशाली मरुद्गण रथके ऊपर समवेत होकर अपने शरीरकी शोभाके लिये तेज धारण करते हैं।

५ ये मरुद्गण एक साथ ही उत्पन्न हुए हैं अथवा समान बलवाले हैं । परस्पर ज्येष्ठ और कनिष्ठभावसे वर्जित हैं। ये मरुद्गण परस्पर भ्रातृभावसे सौभाग्यके लिये वर्द्धमान होते हैं । नित्य तरुण तथा सत्कर्मके अनुष्ठानकारी मरुतोंके पिता रुद्र और जननी-स्वरूपा दोहनयोग्या पृश्नि (गो देवता) मरुतोंके लिये शोभन दिन उत्पन्न करें ।

६ हे सौभाग्यशाली मरुतो, तुम लोग उत्तम (उत्कृष्ट) द्युलोकमें, मध्यम द्युलोकमें अथवा अधोद्युलोकमें वर्तमान होते हो । हे रुद्रो, उन स्थानों (तीनों द्युलोकों)से हमलोगोंके लिये आगमन करो। हे अग्नि, हम आज जो हवि प्रदान करते हैं, उसे तुम जानो ।

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधिष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७॥
अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥८॥

६१ सूक्त *

मरुद्गण, तरन्त राजाकी भार्या शशीयसी, पुरुमीहळ, तरन्त और रथवीति देवता ।
श्यावाश्व ऋषि । गायत्री, अनुष्टुप और बृहती छन्द ।

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एक एक आयय । परमस्याः परावतः ॥१॥

७ हे सर्वज्ञ मरुतो, तुम लोग और अग्नि द्युलोकके उत्कृष्टतर ऊपरि प्रदेशमें अवस्थान करते हो । तुम लोग हमारे स्तवन और हव्यसे प्रसन्न होकर शत्रुओंको कम्पित तथा विनष्ट करो और अभिषव करनेवाले यजमानोंको अभिलषित धन प्रदान करो ।

८ हे वैश्वानर अग्नि, पुरातन ज्वाल-पुञ्जसे युक्त होकर तुम शोभमान, पूजनीय, गणभावका आश्रय (समवेत) करनेवाले, पवित्रताविधायक, प्रीतिदायक और दीर्घजीवी मरुतोंके साथ सोमपानकरो ।

---

१ हे श्रेष्ठतम नेताओ, तुमलोग कौन हो ? दूर देश अर्थात् अन्तरिक्षसे तुमलोग एक-एक करके उपस्थित होओ ।

---

* आगम-पारदर्शियोंने एक आश्चर्यजनक इतिहास बताया है कि, दर्भपुत्र रथवीतिने अत्रिवंशज अर्चनानाको होतृकार्यमें नियुक्त किया था । अर्चनानाने राजपुत्रीको अपने पिताके समीप देख करके अपने पुत्र श्यावाश्वके साथ उसका विवाह कर देनेके लिये राजासे प्रार्थना की । राजी होकर राजाने अपनी महिषीसे इस विषयमें पूछा । उन्होंने कहा कि, हमारे कुलकी कन्याका विवाह ऋषियोंके साथ होता है और यह श्यावाश्व ऋषि नहीं हैं; अतः इनके साथ मेरी कन्याका विवाह कैसे हो सकता है ?

श्यावाश्वने राजकुमारीको प्राप्त करनेके लिये दारुण तप आरम्भ किया । एक दिन भिक्षा माँगते-माँगते वे तरन्तकी महिषी शशीयसीके निकट पहुँचे । शशीयसीने उन्हें अपने पतिके सम्मुख उपस्थित कर दिया । राजाने उनका समुचित आतिथ्य सत्कार किया । शशीयसीने उन्हें गोयूथ और आभरण प्रदान किये । राजाने उन्हें अभिलषित धन प्रदान करके अपने अनुज पुरुमीह्ळके पास भेज दिया । रास्तेमें श्यावाश्वको मरुद्गण मिले । भीत होकर श्यावाश्व मरुतोंकी स्तुति करने लगे । मरुतोंने प्रसन्न होकर उन्हें ऋषिकी पदवी प्रदान की । मरुतोंके प्रसादसे श्यावाश्व सूक्त-द्रष्टा ऋषि हुए । इसके बाद रथवीति और उनकी महिषीने श्यावाश्वके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया । पुरुमीह्ळ तरन्त, शशीयसी, रथवीति और मरुतोंने सन्तुष्ट होकर श्यावाश्वको जो-जो दिया था, वही इस सूक्तमें वर्णित है । —सायण

क वोऽश्वाः काभीशवः कथं शेक कथा यय ।
पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥२॥
जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः ।
पुत्र कृथे न जनयः ॥३॥
परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः ।
अग्नितपो यथासथ ॥४॥
सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥५॥
उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी ।
अदेवत्रादराधसः ॥६॥
वि या जानाति जसुरिं वितृष्यन्तं वि कामिनम् ।
देवत्रा कृणुते मनः ॥७॥

२ हे मरुतो, तुम लोगोंके अश्व कहाँ हैं ? लगाम कहा हैं ? शीघ्र गमनमें समर्थ होते हो ? किस प्रकारका गमन है ? अश्वोंके पृष्ठ देशपर आस्तरण और नासिकाद्वयमें बन्धनरज्जु लक्षित होते हैं ।

३ अश्वोंके जघन देशमें शीघ्र गमनके लिये कशा (कोड़ा) घात होता है । पुत्रोत्पादन (संगम) कालमें जैसे रमणियाँ उरुद्वयको विवृत करती हैं, उसी प्रकार नेता मरुद्गण अश्वोंको, उरुद्वय विवृत करनेके लिये, बाध्य करते हैं ।

४ हे वीरो, शत्रुसंहारको, हे मनुष्योंके लिये कल्याण करनेवालो, हे शोभन जन्मवालो, मरुत्पुत्रो, तुम लोग अग्नितप्त ताम्रकी तरह प्रदीप्त दृष्ट होते हो ।

५ श्यावाश्व (हम) ने जिसकी स्तुति की है, जिसने वीर तरन्तको भुजपाशमें बद्ध किया है, वही तरन्त महिषी शशीयसी हमें अश्व, गौ और शतमेषात्मक पशुयूथ प्रदान करती है ।

६ जो पुरुष देवोंकी आराधना और धन दान नहीं करता है, उस पुरुषका अपेक्षा स्त्री शशीयसी सर्वांशमें श्रेष्ठ है ।

७ वह शशीयसी व्यथित (ताडित-उपेक्षित) को जानती है, तृष्णार्तको जानती है और धनाभिलाषीको जानती है अर्थात् कृपावश हो अभिमत धन प्रदान करती है । वह देवोंके प्रीत्यर्थ प्रदान-बुद्धि करती है अर्थात् देवोंके प्रति अपने चित्तको समर्पित करती है ।

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुव पणिः ।
स वैरदेय इत्समः ॥८॥
उत मेरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीह्ळाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥९॥
यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् ।
तन्रत इव मंहना ॥१०॥
य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु ।
अत्र श्रवांसि दधिरे ॥११॥
येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा ।
दिवि रुक्म इवोपरि ॥१२॥
युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः ।
शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥१२॥

८ शशीयसीके अर्द्धाङ्गभूत पुरुष तरन्तकी स्तुति करके भी हम बोलते हैं कि, उनका समुचित स्तव नहीं हुआ है; क्योंकि वे दानके विषयमें सब समयमें एकवध हैं ।

९ यौवनवता शशीयसीने मुदितमनसे श्यावाश्वको (हमें) पथ प्रदर्शित किया था। उसके द्वारा प्रदत्त लोहित वर्णवाले दोनों अश्व हमें यशस्वो, विप्र, पुरुमीह्ळके निकट वहन करते हैं अर्थात् सज्जित रथपर बैठाकर उसने ही हमें पुरुमीह्ळके घरतक पहुँचा दिया था।

१० विददश्वके पुत्र पुरुमीह्ळने भी हमें तरन्तकी ही तरह शत धेनु और महामूल्यवान् धन आदि प्रदान किया था।

११ जो मरुद्गण शीघ्रगामी अश्वोंपर आरूढ़ होकर हर्षविधायक सोमरसको पान करते हुए इस स्थानमें आगत हुए थे, वे मरुद्गण इस स्थानपर विविध स्तव धारण करते हैं।

१२ जिन मरुतोंकी कान्तिसे द्यावापृथिवी व्याप्त होती है। ऊपर द्युलोकमें रोचमान आदित्यकी तरह वे मरुद्गण रथके ऊपर विशेष दीप्त होते हैं।

१३ वे मरुद्गण नित्य तरुण, दीप्त रथविशिष्ट, अनिन्द्य, शोभन रूपसे गमन करनेवाले और अप्रतिहत गति हैं।

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः ।
ऋतजाता अरेपसः ॥१४॥
यूयं मर्त्यं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया ।
श्रोतारो यामहूतिषु ॥१५॥
ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः ।
आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥१६॥
एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह ।
गिरो देवि रथीरिव ॥१७॥
उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ ।
न कामो अप वेति मे ॥१८॥
एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु ।
पर्वतेष्वपश्रितः ॥१९॥

१४ जलवर्षणार्थ उत्पन्न अथवा यज्ञमें प्रादुर्भूत, शत्रुओंके कम्पक और निष्पाप मरुद्गण जिस स्थानपर हृष्ट हुए थ, मरुतोंके उस स्थानको कौन व्यक्ति जानता है ?

१५ हे स्तवाभिलाषी मरुतो, जो मनुष्य यजमान इस प्रकार स्तुतिकर्म द्वारा तुमलोगोंको प्रसन्न करता है, उसे तुम लोग अभिमत स्वर्गादि स्थान प्रदर्शित करते हो। यज्ञमें आहूत होनेपर तुमलोग उस आह्वानको श्रवण करते हो।

१६ हे शत्रुसंहारक, पूजनीय, विविध धनशाली मरुतो, तुमलोग हम लोगोंको अभिवाञ्छित धन प्रदान करो।

१७ हे रात्रि देवी, तुम हमारे निकटसे रथवीतिके निकट इस मरुत्स्तुतिको प्रापित करो। यह स्तुति मरुतोंके लिये की गयी है। हे देवी, रथी जिस प्रकारसे रथके ऊपर विविध वस्तु रख करके गन्तव्य स्थानपर उसे ले जाता है, उसी प्रकार तुम हमारे इस सकल स्तवका वहन करो।

१८ हे रात्रि देवी, सोम यज्ञ सम्पन्न होनेपर रथवीतिको तुम यह कहना कि, तुम्हारी पुत्रीके प्रति हमारी कामना नहीं कमी है।

१९ यह धनवान् रथवीति गोमतीके तीरमें निवास करते हैं और हिमवान् पर्वतके प्रान्तमें उनका गृह अवस्थित है।

---

६२ सूक्त

मित्र और वरुण देवता। अत्रिके अपत्य श्रुतविद ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥१॥
तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥२॥
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः।
वर्द्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥३॥
आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक्।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥४॥
अनु श्रुताममतिं वर्द्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥५॥

१ हम तुम लोगोंके आवासभूत, उदक द्वारा आच्छादित, शाश्वत और सत्यभूत सूर्यमण्डलका दर्शन करते हैं। उस स्थानमें अवस्थित अश्वोंको स्तोता लोग मुक्त करते हैं। उस मण्डलमें सहस्र-संख्यक रश्मियाँ अवस्थिति करती हैं। तेजोवान् अग्नि आदि शरीरवान् देवोंके मध्यमें हमने सूर्यके उस श्रेष्ठ मण्डलको देखा है।

२ हे मित्र और वरुण, तुम दोनोंका यह माहात्म्य अत्यन्त प्रशस्त है, जिसके द्वारा निरन्तर परिभ्रमणकारी सूर्य दैनिक गतिसे सम्बद्ध स्थावर जलराशिको दूहते हैं। तुम लोग स्वयं भ्रमणकारी सूर्यकी प्रीतिदायक दीप्तिको वर्द्धित करते हो। तुम दोनोंका एक मात्र रथ अनुक्रमसे परिभ्रमण करता है।

३ हे मित्र और वरुण, स्तोता लोग तुम्हारे अनुग्रहसे राजपद प्राप्त करते हैं। तुम दोनों अपनी सामर्थ्यसे द्यावापृथिवीको धारण करके अवस्थित हो। हे शीघ्र दानकर्त्ताओ, तुम लोग ओषधियों और धेनुओंको वर्द्धित करो एवम् वृष्टि वर्षण करो।

४ हे मित्र और वरुण, तुम दोनोंके अश्व रथमें भली भाँतिसे युक्त होकर तुम दोनोंको वहन करें। सारथिके द्वारा नियन्त्रित होकर अनुवर्तन करें। जलका रूप (मूर्तिमान् जल) तुम दोनोंका अनुसरण करता है। तुम दोनोंके अनुग्रहसे पुरातन नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

५ हे अन्नवान् तथा बलसम्पन्न मित्र और वरुण, तुम दोनों विश्रुत शरीर-दीप्तिको वर्द्धित करते हो। यज्ञ जैसे मन्त्र द्वारा रक्षित होता है, उसी प्रकार तुम दोनों भी पृथ्वीका पालन करो। तुम दोनों यज्ञ-भूमिके मध्यस्थित रथपर आरोहण करो।

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यन्त्रासाथे वरुणेड़ा स्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं विभृथः सह द्वौ ॥६॥
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यश्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमता तिल्विले वा सनेममध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७॥
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥८॥
यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणा ववविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९॥

---

६ हे मित्र और वरुण, तुम दोनों यज्ञभूमिमें जिस यजमानकी रक्षा करते हो, शोभन स्तुति करनेवाले उस यजमानके प्रति तुम दोनों दानशील होओ और उसकी रक्षा करो। तुम दोनों राजा और क्रोधविहीन होकर धन एवम् सहस्र स्तम्भसमन्वित सौध (मंजिलवाला मकान) धारण करते हो।

७ इनका रथ हिरण्मय है और कीलकादि भी हिरण्मय ही है। यह रथ विद्युत्की तरह अन्तरिक्षमें शोभा पाता है। हम लोग कल्याणकर स्थानमें अथवा यूपयष्टि-समन्वित यज्ञभूमिमें, रथके ऊपर, सोमरस स्थापन करें।

८ हे मित्र और वरुण, तुम लोग उषाकालमें सूर्यके उदित होनेपर लौहकील-समन्वित सुवर्णमय रथपर यज्ञमें जानेके लिये आरोहण करो एवम् अदिति अर्थात् अखण्डनीय भूमि और दिति अर्थात् खण्डित प्रजाका अवलोकन करो।

९ हे दानशील तथा विश्वरक्षक मित्र और वरुण, जो सुख व्याघातरहित, अछिन्न और बहुतम है, उस सुखको तुम दोनों धारण करते हो। उसी सुखसे हम लोगोंकी रक्षा करो। हम लोग अभिलक्षित धन लाभ करें और शत्रुविजयी हों।

तृतीय अध्याय समाप्त

चतुर्थ अध्याय

६३ सूक्त

मित्रावरुण देवता। अत्रिके अपत्य अर्चनाना ऋषि। जगती छन्द।

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१॥
सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२॥
सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३॥
माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्यद्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४॥

१ हे उदकके रक्षक सत्य धर्मवाले मित्र और वरुण, तुम दोनों हमारे यज्ञमें आनेके लिये निरतिशय आकाशमें रथके ऊपर अधिरोहण करते हो। हे मित्र और वरुण, इस यज्ञमें तुम दोनों जिस यजमानकी रक्षा करते हो, उस यजमानके लिये मेघ द्युलोकसे सुमधुर वारिवर्षण करता है।

२ हे स्वर्गके द्रष्टा मित्र और वरुण, इस यज्ञमें राजमान होकर तुम दोनों भुवनका शासन करते हो। हम लोग तुम दोनोंके निकट वृष्टि रूप धन तथा स्वर्गकी प्रार्थना करते हैं। तुम दोनोंकी विस्तृत रश्मियाँ द्यावापृथिवीके मध्यमें विचरण करती हैं।

३ हे मित्र और वरुण, तुम दोनों अत्यन्त राजमान, उद्यतबल, वारिवर्षक, द्यावापृथिवीके पति और सर्वद्रष्टा हो। तुम दोनों महानुभाव विचित्र मेघोंके साथ स्तुति श्रवण करनेके लिये आगमन करो। पश्चात् वृष्टिविधायक पर्जन्यकी सामर्थ्य द्वारा द्युलोकसे वृष्टि पातित करो।

४ हे मित्र और वरुण, जब तुम दोनोंके अस्त्रभूत ज्योतिर्मय सूर्य अन्तरिक्षमें परिभ्रमण करते हैं, तब तुम दोनोंकी माया (सामर्थ्य) स्वर्गमें आश्रित (प्रकटित) होती है। तुम दोनों द्युलोकमें मेघ और वृष्टि द्वारा सूर्यकी रक्षा करते हो। हे पर्जन्य देव, मित्र और वरुण, द्वारा प्रेरित होनेपर तुम्हारे द्वारा सुमधुर वारिबिन्दु पतित होता है।

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५॥
वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६॥
धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७॥

---

६४ सूक्त

मित्र और वरुण देवता । अर्चनाना ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१॥

---

५ हे मित्र और वरुण, वीर जिस प्रकारसे युद्धके लिये अपने रथको सज्जित करता है, उसी प्रकार मरुद्गण तुम दोनोंके अनुग्रहसे वृष्टिके लिये सुखकर रथको सज्जित करते है। वारिवर्षण करनेके लिये मरुद्गण विभिन्न लोकोंमें सञ्चरण करते हैं। हे राजमान देवो, तुम दोनों मरुतोंके साथ द्युलोकसे हम लोगोंके ऊपर वारिवर्षण करो।

६ हे मित्र और वरुण, तुम दोनोंके अनुग्रहसे ही मेघ अन्नसाधक, प्रभाव्यञ्जक और विचित्र गर्जन शब्द करता है। मरुद्गण अपनी प्रज्ञाके बलसे मेघोंकी रक्षा, भली भाँतिसे, करते हैं। उनके साथ तुम दोनों अरुणवर्ण तथा निष्पाप आकाशसे वृष्टि पातित करते हो।

७ हे विद्वान् मित्र और वरुण, तुम दोनों जगत्के उपकारक वृष्ट्यादि कार्य द्वारा यज्ञकी रक्षा करते हो। जलके वर्षक पर्जन्यकी प्रज्ञा द्वारा उदक या यज्ञसे समस्त भूतजातको दीप्त करते हो। पूज्य और वेगवान् सूर्यको द्युलोकमें धारण करो।

---

१ हे मित्र और वरुण, हम इस मन्त्रसे तुम दोनोंका आह्वान करते हैं। बाहुबलसे गोयूथके सञ्चालकद्वयकी तरह तुम दोनों शत्रुओंको अपसारित करो और स्वर्गके पथको प्रदर्शित करो।

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२॥
यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥३॥
युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥४॥
आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥५॥
युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च विभृथः ।
उरु णो वजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥६॥
उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा विभ्रताविचनानसम् ॥७॥

---

२ तुम दोनों प्रज्ञासम्पन्न हो । तुम दोनों हम स्तुतिकर्ताको अभिमत सुख प्रदान करो । हम शोभन हस्त द्वारा स्तुति करते हैं । तुम दोनों द्वारा प्रदत्त स्तुति-योग्य सुख सब स्थानमें व्याप्त है ।

३ हम अभी गमन (सङ्गति) प्राप्त करें । मित्रभूत अथवा मित्र द्वारा दर्शित मार्गसे हम गमन करें । अहिंसक मित्रका प्रिय सुख हमें गृहमें प्राप्त हो ।

४ हे मित्र और वरुण, हम तुम दोनोंकी स्तुति करके इस प्रकार धन धारण करेंगे कि, धनिकों और स्तुतिकर्ताओंके घरमें ईर्ष्याका उदय होगा ।

५ हे मित्र, हे वरुण, तुम दोनों सुन्दर दीप्तिसे युक्त होकर हमारे यज्ञमें उपस्थित होओ । ऐश्वर्यशाली यजमानोंके गृहमें एवम् तुम दोनोंके मित्रोंके अर्थात् हमारे गृहमें समृद्धि वर्द्धन करो ।

६ हे मित्र और वरुण, हमारी स्तुतियोंके निमित्त तुम दोनों हमारे लिये प्रचुर अन्न तथा बल धारण करते हो । तुम दोनों हमें अन्न, धन और कल्याण विशेष रूपसे प्रदान करो ।

७ हे अधिनायक मित्र और वरुण, उषा कालमें, सुन्दर किरणसे युक्त प्रातःसवनमें, देव-बलविशिष्ट गृहमें तुम दोनों पूजनीय होते हो । उस गृहमें हमारे द्वारा अभिषुत सोमका तुम दोनों अवलोकन करो । तुम दोनों अर्चनानाके प्रति प्रसन्न होकर गमनसाधन अश्वोंपर आरोहण करके अभी आगमन करो ।

६५ सूक्त

मित्र और वरुण देवता । अत्रिके अपत्य रातहव्य ऋषि । पङ्क्ति और अनुष्टुप् छन्द ।

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥१॥
ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥२॥
ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सुचेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥३॥
मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥४॥
वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुण शेषसः ॥५॥

१ जो स्तोता देवोंके मध्यमें तुम दोनोंकी स्तुति जानता है, वही शोभन कर्म (अनुष्ठान) करने वाला है। वह शोभनकर्मा स्तोता हमें स्तुतिविषयक उपदेश दें, जिनकी स्तुतिको सुन्दर मूर्तिवाले मित्र और वरुण, ग्रहण करते हैं।

२ प्रशस्त तेजवाले और ईश्वरभूत मित्रावरुण दूर देशसे आहूत होनेपर भी आह्वान श्रवण कर लेते हैं। यजमानोंके स्वामी और यज्ञके वर्द्धयिता वे दोनों प्रत्येक स्तोताके कल्याण-विधानार्थ विचरण करते हैं।

३ तुम दोनों पुरातन हो। हम तुम दोनोंके निकट उपस्थित होकर रक्षाके लिये स्तवन करते हैं। वेगवान् अश्वोंके अधिपति होकर हम अन्नप्रदानार्थ तुम दोनोंकी स्तुति करते हैं। तुम दोनों शोभन ज्ञानवाले हो।

४ मित्रदेव पापी स्तोताको भी विशाल गृहमें* निवास करनेका उपाय बताते हैं। हिंसक परिचारकके लिये भी मित्रदेवकी शोभन बुद्धि है।

५ हम यजमान दुःखनिवारक मित्र देवकी विपुल रक्षाके अधिकारी हों। हम तुम्हारे द्वारा रक्षित और निष्पाप होकर हम सब एक कालमें ही वरुणके पुत्र स्वरूप हों।

* यहाँ विशाल गृहका अर्थ स्वर्ग हो सकता है; क्योंकि ५।६४।६, ५।६३।२ और ५।६६।५ ऋचाओंमें एतद्विषयक अति पवित्र चिन्ताएँ देखी जाती हैं।

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥६॥

---

६६ सूक्त

मित्र और वरुण देवता । अत्रिके अपत्य यजत ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥१॥
ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यमाशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥२॥
ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥३॥

---

६ हे मित्र और वरुण हम तुम दोनोंकी स्तुति करते हैं। तुम दोनों हमारे निकट आगमन करो। आकर समस्त अभिलषित वस्तु प्राप्त कराओ। हम अन्नसम्पन्न हैं। हमारा परित्याग नहीं करना। ऋषियोंके अर्थात् हमारे पुत्रोंका परित्याग नहीं करना। सुतसोम यज्ञमें हम लोगोंकी रक्षा करना।

---

१ हे स्तुति विज्ञाता मनुष्य, तुम शोभन कर्मको करनेवाले और शत्रुओंके हिंसक देवद्वयका आह्वान करो। उदकस्वरूप, हविर्लक्षण, अन्नवान् और पूजनीय वरुणको हव्य प्रदान करो।

२ तुम दोनोंका बल अहिंसनीय और असुर-विघातक है अर्थात् तुम दोनों महान् बलवाले हो। सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्षमें दृश्यमान होते हैं, उसी प्रकार मनुष्योंके मध्यमें तुम दोनोंका दर्शनीय बल यज्ञमें स्थापित होता है।

३ हे मित्र और वरुण, तुम दोनों रातहव्यकी प्रकृष्ट स्तुतिसे शत्रुपराभवकारी बल लाभ करके हम लोगोंके इस रथके सम्मुख बहुत दूरतक मार्गरक्षार्थ गमन करते हो। तुम दोनों हम लोगोंके द्वारा स्तुति होते हो।

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता ।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥४॥
तद्दतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५॥
आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ ६ ॥

६७ सूक्त

मित्र और वरुण देवता । अत्रिके अपत्य यजत ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्र माशाथे ॥१॥
आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥२॥

४ हे स्तुतियोग्य और हे शुद्ध बलवाले देवद्वय, हम प्रवृद्धमानकी पूरक स्तुतिसे तुम दोनों अत्यन्त आश्चर्यभूत हो । तुम दोनों अनुकूल मनसे यजमानोंके स्तोत्रको जानते हो ।

५ हे पृथिवी देवी, हम ऋषियोंके प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये तुम्हारे ऊपर प्रभूत जल अवस्थित है । गमनशील देवद्वय निज गतिविधि द्वारा अति प्रचुर परिमाणमें वारि-वर्षण करते हैं ।

६ हे दूरदर्शी मित्र और वरुण, हम और स्तोता लोग तुम दोनोंका आह्वान करते हैं । हम तुम्हारे सुविस्तीर्ण और बहुतों द्वारा गन्तव्य अथवा बहुतोंके द्वारा रक्षितव्य राज्यमें * गमन करें ।

---

१ हे द्योतमान अदितिपुत्र मित्र, वरुण और अर्यमा, तुम सब अभी वर्तमान प्रकारसे यजनीय, बृहत् और अत्यन्त प्रवृद्ध बल धारण करते हो ।

२ हे मित्र और वरुण, हे मनुष्योंके रक्षक तथा शत्रु संहारक, जब तुम लोग आनन्दजनक यज्ञभूमिमें आगमन करते हो, तब तुम लोग हमें सुखी करते हो ।

* मित्रावरुणका राज्य विस्तीर्ण स्वर्गधाम हो सकता है ।

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥३॥
ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥४॥
को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनां ।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५॥

---

६८ सूक्त

मित्र और वरुण देवता । यजत ऋषि । गायत्री छन्द ।

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

---

३ सर्वविद् मित्र, वरुण, अर्यमा अपने-अपने पद (स्थान) के अनुरूप हमारे यज्ञमें संगत होते हैं और हिंसकोंसे मनुष्योंकी रक्षा करते हैं।

४ वे सत्यदर्शी, जलवर्षी और यज्ञरक्षक हैं। वे प्रत्येक यजमानको सत्पथ प्रदर्शित करते हैं और प्रचुर दान करते हैं। वे महानुभाव वरुणादि पापी स्तोताको प्रभूत धन प्रदान करते हैं।

५ हे मित्र और वरुण, तुम दोनोंके मध्यमें सबके द्वारा स्तुतियोंसे कौन अस्तूयमान है? अर्थात् दोनों ही स्तुतियोग्य हैं। हम लोग अल्प बुद्धि हैं। हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। अत्रिगोत्रज लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

---

१ हे हमारे ऋत्विको, तुम लोग उच्चस्वरसे मित्र और वरुणका भली भाँतिसे स्तवन करो। हे प्रभूत बलशाली मित्र और वरुण, तुम दोनों इस महायज्ञमें उपस्थित होओ।

२ जो मित्र और वरुण दोनों ही परस्परापेक्षा सबके स्वामी, जलके उत्पादक, द्योतमान और देवोंके मध्यमें अतिशय स्तुत्य हैं, हे ऋत्विजो, तुम लोग उन दोनोंकी स्तुति करो।

ता नः शक्तम्पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुह्रा देवौ वर्धते ॥ ४ ॥
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥

---

६६ सूक्त

मित्र और वरुण देवता। अत्रिके अपत्य उरुचक्रि ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

त्री रोचना वरुण त्रीरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥१॥

---

३ वे दोनों देव हम लोगोंको पार्थिव धन तथा दिव्य धन दोनों ही देनेमें समर्थ हैं। हे मित्र और वरुणदेव, तुम दोनोंका पूजनीय बल देवोंके मध्यमें प्रसिद्ध है। हम लोग उसका स्तवन करते हैं।

४ उदक द्वारा यज्ञका स्पर्शन करके वे दोनों देव अन्वेषणकारी प्रवृद्ध यजमानको अथवा हव्यको व्याप्त करते हैं। हे द्रोहरहित मित्रावरुण देव, तुम दोनों प्रवृद्ध होते हो।

५ जिन दोनोंके द्वारा अन्तरिक्ष वर्षणकारी होता है, जो दोनों अभिमत फलके प्रापक हैं, वृष्टिप्रद होनेसे जो अन्नके अधिपति हैं, और जो दाताके प्रति अनुकूल हैं, वे दोनों महानुभाव यज्ञके लिये महान रथपर अधिष्ठित होते हैं।

---

१ हे वरुण हे मित्र, तुम दोनों रोचमान तीन द्युलोकको धारण करते हो, तीन अन्तरिक्ष लोकको धारण करते हो और तीन भूलोकको धारण करते हो। तुम दोनों क्षत्रिय यजमानके अथवा इन्द्रके रूप और कर्मकी अविरत रक्षा करते हो।

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२॥
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥३॥
या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥४॥

७० सूक्त

मित्र और वरुण देवता । उरुचक्रि ऋषि । गायत्री छन्द ।

पुरुरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥
ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे ।
वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥

२ हे मित्र और वरुण, तुम दोनोंकी आज्ञासे गौएँ दुग्धवती होती हैं । स्यन्दनशील मेघ वा नदियाँ सुमधुर जल प्रदान करती है । तुम दोनोंके अनुग्रहसे जलवर्षक और उदकधारक तथा द्युतिमान् अग्नि, वायु और आदित्य नामक तीन देव पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोकके स्वामी होकर प्रत्येक अधिष्ठित होते हैं ।

३ प्रातःकालमें और सूर्यके समृद्धि कालमें अर्थात् माध्यन्दिन सवनमें हम ऋषि देवोंकी द्योतमान जननी अदितिका आह्वान करते हैं । हे मित्र और वरुण, हम धन, पुत्र, पौत्र, अरिष्ट-शान्ति और सुखके लिये तुम दोनोंका स्तवन, यज्ञमें, करते है ।

४ हे द्युलोकोत्पन्न अदिति-पुत्रद्वय, तुम दोनों द्युलोक तथा भूलोकके धारणकर्ता हो । हम तुम दोनोंका स्तवन करते हैं । हे मित्र और वरुण, तुम्हारे कार्य स्थिर हैं, उन कार्योंकी हिंसा इन्द्र आदि अमर देवगण भी नहीं कर सकते है ।

---

१ हे मित्र और वरुण, तुम दोनोंका रक्षण-कार्य निश्चय ही अत्यन्त दीर्घतर है । हे वरुण और मित्र, हम तुम दोनोंकी अनुग्रह बुद्धिका सम्भजन करें ।

२ हे द्रोहविवर्जित देवद्वय, हम तुम दोनोंके निकटसे भोजनके लिये अन्न लाभ करें । हे रुद्रो, हम लोग तुम्हारे स्तोता हों । समृद्ध हों अथवा तुम्हारे ही हों ।

पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।
तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥
मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः ।
मा शेषसा मा तनसा ॥ ४ ॥

---

७१ सूक्त

मित्र और वरुण देवता । बाहुवृक्त ऋषि । गायत्री छन्द ।

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा ।
उपेमं चारुमध्वरम् ॥ १ ॥
विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥
उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

---

३ हे रुद्ररूप देवद्वय, तुम दोनों रक्षा द्वारा हमारी रक्षा करो। शोभन त्राण द्वारा पालन करो, अर्थात् इष्टकी प्राप्ति हो, अनिष्टका निराकरण हो और अभिमत फल लाभ हो। हम अपने पुत्रोंके साथ अथवा अपने शरीरसे ही शत्रुओंको हिंसित करें।

४ हे आश्चर्य-जनक कर्म करनेवालो, हम अपने शरीर द्वारा किसीके पूजित (श्रेष्ठ) धनका भी उपभोग नहीं करते हैं। हम तुम्हारे अनुग्रहसे समृद्ध हैं—किसीके धनसे शरीर पोषण भी नहीं करते हैं। पुत्र-पौत्रोंके साथ भी हम दूसरे (तुम्हारे व्यतिरिक्त) के धनका उपभोग नहीं करते हैं। हमारे कुलमें कोई भी दूसरेके धनका उपभोग नहीं करता है।

---

१ हे वरुण हे मित्र, तुम दोनों शत्रुओंके प्रेरक और हन्ता हो। तुम दोनों हमारे इस हिंसा-वर्जित यज्ञमें आगमन करो।

२ हे प्रकृष्ट ज्ञानयुक्त मित्र और वरुण, तुम दोनों सबके स्वामी होते हो। हे हमारे ईश्वरद्वय, फलप्रदान द्वारा हमारे कर्मोंका तुम दोनों पालन करो।

३ हे मित्रावरुण, तुम दोनों हमारे अभिषुत सोमके प्रति आगमन करो। हम हवि देनेवाले हैं। हमारे इस सोमको पीनेके लिये आगमन करो।

७२ सूक्त

मित्र और वरुण देवता । बाहुवृक्त ऋषि गायत्री छन्द ।

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥
मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।
नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥

७३ सूक्त

६ अनुवाक । अश्विद्वय देवता । अत्रिके अपत्य पौर ऋषि । अनुष्टुप छन्द

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥

---

१ हमारे गोत्र प्रवर्तक अत्रिकी तरह हम लोग मन्त्र द्वारा तुम दोनोंका आह्वान करते हैं । इसलिये मित्रावरुण सोमपानके लिये कुशके ऊपर उपवेशन करें ।

२ हे मित्र और वरुण, जगद्धारक कर्मके द्वारा तुम दोनोंके स्थान विचलित नहीं होते हैं । अर्थात् तुम दोनो स्थानच्युत नहीं होते हो । ऋत्विक् लोग तुम दोनोंको यज्ञ प्रदान करते हैं । इसलिये मित्रावरुण सोमपानके लिये कुशके ऊपर उपवेशन करें ।

३ हे मित्र और वरुण, तुम दोनों हमारे यज्ञको अभिलाष-पूर्वक ग्रहण करो और आकर सोमपानके लिये कुशके ऊपर उपवेशन करो ।

---

१ हे अगणित यज्ञमें भोजन करनेवाले, अश्विनीकुमारो, यद्यपि इस समय तुम दोनों अत्यन्त दूर देश द्युलोकमें वर्तमान हो, गमनशक्य अन्तरिक्षमे वर्तमान हो अथवा बहुतर प्रदेशमें वर्तमान हो; तथापि उन सब स्थानोंसे यहाँ आगमन करो ।

इह त्या पुरुभूतमा पुरु दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥
ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥३॥
तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥४॥
आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥५॥
युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥६॥

---

२ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों बहुत यजमानोंके उत्साह-दाता, विविध कर्मोंके धारणकर्ता, वरणीय, अप्रतिहतगति और अनिरुद्धकर्मा हो। इस यज्ञमें हम तुम दोनोंके समीप उपस्थित होते हैं। प्रभूततम भोग और रक्षाके लिये हम तुम दोनोंका आह्वान करते हैं।

३ हे अश्विनीकुमारो, सूर्यकी मूर्तिको प्रदान करनेके लिये तुम दोनोंने रथके एक दीप्तिमान् चक्रको नियमित किया है। अपनी सामर्थ्यसे मनुष्योंके अहोरात्रादि कालको निरूपित करनेके लिये अन्य चक्र द्वारा (तीनों) लोकोंमें परिभ्रमण करते हो।

४ हे व्यापक देवद्वय, हम जिस स्तोत्र द्वारा तुम दोनोंका स्तवन करते है, वह तुम दोनोंका स्तोत्र इस पुरवासोंके द्वारा सुसम्पादित हो। हे पृथक् उत्पन्न तथा निष्पाप देवद्वय, तुम दोनों हमें प्रचुर परिमाणमें अन्न प्रदान करो।

५ हे अश्विनीकुमारो, जब तुम दोनोंकी पत्नी सूर्या तुम दोनोंके सर्वदा शीघ्रगामी रथपर आरोहण करती है, तब आरोचमान और दीप्त आतप (दीप्तियाँ) तुम दोनोंके चतुर्दिक् विस्तृत होते हैं।

६ हे नेता अश्विद्वय, हम लोगोंके पिता अत्रिने तुम दोनोंका स्तवन करके जब अग्निके उत्तापको सुखसेव्य समझा था, तब उन्होंने अग्निदाहोपशम रूप सुख हेतु कृतज्ञ चित्तसे तुम दोनोंके उपकारको स्मरण किया था।

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥७॥
मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८॥
सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृलयत्तमा ॥९॥
इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥१०॥

---

७४ सूक्त

अश्विद्वय देवता । पौर ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥१॥

७ तुम दोनोंका दृढ़, उन्नत, गमनशील, सतत विघूर्णित रथ यज्ञमें प्रसिद्ध है । हे नेता अश्विद्वय, तुम दोनोंके ही कार्य द्वारा हमारे पिता अत्रि आवर्तमान होते हैं अर्थात् तुम दोनोंके कार्य द्वारा उन्होंने परित्राण पाया था ।

८ हे मधुर सोमरसके मिश्रयिता देवो, हम लोगोंकी पुष्टिकर स्तुति तुम लोगोंके ऊपर मधुर रस सिंचन करता है। तुम लोग अन्तरिक्षकी सीमाका अतिक्रमण करते हो। सुपक्व हव्य तुम दोनोंका पोषण करता है।

९ हे अश्विनीकुमारो, पुराविद्गण (पण्डित लोग) तुम दोनोंको जो सुखदाता कहते हैं, वह निश्चय ही सत्य हैं। हमारे यज्ञमें सुखदानार्थ आहूत होनेपर तुम दोनों अतिशय सुखदाता होओ।

१० शिल्पी जिस प्रकार रथोंको प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार हम लोग अश्विद्वयको संवर्द्धित करनेके लिये स्तुति प्रस्तुत करते हैं। वे स्तुतियाँ उन्हें प्रीतिकर हों।

---

१ हे स्तुतिधन, धनवर्षणकारी देवद्वय, आज इस यज्ञ दिनमें तुम दोनों द्युलोकसे आगमन करके भूमिपर ठहरो और उस स्तोत्रको श्रवण करो, जिसे तुम्हारे उद्देशसे अत्रि सर्वदा पाठ करते हैं।

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२॥
कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥३॥
पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥४॥
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनराकाममृण्वे वध्वः ॥५॥
अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां संदृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आगतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥६॥

२ वे दीप्तिमान नासत्यद्वय कहाँ हैं ? आज इस यज्ञ दिनमें वे द्युलोकके किस स्थानमें श्रुत हो रहे हैं ? हे देवद्वय, तुम दोनों किस यजमानके निकट आगमन करते हो ? कौन स्तोता तुम दोनोंकी स्तुतियोंका सहायक है ?

३ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों किस यजमान या यज्ञके प्रति गमन करते हो ? जाकर किसके साथ मिलित होते हो ? किसके अभिमुखवर्ती होनेके लिये रथमें अश्वयोजना करते हो ? किसके स्तोत्र तुम दोनोंको प्रीत करते हैं ? हम लोग तुम दोनोंको पानेकी कामना करते हैं ।

४ हे पौर-सम्बन्धी अश्विनीकुमारो, तुम दोनों पौरके निकट पौरको अर्थात् वारिवाहक मेघको प्रेरित करो । जङ्गलमें व्याधगण जैसे सिंहको ताड़ित करते हैं, वैसे ही यज्ञकर्ममें व्याप्त पौरके निकट तुम दोनों इसे ताड़ित करो ।

५ तुम दोनोंने जराजीर्ण च्यवनके हेय, पुरातन, रूपको कवचकी तरह विमोचित किया था । जब तुम दोनोंने उन्हें पुनर्बार युवा किया था, तब उन्होंने सुरूपा कामिनीके द्वारा वाञ्छित मूर्त्तिको पाया था ।

६ हे अश्विद्वय, इस यज्ञस्थलमें तुमदोनोंके स्तोता विद्यमान हैं । हम लोग समृद्धिके लिये तुम दोनोंके दृष्टिपथमें अवस्थान करें । आज तुम लोग हमारा आह्वान श्रवण करो । तुम लोग अन्नरूप धनसे धनवान् हो । तुम लोग रक्षाके साथ यहाँ आगमन करो ।

को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥७॥
आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।
पुरू चिदस्मयुस्तिर आंगूषो मर्त्येष्वा ॥८॥
शमू षु वा मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९॥
अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृंचन्ति सु वां पृचः ॥१०॥

---

७५ सूक्त

अश्विद्वय देवता । अत्रिके अपत्य अवस्यु ऋषि । पङ्क्ति छन्द ।

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रतिभूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

---

७ हे अन्नरूप धनवान् अश्विद्वय, असंख्य मर्त्यों के मध्यमें कौन व्यक्ति आज सर्वापेक्षा तुम दोनोंको अधिक प्रसन्न करता है ! हे ज्ञानियों द्वारा वन्दित अश्विद्वय, कौन ज्ञानी व्यक्ति तुम दोनोंको सर्वापेक्षा अधिक प्रसन्न करता है अथवा कौन यजमान हो यज्ञ द्वारा तुम दोनोंको अधिक तृप्त करता है ।

८ हे अश्विद्वय अन्य देवताओंके रथोंके मध्यमें सर्वापेक्षा वेगगामी और असंख्य शत्रु-संहारी एवं सम्पूर्ण मनुष्य यजमानों द्वारा स्तुत तुम दोनोंका रथ हम लोगोंकी हित-कामना करके इस स्थानमें आगमन करे ।

९ हे मधुमान् अश्विद्वय, तुम दोनोंके लिये पुनः पुनः सम्पादित स्तोत्र हम लोगोंके लिये सुखोत्पादक हो । हे विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न अश्विद्वय, तुम दोनों श्येन पक्षीकी तरह सर्वत्र गमनशील अश्वपर आरूढ़ होकर हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो ।

१० हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों जिस-किसी स्थानमें अवस्थान करो; किन्तु हमारा यह आह्वान श्रवण करो । तुम दोनोंके निकट गमन करनेकी कामनावाला यह उत्कृष्ट हव्य तुम दोनोंके निकट उपस्थित हो ।

---

१ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनोंके स्तुतिकारी अवस्यु ऋषि तुम दोनोंके फलवर्षणकारी और धनपूर्ण रथको अलङ्कृत करते हैं । हे मधुविद्याको जाननेवालो,* तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

---

* मधुविद्याके सम्बन्धमें १।११६।१२ में लिखा जा चुका है ।

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिंधुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२॥
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ।४॥
बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नियाथो अद्वायिनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५॥
आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६॥

---

२ हे अश्विद्वय, तुम दोनों सब यजमानोंको अतिक्रमण करके इस स्थानमें आगमन करो, जिससे हम समस्त विरोधियोंको पराभूत करें । हे शत्रुसंहारक, सुवर्णमय-रथारूढ़, प्रशस्त-धनसम्पन्न, नदियोंको वेग-प्रवाहित करनेवालो एवम् मधुविद्या-विशारद अश्विद्वय, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

३ हे अश्विद्वय, तुम दोनों हमारे लिये रत्न लेकर आगमन करो । हे हिरण्य-रथाधिरूढ़, स्तुति-योग्य, अन्न-रूप धनवालों, यज्ञमें अधिष्ठान करनेवालो एवम् मधुविद्याविशारद अश्विद्वय, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

४ हे धनवर्षणकारी अश्विद्वय, तुम दोनोंके स्तोताका (मेरा) स्तोत्र तुम दोनोंके उद्देशसे उच्चारित होता है । तुम दोनोंका प्रसिद्ध, मूर्तिमान् यजमान एकाग्रचित होकर तुम दोनोंको हव्य प्रदान करता है । हे मधुविद्या-विशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

५ हे अश्विद्वय, तुम दोनों विज्ञ मनवाले, रथाधिरूढ़, द्रुतगामी एवम् स्तोत्र-श्रवणकर्ता हो । तुम दोनों शीघ्र ही अश्वपर आरोहण करके कपटताविहीन च्यवनके निकट उपस्थित हुए थे । हे मधु-विद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

६ हे नेता अश्विद्वय, तुम दोनोंके सुशिक्षित, द्रुतगामी और विचित्रमूर्त्ति अश्व सोमपानके लिये ऐश्वर्यके साथ इस स्थानमें तुम दोनोंका आनयन करें । हे मधुविद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो ।

अश्विना वेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्य्यया परिवर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥
अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥
अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९॥

---

७६ सूक्त

अश्विद्वय देवता । अत्रिके अपत्य भौम ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

७ हे अश्विद्वय, तुम दोनों इस स्थानमें आगमन करो। हे नासत्यद्वय, तुम दोनों प्रतिकूल नहीं होना। हे अजेय प्रभु, तुम दोनों प्रच्छन्न प्रदेशसे हमारे यज्ञगृहमें आगमन करो। हे मधुविद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

८ हे जलके अधिपति अजेय अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम दोनों स्तवकारी अवस्युके लिये अनुग्रह प्रदर्शन करो। हे मधुविद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

९ उषा विकसित हुई है। समुज्ज्वल किरणसम्पन्न अग्नि वेदीके ऊपर संस्थापित हुए हैं। हे धनवर्षणकारी, शत्रुसंहारक अश्विद्वय, तुम दोनोंके अक्षय्य रथमें अश्व युक्त हों। हे मधुविद्याविशारद, तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो।

---

१ उषाकालमें प्रबुध्यमान अग्नि दीप्त होते हैं। मेधावी स्तोताओंके देवाभिलाषी स्तोत्र उद्गीत होते हैं। हे रथाधिपति अश्विद्वय, तुम दोनों आज इस यज्ञस्थानमें अवतीर्ण होकर इस सोमरसपूर्ण समृद्ध यज्ञमें आगमन करो।

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठांति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥
उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥
इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाभ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

---

७७ सूक्त

अश्विद्वय देवता । भौम ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्रशंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१॥

---

२ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों संस्कृत यज्ञका हिंसा नहीं करो; किन्तु यज्ञके समीप शीघ्र आगमन करके स्तुति-भाजन होओ। प्रातःकालमें रक्षाके साथ तुम दोनों आगमन करो, जिससे अन्नाभाव नहीं हो। आकर हव्यदाता यजमानको सुखी करो।

३ तुम दोनों रात्रिके शेषमें, गोदोहन-कालमें, प्रातःकालमें, सूर्य जिस समय अत्यन्त प्रवृद्ध होते हैं अर्थात् अपराह्न कालमें; सायाह्नमें, रात्रिमें अथवा जिस किसी समयमें सुखकर रक्षाके साथ आगमन करो। अश्विनीकुमारोंको छोड़कर दूसरे देव सोमपानके लिये प्रवृत्त नहीं होते।

४ हे अश्विनीकुमारो, यह उत्तर वेदी तुम दोनोंका निवासयोग्य प्राचीन स्थान है। ये समस्त गृह और आलय तुम दोनोंके ही हैं। तुम दोनों वारिपूर्ण मेघद्वारा समाकीर्ण अन्तरीक्षसे अन्न और बलके साथ हम लोगोंके निकट आगमन करो।

५ हम सब अश्विनीकुमारकी श्रेष्ठ रक्षा तथा सुखदायक अगामनके साथ सङ्गत हों। हे अमरणशील देवद्वय, तुम दोनों हमें धन, सन्तति और समस्त कल्याण प्रदान करो।

---

१ हे ऋत्विको, अश्विद्वय प्रातः कालमें ही सब देवोंसे प्रथम ही उपस्थित होते हैं, तुम सब उनका यजन करो। वे अभिकाङ्क्षी और नहीं देनेवाले राक्षस प्रभृतिके पूर्व ही हव्य पान करते हैं। अश्विद्वय प्रातःकालमें यज्ञका संभजन करते हैं। पूर्वकालीन ऋषिगण प्रातः कालमें ही उनकी प्रशंसा करते हैं।

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥
हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥४॥
समश्विनो रवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
या नो रयिं वहतमोत वीराणा विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

---

२ हे हमारे पुरुषो, प्रातः कालमें ही तुम लोग अश्विनीकुमारोंका पूजन करो । उन्हें हव्य प्रदान करो । सायंकालीन हव्य देवोंके निकट जानेवाला नहीं होता है । देवगण उसे स्वीकृत नहीं करते हैं, वह हव्य असेवनीय हो; जाता है । हमसे अन्य जो कोई सोमद्वारा उनका यजन करता है और हव्य द्वारा उन्हें तृप्त करता है; जो व्यक्ति हम लोगोंसे और दूसरोंसे पहले उनका यजन करता है, वह व्यक्ति देवोंका सम्भजनीय या संभाव्य (अभिमत) होता है ।

३ हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका हिरण्य द्वारा आच्छादित, मनोहर वर्ण, जल वर्षण करनेवाला मनकी तरह वेगवाला, वायुके सदृश वेगपूर्ण और अन्नको धारण करनेवाला रथ आगमन करता है । उस रथके द्वारा तुम दोनों सम्पूर्ण दुर्गम मार्गोंका अतिक्रमण करते हो ।

४ जो यजमान हविर्विभाग होनेवाले यज्ञमें अश्विनीकुमारोंको विपुल अन्न या हव्य प्रदान करता है, वह यजमान कर्म द्वारा अपने पुत्रका पालन करता है । जो अग्निको उद्दीप्त नहीं करते हैं अर्थात् अयष्टा हैं, उनकी सदा हिंसा करते हैं ।

५ हम सब अश्विनीकुमारकी श्रेष्ठ रक्षा तथा सुखदायक आगमनके साथ संगत हों । हे अमरणशील देवद्वय, तुम दोनों हमें धन, सन्तति और समस्त कल्याण प्रदान करो ।

७८ सूक्त

अश्विद्वय देवता । अत्रिके अपत्य सप्तवध्रि ऋषि । उष्णिक्, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा विवेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१॥
अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥२॥
अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥३॥
अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४॥

---

१ हे अश्विनीकुमारो, इस यज्ञमें तुम दोनों आगमन करो । हे नासत्यद्वय, तुम दोनों स्पृहाशून्य मत होओ । जैसे हंसद्वय निर्मल उदकके प्रति आगमन करते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अभिषुत सोमके प्रति आगमन करो ।

२ हे अश्विनीकुमारो, हरिण और गौर मृग जैसे घासका अनुधावन करते हैं एवम् जैसे हंसद्वय निर्मल उदकके प्रति आगमन करते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अभिषुत सोमके प्रति आगमन करो ।

३ हे अन्नके निमित्त निवासप्रद अश्विद्वय, तुम दोनों हमारे यज्ञमें अभीष्टसिद्धिके लिये आगमन करो । जैसे हंसद्वय निर्मल उदकके प्रति आगमन करते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अभिषुत सोमके प्रति आगमन करो।

४ हे अश्विनीकुमारो, विनय करनेपर स्त्री जैसे पतिको प्रसन्न करती है, उसी प्रकार हम लोगोंके पिता अत्रिने तुम्हारी स्तुति करके तुषाग्नि-कुण्डसे मुक्ति-लाभ किया था । तुम दोनों श्येन पक्षीके नवजात वेगसे सुखकर रथ द्वारा हम लोगोंकी रक्षाके लिये आगमन करो ।

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥५॥
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥६॥
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥७॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८॥
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९॥

---

५ हे वनस्पति-विनिर्मित पेटिके (काठके बने बक्स), प्रसव करनेके लिये उद्यत रमणीकी योनिकी तरह तुम विवृत (विस्तृत) होओ या फैल जाओ। × खुले हुए बक्सको ओर सङ्केत है। तुम दोनों हमारा आह्वान श्रवण करो। हम सप्तवध्रि ऋषिको मुक्त करो।‡

६ हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों भीत और निर्गमनके लिये प्रार्थना करनेवाले ऋषि सप्तवध्रिके लिये माया द्वारा पेटिका (बक्स) को संगत और विभक्त करते हो।

७ वायु जिस प्रकार सरोवर आदिको संचालित करती है, उसी प्रकार तुम्हारा गर्भ संचालित हो। + दस मासके अनन्तर गर्भस्थ जीव निर्गत हो।

८ वायु, वन और समुद्र जिस प्रकार कम्पित होते हैं, उसी प्रकार दस मास पर्यन्त गर्भस्थ जीव जरायु-वेष्टित होकर पतित हो।

९ दस मास पर्यन्त जननीके जठरमें अवस्थित जीव जीवित तथा अक्षत रूपसे जीविता जननीसे उत्पन्न हो। ‡‡

× पुराविदोंने ऐसा इतिहास बताया है कि, सप्तवध्रि ऋषिके भाई सप्तवध्रिको रातमें बक्समें बन्द करके रोज रख देते थे, इस लिये कि, वे स्त्री-सहवास नहीं कर सकें। दुःखित होकर उन्होंने अश्विद्वयकी स्तुति की। आकर उन्होंने बक्स खोल दिया। वे स्त्रीसे मिलकर फिर बक्समें बन्द हो गये। सायण।

‡ जहाँ दूसरी उपमाएं सुलभतासे मिल सकती हों, वहाँ भी वैदिक ऋचाओंमें इसी प्रकारकी उपमाएँ बहुतायतसे संगृहीत हुई हैं। + सप्तवध्रि ऋषि अपनी गर्भिणी स्त्रीके लिये अश्विनीकुमारसे प्रार्थना करते हैं। ‡‡ "दशमासानुषित्वासौ जननीजठरे सुखम्। निर्गच्छतु सुखं जीवो जननी चापि जीवतु!"

७९ सूक्त

उषा देवता । अत्रिके अपत्य सत्यश्रवा ऋषि । पङ्क्ति छन्द ।

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥
अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥
यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥

१ हे दीप्तिमती उषा, तुमने हम लोगोंको जैसे पहले प्रबोधित किया था, उसी प्रकार आज भी प्रचुर धन-प्राप्तिके लिये प्रबोधित करो। हे शोभन प्रादुर्भाववाली अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम वय्यपुत्र सत्यश्रवाके प्रति अनुग्रह करो।

२ हे सूर्यतनया उषा, तुमने शुचद्रथके पुत्र सुनीथिका अन्धकार दूर किया था। हे शोभन प्रादुर्भाववाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम वय्यपुत्र अतिशय बलवान् सत्यश्रवाका तमो-निवारण करो।

३ हे द्युलोककी दुहिता, तुम धन आहरण करनेवाली हो। तुम आज हम लोगोंका तमोनिवारण करो। हे सुजाता, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुमने वय्यपुत्र अतिशय बलवान् सत्यश्रवाका तमोनाश किया था।

४ हे प्रकाशवती, उषा, जो ऋत्विक् स्तोत्र द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं, वे ऐश्वर्य द्वारा समृद्धि-सम्पन्न और दानशील होते हैं। हे धनशालिनी सुजाता उषा, लोग अश्वलाभके लिये तुम्हारा स्तवन करते हैं।

५ हे उषा, धन प्रदान करनेके लिये तुम्हारे सम्मुख उपस्थित ये उपासकगण अक्षय हव्यरूप धन प्रदान करके हम लोगोंके प्रति अनुकूल हुए थे। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्व-प्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥
तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्य भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥७॥
उत नो गोमतारिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥८॥
व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥९॥
एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१०॥

---

६ हे धनशालिनी उषा देवी, तुम यजमान स्तोताओंको वीर पुत्रादिसे युक्त अन्न प्रदान करो, जिससे वे धनवान् होकर हमलोगोंको प्रचुर परिमाणमें धन प्रदान करें। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

७ हे धनशालिनी उषा, जिस धनवान्ने हमलोगोंको अश्व और धेनुओंसे युक्त धन प्रदान किया था, उस सम्पूर्ण यजमानको तुम धन और प्रभूत अन्न प्रदान करो। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्व-प्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

८ हे द्युलोककी दुहिता उषा, तुम सूर्यकी शुभ्र रश्मि एवम् प्रज्वलित अग्निकी प्रदीप्त ज्वालाके साथ हम लोगोंके निकट अन्न और धेनुओंका आनयन करो। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

९ हे द्युलोककी दुहिता उषा, तुम विभात (प्रकाश) उत्पादन करो। हम लोगोंके प्रति विलम्ब नहीं करना। राजा चोर या शत्रुको जिस प्रकार सन्तप्त करते हैं, उसी प्रकार सूर्य तुम्हें रश्मि द्वारा सन्तप्त नहीं करें। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

१० हे उषा, जो प्रार्थित हुआ है और जो पार्थित नहीं हुआ है, वह सब हमें प्रदान करनेमें तुम समर्थ हो। हे दीप्तिमती, तुम स्तोताओंका तमोनाश करती हो और उनकी हिंसा नहीं करती हो। हे शोभन उत्पन्नवाली, अश्वप्राप्तिके लिये लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं।

८० सूक्त

उषा देवता । सत्यश्रवा ऋषि त्रिष्टुप् छन्द ।

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥१॥
एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥२॥
एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥३॥
एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥४॥

---

१ दीप्तिमान् रथपर आरूढ़, सर्वव्यापिनी, यज्ञमें भली भाँतिसे पूजित, अरुणवर्ण, सूर्यकी पुरोवर्तिनी और दीप्तिमती उषाका स्तवन ऋत्विक् लोग स्तोत्रों द्वारा करते हैं ।

२ दर्शनीय उषा प्रसुप्त जनोंको प्रबोधित करती हैं और मार्गोंको सुगम करके विस्तृत (प्रभूत) रथपर आरोहण करती हैं एवम् सूर्यके पुरोभागमें गमन करती हैं। महती और विश्वव्यापिनी उषा दिवसके आरम्भमें दीप्ति विस्तार करती हैं ।

३ रथमें अरुण वर्णके बलीवर्दोंको युक्त करके वे अक्षीण धनोंको अविचलित करती हैं । दीप्तिमती, बहुस्तुता और सबके द्वारा वरणीया उषा मार्गोंको प्रकाशित करके शोभमान या प्रकाशित होती हैं ।

४ प्रथम और मध्यम स्थानमें अर्थात् ऊर्द्ध और मध्य अन्तरिक्षमें अवस्थिति करके उषा अपनी मूर्तिको पूर्व दिशामें प्रकटित करती हैं। विशेष श्वेतवर्ण वाली उषा अभी ब्रह्माण्डको प्रबोधित करके आदित्यके मार्गका भली भाँतिसे अनुधावन करती हैं । वे दिशाओंकी हिंसा नहीं करती हैं; बल्कि दिशाओंको प्रकाशित करती हैं ।

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५॥
एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥

---

८१ सूक्त

सविता देवता। अत्रिके अपत्य श्यावाश्व ऋषि। जगती छन्द।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥
विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥२॥

---

५ सुन्दर अलङ्कारसे युक्त रमणीकी तरह अपने शरीरको प्रकाशित करती हुई और स्नान कर चुकनेवालीकी तरह उषा हम लोगोंके पुरोभागमें पूर्वकी ओर उदित होती हैं। द्युलोककी दुहिता उषा द्वेषक अन्धकारको बाधित करके तेजके साथ आगमन करती हैं।

६ द्युलोककी दुहिता उषा पश्चिमाभिमुखी होकर कल्याणकारक वेश धारण करनेवाली रमणीकी तरह अपने रूपको प्रेरित करती हैं। वह हव्य देनेवाले यजमानको वरणीय धन प्रदान करती हैं। नित्य यौवनवाली उषा पूर्वकी तरह अपनी दीप्ति प्रकाशित करती हैं।

१ ऋत्विक् यजमान लोग अपने मनको सब कर्मोंमें लगाते हैं। मेधावी, महान् और स्तुति-योग्य सविताकी आज्ञासे यज्ञकार्यमें निविष्ट होते हैं। वे होताओंके कार्योंको जानकर उन्हें यज्ञकार्यमें प्रेरित करते हैं। सविता देवकी स्तुति अत्यन्त प्रभूत है अर्थात् उनकी महिमा स्तुतिके अगोचर है।

२ मेधावी सविता स्वयं सम्पूर्ण रूप धारण करते हैं। वे मनुष्यों तथा पशुओंके गमनादि-विषयक कल्याणको जानते हैं। सबके प्रेरक वरणीय सविता देव स्वर्गको प्रकाशित करते हैं। वे उषाके उदित होनेके पश्चात् प्रकाशित होते हैं।

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥३॥
उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्री मुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥
उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥५॥

८२ सूक्त

सविता देवता । आत्रेके अपत्य श्यावाश्व ऋषि । अनुष्टुप् और गायत्रीछन्द ।

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥१॥
अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ।
न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥२॥

३ अग्नि आदि अन्यान्य देवगण द्योतमान सविताका अनुगमन करके महिमा और बल प्राप्त करते हैं अर्थात् सूर्यके उदित होनेपर ही अग्नि-होत्रादि कार्य होता है। जो सविता देव अपने माहात्म्यसे पृथिव्यादि लोकको परिच्छिन्न करते हैं, वे शोभमान होकर विराजमान हैं ।

४ हे सविता, रोचमान तीनों लोकोंमें तुम गमन करते हो और सूर्यकी किरणोंसे मिलित होते हो तुम रात्रिके उभय पार्श्व होकर गमन करते हो। हे सविता देव, तुम जगद्धारक कर्म द्वारा मित्र नामक देव होते हो।

५ हे सविता देव, अकेले तुम ही सब (लौकिक) या वैदिक कर्मोंके अनुशासनमें समर्थ हो। हे देव, गमन द्वारा तुम पूषा (पोषक) होओ । तुम समस्त भुवनजातको धारण करनेमें समर्थ हो। हे सविता देव, श्यावश्व ऋषि तुम्हारा स्तवन करते हैं ।

१ हम लोग सविता देवसे प्रसिद्ध और भोगयोग्य धनके लिये प्रार्थना करते हैं। सविता देवके अनुग्रहसे हम भगके निकटसे श्रेष्ठ, सर्व-भोगप्रद और शत्रु संहारक धन लाभ करें ।

२ सविताके स्वयम् असाधारण, सर्वप्रिय और राजमान ऐश्वर्यको कोई असुर आदि भी नष्ट नहीं कर सकता है।

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः ।
तं भागं चित्रमीमहे ॥३॥
अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
परा दुष्वप्न्यं सुव ॥४॥
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥५॥
अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे ।
विश्वा वामानि धीमहि ॥६॥
आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे
सत्यसवं सवितारम् ॥७॥

३ वह सविता और भजनीय भग देव हम हव्यदाताको रमणीय धन प्रदान करते हैं। हम उस भजनीय भग देवसे रमणीय धनकी याचना करते हैं।

४ हे सविता देव, आज यज्ञ-दिनमें तुम हम लोगोंको पुत्रादिसे युक्त सौभाग्य (धन) प्रदान करो एवम् हम लोगोंके दुस्वप्नजनित दारिद्र्यको दूर करो।

५ हे सविता देव, तुम हम लोगोंके समस्त अमङ्गलको दूर करो एवम् प्रजा,पशु और गृहादि रूप कल्याणको हम लोगोंके अभिमुख प्रेरित करो। *

६ हम अनुष्ठान करनेवाले प्रेरक सविता देवकी आज्ञासे अखण्डनीया देवी (भूमि) अदितिके निकट निरपराधी हों। हम सम्पूर्ण रमणीय या वाञ्छित धन धारण करें।

७ आज हम लोग इस यज्ञ-दिनमें, सूक्तों (स्तोत्रों) के द्वारा सर्व देवस्वरूप, अनुष्ठाताओंके पालक और सत्य शासक या रक्षक सविता देवका संभजन अथवा उपासना करते हैं।

* प्रजा, पशु और गृह महाकल्याणकर वस्तु है। —सायण।

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् ।
स्वाधीर्देवः सविता ॥८॥
य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥९॥

८३ सूक्त

पर्जन्य देवता । अत्रिके अपत्य भौम ऋषि । जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥१॥
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२॥
रथीव कशयाश्वां अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्यां अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥३॥

---

८ जो सविता देव भली भाँतिसे ध्यान करनेके योग्य हैं या सुन्दर कर्मवाले हैं। जो अप्रमत्त होकर दिन और रातके पुरोभागमें गमन करते हैं, उन सविता देवका हम इस यज्ञ-दिनमें, सूक्तोंके द्वारा संभजन अथवा उपासना करते हैं।

९ जो सविता देव समस्त उत्पन्न प्राणियोंके निकट यश सुनाते हैं अर्थात् सविता देवके यशको सब सुनते हैं, जो सब प्राणियोंको प्रेरित करते है, उन सविता देवका इस यज्ञदिनमें हम सूक्तोंके द्वारा संभजन अथवा उपासना करते हैं।

१ हे स्तोता, तुम बलवान् पर्जन्य देवके अभिमुखवर्ती होकर उनकी प्रार्थना करो। स्तुति वचनोंसे उनका स्तवन करो। हविर्लक्षण अन्नसे उनकी परिचर्या करो। जलवर्षक, दानशील, गर्जनकारी पर्जन्य वृष्टिपात द्वारा ओषधियोंको गर्भयुक्त करते हैं।

२ पर्जन्य वृक्षोंको नष्ट करते हैं, राक्षसोंका वध करते हैं और महान् वध द्वारा समग्र भुवनको भय प्रदर्शित करते है। गरजनेवाले पर्जन्य पापियोंका संहार करते हैं; अतएव निरपराधी भी वर्षण करनेवाले पर्जन्यके निकटसे भीत होकर पलायमान हो जाते हैं।

३ रथी जिस प्रकारसे कशाघात द्वारा अश्वोंको उत्तेजित करके योद्धाओंको आविष्कृत करते हैं, उसी प्रकार पर्जन्य भी मेघोंको प्रेरित करके वारि-वर्षक मेघोंको प्रकटित करते हैं। जबतक पर्जन्य जलदसमूहको अन्तरिक्षमें व्याप्त करते हैं, तबतक सिंहकी तरह गरजनेवाले मेघका शब्द दूरमें ही उत्पन्न होता है।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥
यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥
दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६॥
अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७॥
महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८॥

४ जबतक पर्जन्य वृष्टि द्वारा पृथिवीकी रक्षा करते हैं, तबतक वृष्टिके लिये हवा बहती रहती है, चारों तरफ बिजलियाँ चमकती रहती हैं, ओषधियाँ बढ़ती रहती हैं, अन्तरिक्ष द्रवित होता रहता है और सम्पूर्ण भुवनकी हितसाधनामें पृथिवी समर्थ होती रहती है ।

५ हे पर्जन्य, तुम्हारे ही कर्मसे पृथिवी अवनत होती हैं, तुम्हारे ही कर्मसे पाद-युक्त या खुरविशिष्ट पशु समूह पुष्ट होते हैं या गमन करते हैं। तुम्हारे ही कर्मसे ओषधियाँ विविध वर्ण धारण करती हैं। तुम हम लोगोंको महान् सुख प्रदान करो ।

६ हे मरुतो, तुमलोग अन्तरिक्षसे हमलोगोंके लिये वृष्टि प्रदान करो। वर्षणकारी और सर्वव्यापी मेघकी उदकधाराको क्षरित करो (वर्षाओ)। हे पर्जन्य, तुम जलसेचन करके गर्जनशील मेघके साथ हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो। तुम वारिवर्षक और हमलोगोंके पालक हो।

७ पृथिवीके ऊपर तुम शब्द करो—गर्जन करो, उदक द्वारा ओषधियोंको गर्भ-धारण कराओ, वारिपूर्ण रथ द्वारा अन्तरिक्षमें परिभ्रमण करो, उदकधारक मेघको वृष्टिके लिये आकृष्ट करो या विमुक्तबन्धन करो, उस बन्धनको अधोमुख करो, उन्नत और निम्नतम प्रदेशको समतल करो। अर्थात् सब उदकपूर्ण हो ।

८ हे पर्जन्य, तुम कोशस्थानीय (जल-भाण्डार) महान् मेघको ऊर्ध्व भागमें उत्तोलित करो एवम् वहाँसे उसे नीचेकी ओर क्षारित करो अर्थात् वारि-वर्षण कराओ। अप्रतिहत वेगशालिनी नदियाँ पूर्वाभिमुख या पुरोभागमें प्रवाहित हों। जल द्वारा द्यावापृथिवीको विलन्न (आर्द्र) करो। गौओंके लिये पानयोग्य सुन्दर जल प्रचुर मात्रामें हो।

यत् पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९॥
अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योविदो मनीषाम् ॥१०॥

८४ सूक्त

पृथिवी देवता । अत्रिके पुत्र भौम ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

बलित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥१॥
स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥२॥
दृह्ला चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥३॥

९ हे पर्जन्य, जब तुम गम्भीर गर्जन करके पापिष्ठ मेघोंको विदीर्ण करते हो, तब यह सम्पूर्ण विश्व और भूमिमें अधिष्ठित चराचरात्मक पदार्थ हृष्ट होते हैं अर्थात् वृष्टि होनेसे सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न होता है ।

१० हे पर्जन्य, तुमने वृष्टि की है। अभी वृष्टि संहारण करो। तुमने मरुभूमियोंको सुगम्य बनानेके लिये जलयुक्त किया है। मनुष्योंके भोगके लिये ओषधियोंको उत्पन्न किया है। प्रजाओंके समीपसे तुमने स्तुतियाँ प्राप्त की हैं। *

---

१ हे पृथिवी (हे मध्य स्थानकी देवी,) तुम यहाँ अन्तरिक्षमें पर्वतों या मेघोंके भेदनको धारण करती हो। तुम बलशालिनी और श्रेष्ठ हो; क्योंकि तुम माहात्म्य द्वारा पृथिवीको प्रसन्न करती हो ।

२ हे विविध प्रकारसे गमन करनेवाली पृथिवी देवी, स्तोता लोग गमनशील स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे अर्जुनी (शुभ्रवर्णे या गमनशीले,) तुम शब्द करनेवाले अश्वकी तरह जलपूर्ण मेघको प्रक्षिप्त करते हो।

३ हे पृथिवी, जबकी विद्योतमान अन्तरिक्षसे तुम्हारे सम्बन्धी मेघ वृष्टि पातित करते हैं, तब तुम दृढ़ भूमिके साथ वनस्पतियोंको धारण करती हो अथवा वनस्पतियोंको दृढ़ करके धारण करती हो ।

* यह अतिवृष्टिको विमुक्त करनेवाली ऋचा है।—सायण ।

८५ सूक्त

वरुण देवता । अत्रि ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥१॥
वनेषु व्यंतरिक्षं ततान वाजमर्वत्सुपय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥२॥
नीचीनवारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥३॥
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥४॥
इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्रवोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥

१ हे अत्रि, तुम भली भांतिसे राजमान, सर्वत्र विश्रुत (प्रसिद्ध) और उपद्रवोंके नि[illegible]रक वरुण देवके लिये प्रभूत, दुरवगाह (बहुतअर्थसे युक्त) और प्रिय स्तोत्रका उच्चारण करो। पशु-हन्ता जिस प्रकारसे निहत पशुओंके चर्मको विस्तृत करता है, उसी प्रकार वे सूर्यके आस्त-रणार्थ अन्तरिक्षको विस्तारित करते हैं।

२ वरुणदेव वृक्षोंके उपरिभागमें अन्तरिक्षको विस्तारित करते हैं। अश्वोंमें बल, गौओंमें दुग्ध और हृदयमें सङ्कल्प विस्तारित करते हैं। वे जलमें अग्नि, अन्तरिक्षमें सूर्य और पर्वतों पर सोमलता स्थापित करते हैं।

३ वरुणदेव स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्षके हितके लिये मेघके निम्न भागको सछिद्र करते हैं। वृष्टि जिस प्रकारसे यव आदि शस्यको सिक्त करती है, उसी प्रकार अखिल भुवनके अधिपति वरुणदेव समग्र भूमिको आर्द्र करते हैं।

४ वरुणदेव जब वृष्टि रूप दुग्धकी कामना करते हैं, तब वे पृथिवी अन्तरिक्ष और स्वर्गको आर्द्र करते हैं। अनन्तर पर्वतसमूह वारिदोंके द्वारा शिखरोंको आवृत करते हैं। मरुद्गण अपने बलसे उल्ला-सित होकर मेघोंको शिथिल करते हैं।

५ हम प्रसिद्ध असुरहन्ता वरुणदेवकी इस महती प्रज्ञाकी घोषणा करते हैं। जो वरुणदेव अन्त-रिक्षमें अवस्थित होकर मानदण्डकी तरह सूर्य द्वारा पृथिवी और अन्तरिक्षको परिच्छिन्न करते हैं।

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणंत्येनीरासिंचन्तीरवनयः समुद्रम् ॥६॥
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद्भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७॥
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥८॥

---

८६ सूक्त

इन्द्र और अग्नि देवता । अत्रि ऋषि । अनुष्टुप् और विराट् छन्द ।

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृहलाचित् स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥१॥
या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥२॥

---

६ प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न और द्योतमान वरुणदेवकी सर्वप्रसिद्ध महती प्रज्ञाकी हिंसा (खण्डन) कोई नहीं कर सकता है। जल-सेचनकारिणी शुभ्र नदियाँ वारि द्वारा एक मात्र समुद्रको भी पूर्ण नहीं कर सकती हैं। यह वरुणका महान् कर्म है।

७ हे वरुण, यदि हमलोग कभी भी कोई दाता, मित्र, वयस्य, भ्राता, पड़ोसी अथवा मूकके प्रति कोई अपराध करें, तो उन लोगोंका विनाश करो।

८ हे वरुणदेव, द्यूतक्रीड़ा द्वारा प्रवञ्चनाकारी पाशक्रीड़ककी तरह यदि हमलोग ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक कोई अपराध करें, तो तुम शिथिल बन्धनकी तरह उन्हें मुक्त करो। हे देव, अनन्तर हम तुम्हारे प्रियपात्र हों।

---

१ हे इन्द्र और अग्नि, तुम दोनों संग्राममें मर्त्यकी रक्षा करो। वे शत्रुसम्बन्धी द्योतमान धनको अतिशय भिन्न करते हैं। वे प्रतिवादियोंके वाक्यका खण्डन करते हैं और शत्रुओंके वाक्यकी तरह तीनों स्थानोंमें वर्तमान रहते हैं।

२ जो इन्द्र और अग्नि संग्राममें अनभिभवनीय हैं, जो संग्राममें या अन्नके विषयमें स्तवनीय हैं और जो पञ्चश्रेणीके मनुष्योंकी रक्षा करते हैं, उन दोनों महानुभावोंका हम लोग स्तवन करते हैं।

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥३॥
ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥४॥
ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेंशेव देवावर्वते ॥५॥
एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥६॥

---

८७ सूक्त

मरुद्गण देवता । अत्रिके अपत्य एवयामरुत् ऋषि । जगतीछन्द ।

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥१॥

३ इन दोनोंका बल शत्रुओंका पराभूत करनेवाला है । जब ये दोनों देव एक रथपर आरूढ़ होकर धेनुओंके उद्धारार्थ और वृत्रके विनाशार्थ गमन करते हैं, तब इन दोनों धनवानोंके हाथोंमें तीक्ष्ण वज्र विराजमान रहता है ।

४ हे गमनशील, धनके अधिपति, सर्वज्ञ तथा निरतिशय वन्दनीय इन्द्र और अग्नि, युद्धमें रथ प्रेरित करनेके लिये हमलोग तुम दोनोंका आह्वान करते हैं ।

५ हे अहिंसनीय देवद्वय, हमलोग अश्वलाभके लिये तुम दोनोंका स्तवन करते हैं । तुम दोनों मनुष्योंकी तरह सर्वदा वर्द्धमान होते हो एवम् आदित्यद्वयकी तरह दीप्तिमान् हो ।

६ पत्थरों द्वारा पिसे हुए सोमरसकी तरह बलकारक हव्य सम्प्रति प्रदत्त हुआ है । तुम दोनों ज्ञानियोंको अन्न प्रदान करो । स्तवकारियोंको प्रभूत धन और अन्न प्रदान करो ।

---

१ एनया ऋषिके वचन-निष्पन्न स्तोत्र मरुतोंके साथ विष्णुके निकट उपस्थित हों एवम् वे ही स्तोत्र बलशाली, पूजनीय, शोभनालङ्कृत, शक्ति-सम्पन्न, स्तुतिप्रिय, मेघसञ्चालनकारी और द्रुतगामी मरुतोंके निकट उपस्थित हों ।

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥२॥
प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम्॥३॥
स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः॥४॥
स्वनो न वोऽमवानेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥५॥
अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ सन्दृशि स्थन तेन उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ।६।

२ जो महान् इन्द्रके सहित प्रादुर्भूत हुए हैं, जो यज्ञ-गमन-विषयक ज्ञानके साथ प्रादुर्भूत हुए हैं, उन मरुतोंका एवयामरुत् स्तवन करते हैं । हे मरुतो, तुम लोगोंका बल अभिमत फल दानसे महान् है और अनभिभवनीय है। तुम लोग पर्वतकी तरह अटल हो ।

३ जो दीप्त और स्वच्छन्दतया विस्तीर्ण स्वर्गसे आह्वान श्रवण करते हैं, अपने गृहमें अवस्थिति करनेपर जिन्हें चालित करनेमें कोई समर्थ नहीं है, जो अपनी दीप्ति द्वारा दीप्तिमान हैं, जो अग्निकी तरह नदियोंको सञ्चालित करते हैं । एवयामरुत् स्तुति द्वारा उनकी उपासना करते हैं ।

४ मरुतोंके स्वेच्छानुसार गमन करनेवाले अश्व जब रथमें युक्त होते हैं, तब एवयामरुत् उनके लिये अपेक्षा करते हैं । सर्वव्यापी मरुद्गण महान् तथा सर्वसाधारण स्थान अन्तरिक्षसे निर्गत हुए हैं । परस्पर स्पर्द्धाकारी, बलशाली और सुखदाता मरुद्गण निर्गत हुए हैं ।

५ हे मरुतो, तुमलोग स्वाधीनतेजा, स्थिरदीप्ति, स्वर्णाभरणभूषित और अन्नदाता हो। तुम लोग जिस शब्दसे शत्रुओंको अभिभूत करके अपना कार्यसाधन करते हो, वह प्रबल वारिवर्षणकारी, दीप्त, विस्तृत और प्रवृद्ध ध्वनि एवयामरुत्को कम्पित नहीं करे।

६ हे समधिक बलशाली मरुतो, तुम लोगोंकी महिमा अपार है, निरवधि है। तुम लोगोंकी शक्ति एवायामरुत्की रक्षा करे। नियमयुक्त यज्ञके सन्दर्शन-विषयमें तुम लोग ही नियामक हो। तुम लोग प्रज्वलित अग्निके सदृश दीप्त हो। निन्दकोंसे तुम लोग हमारी रक्षा करो ।

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥७॥
अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥८॥
गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ।९।

---

७ हे पूजनीय और अग्निकी तरह प्रभूत दीप्तिशाली रुद्रपुत्रो, एवयामरुत्‌की रक्षा करो। अन्तरिक्ष-सम्बन्धी दीर्घ और विस्तीर्ण गृह मरुतोंके द्वारा विख्यात होता है। निष्पाप मरुद्गण गमनकालमें प्रभूतशक्ति प्रकाशित करते हैं।

८ हे विद्वेषहीन मरुतो, तुम लोग हमारे स्तोत्रके सन्निहित होओ एवं स्तवनकारी एवयामरुत्‌का आह्वान श्रवण करो। हे इन्द्रके साथ एकत्र यज्ञभाग प्राप्त करनेवाले मरुतो, योद्धा लोग जिस प्रकारसे शत्रुओंको अपसारित करते हैं, उसी प्रकार तुम लोग हमारे गूढ़ शत्रुओंको दूर करो।

९ हे यजनयोग्य मरुतो, तुम लोग हमारे यज्ञमें आगमन करो, जिससे यह यज्ञ सुसम्पन्न हो। तुम लोग रजोवर्जित या निर्विघ्न हो। हमारा आह्वान श्रवण करो। हे प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न मरुतो, अत्यन्त वर्द्धमान विन्ध्यादि पर्वतकी तरह अन्तरिक्षमें अवस्थान करके तुमलोग निन्दकोंका शासन करते हो।

॥ परिशिष्ट ॥

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजां । चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् । यस्यां हिरण्यं विंदेयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ १ ॥
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् । श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥ २ ॥
कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ३ ॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये लक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ४ ॥
आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ ५॥
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ६ ॥

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ ७ ॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ८ ॥
मनसः काममाकूतं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ ९ ॥
कर्दमेन प्रजाभूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ १० ॥
आपस्सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ ११ ॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १२ ॥
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १३ ॥
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावोदास्योश्वान् विन्देयं पुरुषानहम ॥ १४ ॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ १५॥
पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षी पद्मसम्भवे ।
तन्मे भजसि पद्माक्षी येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥ १६ ॥
अश्वदायी गोदायी धनदायी महाधने ।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ १७ ॥
पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षी ।
विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि संनिधत्स्व ॥ १८ ॥
पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वादिगवेरथम् ।
प्रजानां भवसी माता आयुष्मन्तं करोतु मे ॥ १९ ॥
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमस्तु ते ॥ २० ॥
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥ २१ ॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ॥ २२ ॥

सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥ २३ ॥
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥ २४ ॥
महालक्ष्मी च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥ २५ ॥
श्रीवर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते ।
धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥ २६ ॥

पञ्चम मण्डल समाप्त

षष्ठ मण्डल

१ सूक्त

४ अष्टक । ४ अध्याय । १ अनुवाक । अग्नि देवता । बृहस्पतिके अपत्य भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥१॥

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥२॥

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै स्त्वे रयिं जागृवांसो अनुग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥३॥

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥४॥

---

१ हे अग्नि, तुम देवताओंके मध्यमें प्रकृष्टतम हो । देवताओंका मन तुममें सम्बद्ध है । हे दर्श-नीय, इस यज्ञमें तुम्हीं देवोंके आह्वान करनेवाले होते हो । हे अभीष्टवर्षी, समस्त बलशाली शत्रु-ओंको पराभूत करनेके लिये तुम हमें अनिवार्य बल प्रदान करो ।

२ हे अग्नि, तुम अतिशय यज्ञकर्ता और होमनिष्पादक हो । तुम हव्य ग्रहण करके स्तुति-योग्य होते हो । तुम वेदी रूप स्थानपर उपवेशन करो । धर्मानुष्ठानकारी ऋत्विक् लोग महान् धन प्राप्त करनेकी आशासे देवोंके मध्यमें प्रथम हो तुम्हारा अनुसरण करते हैं ।

३ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान्, दर्शनीय, महान् हव्यभोजी और सम्पूर्ण कालमें दीप्तिमान् हो । तुम वसुओंके मार्गसे अर्थात् अन्तरिक्षसे गमन करते हो । धनाभिलाषी यजमान तुम्हारा अनु-सरण करते हैं ।

४ अन्नाभिलाषी होकर यजमान लोग स्तोत्रके साथ दीप्तिमान् अग्निके आह्वनीय स्थानमें गमन करते हैं और अप्रतिहत भावसे अथवा अबाध्य रूपसे प्रचुर अन्न प्राप्त करते हैं । हे अग्नि, दर्शन होनेपर वे स्तुतियोंसे आनन्दित होते हैं और तुम्हारे यागयोग्य नामोंको धारण करते हैं—जात-वेदा, वैश्वानर इत्यादि नामोंका संकीर्तन करते हैं ।

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥५॥
सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६ ॥
तं त्वा वयं सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वां विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥७॥
विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥८॥
सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत् स वामा दधते त्वोतः ॥९॥

५ हे अग्नि, मनुष्यगण तुम्हें वेदीके ऊपर वर्द्धित करते हैं। तुम यजमानोंके पशु और अपशु रूप दोनों प्रकारके धनको वर्द्धित करते हो। अध्वर्यु आदि भी उभय विध धन प्राप्त करनेके लिये तुम्हें वर्द्धित करते हैं। हे दुःखविनाशक अग्नि, तुम स्तुतिभाजन होकर मनुष्योंके रक्षक और पितृ-मातृ-स्थानीय हो।

६ पूजनीय, अभीष्टवर्षी, प्रजाओंके मध्यमें होमनिष्पादक, मोदप्रद और अतिशय यजनीय अग्नि वेदीके ऊपर उपविष्ट होते हैं। हे अग्नि तुम गृहमें प्रज्वलित होते हो। हम लोग जानुको अवनत करके, स्तोत्रके साथ, तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं।

७ हे अग्नि, तुम स्तुतियोग्य हो। हम शोभन बुद्धिवाले, सुखाभिलाषी और तुम्हारी कामना करनेवाले हैं। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे अग्नि, तुम दीप्यमान हो। महान् रोचमान मार्गसे अर्थात् आदित्यमार्गसे तुम हम स्तोताओंको स्वर्ग पहुँचाओ।

८ नित्यस्वरूप ऋत्विक् यजमान आदिके स्वामी, ज्ञानसम्पन्न, शत्रुविनाशक, कामनाओंके पूरक, स्तोता मनुष्योंके प्राप्तव्य, अन्नविधायक, शुद्धता-सम्पादक, धनाधियोंके द्वारा यष्टव्य और दीप्यमान अग्निका हमलोग स्तवन करते हैं।

९ हे अग्नि, जो यजमान तुम्हारा यजन करता है, जो स्तवन करता है, जो यजमान प्रज्वलित इन्धनके साथ तुम्हें हव्य प्रदान करता है, जो स्तुतिके साथ तुम्हें आहुति प्रदान करता है, वह यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होता है और समस्त अभिलषित धन प्राप्त करता है।

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥१०॥
आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११॥
नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥१३॥

१० हे अग्नि, तुम महान् हो। हम नमस्कार, इन्धन और हव्यके द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं । हे बलपुत्र, हमलोग स्तोत्र और शस्त्रके साथ वेदीके ऊपर तुम्हारी अर्चना करते हैं । हमलोग तुम्हारा शोभन अनुग्रह प्राप्त करनेके लिये यत्न करते हैं । हम लोग सफल हों ।

११ हे अग्नि, दीप्ति द्वारा तुमने द्यावा-पृथिवीको विस्तृत किया है । तुम परित्राणकर्ता और स्तुति द्वारा पूजनीय हो । तुम प्रचुर अन्न और विशिष्ट धनके साथ हम लोगोंके निकट भलीभाँतिसे दीप्त होओ ।

१२ हे धनवान् अग्नि, मनुष्योंसे युक्त अर्थात् पुत्र-पौत्रादिसे युक्त धन तुम हमें प्रदान करो । हमारे पुत्र-पौत्रोंको प्रभूत पशु प्रदान करो । कामनाओंके पूरक और पापरहित पर्याप्त अन्न तथा सौभाग्य हमें प्राप्त हो ।

१३ हे दीप्तिमान् अग्नि, हम तुम्हारे निकटसे गो-अश्वादिरूप बहुविध धन प्राप्त करें । तुम धनवान् हो । + हे सर्ववरणीय अग्नि, तुम शोभमान हो । तुममें बहुविध धन निहित है ।

+ यहाँ सायणने अपने पूर्ववर्ती भाष्यकार भरतस्वामी तथा भट्टभास्कर मिश्रका नामोल्लेख किया है ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

पञ्चम अध्याय

२ सूक्त

अग्नि देवता। भरद्वाज ऋषि। अनुष्टुप् और शक्वरी छन्द।

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥१॥
त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥२॥
सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥३॥
ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥४॥

१ हे अग्नि, तुम मित्रदेवकी तरह शुष्क काष्ठके द्वारा हविके ऊपर अभिपतित होते हो; अतएव हे सर्वदर्शी, धनसम्पन्न अग्नि तुम अन्न और पुष्टि द्वारा हमलोगोंको वर्द्धित करो।

२ हे अग्नि, मनुष्यगण हव्यसाधन हव्य और स्तुतिके द्वारा तुम्हारी अर्चना करते हैं। हिंसा-वर्जित, जलके प्रेरक अथवा लोकोंमें अभिगमन करनेवाले, सर्वद्रष्टा सूर्यदेव तुम्हारा अभिगमन करते हैं।*

३ हे अग्नि, समान प्रीति धारण करनेवाले ऋत्विक् लोग तुम्हें समिद्ध अर्थात् प्रज्वालित करते हैं। तुम यज्ञके प्रज्ञापक हो। मनुके अपत्य यजमान लोग सुखाभिलाषी होकर यज्ञमें तुम्हारा आह्वान करते हैं।

४ हे अग्नि, तुम दानशील हो। जो मरणशील यजमान यज्ञकर्ममें रत होकर तुम्हारा स्तवन करता है, वह समृद्धिशाली हो। हे अग्नि, तुम दीप्तियुक्त हो। वह यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर भीषण पापकी तरह शत्रुओंको पराभूत करे।

* रात्रिमें सूर्यदेव अग्निमें प्रवेश करते हैं; इसीसे अग्नि, दूरसे ही, रात्रिमें दीख पड़ते हैं।
तै० ब्रा० २।१।२

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥५॥
त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥६॥
अधा हि विक्ष्वीड्योसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥७॥
क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥८॥
त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥९॥
वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥१०॥

५ हे अग्नि, जो मनुष्य काष्ठ द्वारा तुम्हारी मन्त्र-संस्कृत आहुतिको व्याप्त (पुष्ट) करता है, वह मनुष्य पुत्र-पौत्रादिसे युक्त गृहमें सौ वरसोंतक आयुका भोग करता है।

६ हे अग्नि, तुम दीप्तिशाली हो। तुम्हारा शुभ्र वर्णका धूम अन्तरिक्षमें विस्तृत होता है और मेघरूपमें परिणत होता है। हे पावक (शुद्धिविधायक), तुम स्तोत्र द्वारा प्रसन्न होकर सूर्यकी तरह दीप्ति द्वारा रोचमान होते हो।

७ हे अग्नि, तुम प्रजाओंके स्तुतिभाजन हो; क्योंकि, तुम अतिथिकी तरह हमलोगोंके प्रिय हो। नगरमें वर्तमान हितोपदेष्टा वृद्धकी तरह तुम आश्रययोग्य हो एवम् पुत्रकी तरह पालनीय हो।

८ हे अग्नि, अरणिमन्थन रूप कर्मसे तुम्हारी विद्यमानता प्रकाशित होती है। अश्व जिस प्रकारसे अपने आरोहीका वहन करता है, उसी प्रकार तुम हव्य वहन करो। तुम वायुकी तरह सर्वत्र गमन करते हो। तुम अन्न और गृह प्रदान करो। तुम शिशु और अश्वकी तरह कुटिलगामी हो।

९ हे अग्नि, तृण आदि चरनेके लिये विसृष्ट (छोड़ा गया) पशु जिस प्रकार सम्पूर्ण तृण भक्षण कर लेता है, उसी प्रकार तुम प्रौढ़ काष्ठोंको क्षण मात्रमें भक्षण कर लेते हो। हे अविनश्वर अग्नि, तुम दीप्तिशाली हो। तुम्हारी शिखाएं अरण्योंको छिन्न कर देती हैं।

१० हे अग्नि, तुम यज्ञाभिलाषी यजमानोंके गृहमें होता रूपसे प्रविष्ट होते हो। हे मनुष्योंके पालक अग्नि, तुम हम लोगोंका समृद्धि-विधान करो। हे अङ्गार-रूप अग्नि, तुम हमारे हव्यको स्वीकार करो।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥

---

३ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥१॥
ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिरृधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥२॥
सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्राचिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥३॥

---

११ हे अनुकूल दीप्तिवाले, देव दानवादि गुणयुक्त और द्यावापृथिवीमें वर्तमान अग्निदेव, तुम देवोंके निकट हम लोगोंकी स्तुतिका उच्चारण करो। हम स्तोताओंको शोभन निवास युक्त सुखमें ले जाओ। हमलोग शत्रुओं, पापों और कष्टोंका अतिक्रमण करें। हमलोग जन्मान्तरमें कृत पापोंसे मुक्त हों। हे अग्नि, तुम्हारी रक्षाके द्वारा हम शत्रु आदिसे उद्धार पावें।

---

१ हे अग्नि, वह यजमान चिर काल पर्यन्त जीवन धारण करे, जो यजमान यज्ञका पालन करता है और यज्ञके निमित्त उत्पन्न हुआ है। वरुण और मित्रके साथ समान प्रीति धारण करके, तेज द्वारा तुम पापसे जिसकी रक्षा करते हो, वह देवाभिलाषी यजमान तुम्हारी विस्तीर्ण ज्योति प्राप्त करता है।

२ वरणीय धनसे समृद्धिवान् अग्निके लिये जो यजमान हव्य प्रदान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञके द्वारा यज्ञवान् अर्थात् सफल-यज्ञ होता है। तथा कृच्छ्र चान्द्रायणादि कर्म द्वारा शान्त होता है यानी अग्निकर्म द्वारा वह सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है। वह यजमान यशस्वी पुत्रोंके अभावको भी नहीं प्राप्त करता है। उसे पाप तथा अनर्थक गर्व नहीं छूते।

३ सूर्यके सदृश जिस अग्निका दर्शन पापरहित है। हे अग्नि, तुम्हारी प्रज्वलित ज्वाला भयङ्कर है और सर्वत्र गमन करती है। अग्निदेव रात्रिमें शब्दायमान धेनुकी तरह विस्तृत होते हैं। सबके आवास-भूत अर्थात् निवासप्रद और अरण्यजात अग्नि पर्वतके अग्रभागमें रमणीय होते हैं।

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४॥
स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥५॥
स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥६॥
दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७॥

---

४ अग्निका मार्ग तीक्ष्ण है। इनका रूप अत्यन्त दीप्तिमान है। अग्नि अश्वकी तरह मुख द्वारा तृणादिको ग्रास करते है। कुठार जैसे अपनी धाराको काष्ठपर प्रक्षिप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि अपनी ज्वालाको तरु गुल्म आदिपर प्रक्षिप्त करते हैं। स्वर्णकार जैसे सुवर्ण आदिको द्रवीभूत करता है, उसी प्रकार अग्नि सम्पूर्ण वनको द्रवित करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण वस्तुको अग्नि भस्मीभूत कर डालते हैं।

५ बाण चलानेवाला जैसे लक्ष्यके अभिमुख बाण चलाता है, वैसे ही अग्नि अपनी ज्वालाको प्रक्षिप्त करते है। कुठार आदिको चलानेवाला जैसे कुठार आदिकी धारको तीक्ष्ण करता है वैसे ही अग्नि भी अपनी ज्वालाको फेंकते समय तीक्ष्ण करते हैं। वृक्षके ऊपर निवास करनेवाले और लघुपतन-समर्थ पाद-विशिष्ट पक्षीकी तरह विचित्रगति अग्नि रात्रिका अतिक्रमण करते हैं अर्थात् धीरे-धीरे अन्धकारका विनाश करते हैं।*

६ वे अग्नि स्तवनीय सूर्यकी तरह दीप्त ज्वालाको आच्छादित करते हैं। सबके अनुकूल प्रकाशको विस्तारित करके वे तेज द्वारा अत्यन्त शब्द करते हैं। अग्नि रात्रिमें शोभमान होकर मनुष्योंको दिवसकी तरह अपने-अपने कार्योंमें लगाते हैं। अमरणशील और रोचमान अग्नि द्योतमान तेज द्वारा अपनी किरणोंको नेताओंके लिये प्रेरित करते हैं। अथवा आरोचमान अग्नि दिनमें देवोंको हविके साथ संयुक्त करते हैं।

७ दीप्यमान सूर्यकी तरह रश्मिविस्तीर्ण करनेवाले जिस अग्निका महान् शब्द हुआ है, वह अभीष्टवर्षी और दीप्त अग्नि ओषधियोंके (जलाने योग्य) मध्यमें अत्यन्त शब्द करते हैं। जो दीप्त और गमनशील तथा इतस्ततः ऊर्द्ध्वगामी तेज द्वारा गमन करते हैं, वह अग्नि हमारे शत्रुओंको दमन करते हुए शोभनपति-सम्पन्न स्वर्ग और पृथ्वीको धन द्वारा पूर्ण करते हैं।

---

* यहाँ अयस् शब्द लोहेके अर्थमें व्यवहृत हुआ है।

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८॥

---

४ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥
स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥२॥
द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥३॥

८ जो अग्नि अश्वकी तरह स्वयमेव युज्यमान अर्चनीय दीप्तिके साथ गमन करते हैं, वह अग्नि अपने तेजके द्वारा विद्युत्की तरह चमकते हैं । जो अग्नि मरुतोंके बलको स्वल्प करते हैं, वह निरतिशय दीप्तिशाली, सूर्यकी तरह प्रदीप्त और वेगसम्पन्न अग्नि प्रकाशमान होते हैं ।

---

१ हे देवोंके आह्वान करनेवाले बलपुत्र अग्नि, जिस प्रकार प्रजापति (यजमान के यज्ञमें तुमने हव्य द्वारा देवोंका यजन किया था, उसी प्रकार हमलोगोंके इस यज्ञमें आज यजनीय इन्द्रादि देवोंको अपने समान समझकर तुम उनका शीघ्र यजन करो ।

२ जो दिनके प्रकाशक हैं, जो सूर्यकी तरह अत्यन्त दीप्यमान हैं, जो सबके बोधगम्य हैं, जो सबके जीवनभूत हैं, अविनश्वर हैं अतिथि हैं, जातवेदा हैं और जो मनुष्योंके मध्यमें उषाकालमें प्रबुद्ध होते हैं, वह अग्नि हमलोगोंको वन्दनीय (उत्कृष्ट) धन प्रदान करें ।

३ स्तोता लोग अभी जिस अग्निके महान् कर्मकी स्तुति करते हैं, वह सूर्यकी तरह शुभ्रवर्ण अग्नि अपने तेजको आच्छादित करते हैं । जरारहित और पवित्र बनानेवाले अग्नि दीप्ति द्वारा सब पदार्थोंको प्रकाशित करते हैं और व्यापनशील राक्षसादिको तथा पुरातन नगरोंकी हिंसा करते हैं ।

वन्द्या हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेर वृके क्षेष्यन्तः ॥४॥
नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ॥५॥
आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६॥
त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥७॥
नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥

---

४ हे सबके प्रेरक अग्नि, तुम वन्दनीय हो। अग्नि हव्यके ऊपर आसीन होकर स्वभावतः ही उपासकोंको गृह और अन्न प्रदान करते हैं। हे अन्नप्रदायक अग्नि, तुम हम लोगोंको अन्न प्रदान करो तथा राजाकी तरह हमारे शत्रुओंको जीतो एवम् उपद्रव शून्य हमारे अग्न्यागारमें निवास करो।

५ जो अग्नि अन्धकारके निवारक हैं, जो अपने तेजको तीक्ष्ण करते हैं, जो हविका भक्षण करते हैं और जो वायुकी तरह सबपर शासन करते हैं, वह अग्नि रात्रिका अतिक्रमण करते हैं अर्थात् रात्रिके अन्धकारका विनाश करते हैं। हे अग्नि, हम तुम्हारे प्रसादसे उस व्यक्तिको जीतें, जो तुम्हें हव्य प्रदान नहीं करता है। तुम अश्वकी तरह वेगगामी होकर हमारे आक्रमण करनेवाले शत्रुओंको विनष्ट करो।

६ हे अग्नि, तुम द्यावापृथिवीको विशेष रूपसे आच्छादित करते हो जैसे सूर्यदेव अपनी दीप्तिमान् और पूजनीय किरणोंसे द्यावापृथिवीको आच्छादित करते हैं। अपने पथसे गमन करनेवाले सूर्यकी तरह विचित्र अग्नि अन्धकारोंको दूर करते हैं।

७ हे अग्नि, तुम अत्यन्त स्तवनीय, पूजार्ह और दीप्तियुक्त हो। हम लोग तुम्हारा सम्भजन करते हैं; इसलिये तुम हमारे महान् स्तोत्रका श्रवण करो। हे अग्नि, नेता रूप ऋत्विक् लोग तुम्हें हविर्लक्षण धनसे सन्तुष्ट करते हैं। तुम बलमें वायुके सदृश और इन्द्रकी तरह देवस्वरूप हो।

८ हे अग्नि, तुम शीघ्र ही वृकसे रहित मार्ग द्वारा हम लोगोंको निर्विघ्न पूर्वक ऐश्वर्यके समीप ले जाओ। पापसे हम लोगोंका उद्धार करो। तुम स्तोताओंको जो सुख प्रदान करते हो, वही सुख हमें प्रदान करो। हम लोग शोभन सन्तति-सम्पन्न होकर सौ वर्ष पर्यन्त सुख भोग करें।

५ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१॥
त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२॥
त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥३॥
यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥४॥

१ हे अग्नि, हम स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं । तुम बलपुत्र, * नित्य तरुण, प्रशस्त स्तुति द्वारा स्तवनीय, अतिशय युवा, प्रकृष्ट ज्ञानवाले, बहुस्तुत और द्रोह-रहित हो । इस प्रकारके अग्नि स्तोताओंको अभिलषित धन प्रदान करते हैं ।

२ हे बहु-ज्वाला-विशिष्ट देवोंके आह्वान करनेवाले अग्नि, यागयोग्य यजमान तुममें हव्य रूप धनको अहर्निश समर्पित करते हैं । देवोंने जिस प्रकार सम्पूर्ण जीवोंको पृथ्वीपर स्थापित किया था, उसी प्रकार अग्निमें सम्पूर्ण धनको रखा था ।

३ हे अग्नि, तुम प्राचीन तथा परिदृश्यमान प्रजाओंमें सर्वतोभावसे अवस्थान करते हो एवम् अपने कार्य द्वारा यजमानोंको वाञ्छित धन प्रदान करते हो । हे ज्ञानी जातवेदा, अतएव तुम परिचर्याकारी यजमानको निरन्तर धन प्रदान करो ।

४ हे अनुकूल दीप्तिवाले अग्नि, जो शत्रु अन्तर्हित देशमें वर्तमान होकर हम लोगोंको बाधित करता है और जो शत्रु अभ्यन्तरवर्ती होकर हम लोगोंको बाधित करता है, उन दोनों प्रकारके शत्रुओंको तुम अपने तेज द्वारा दग्ध करो । तुम्हारा तेज जरारहित, वृष्टि-हेतुभूत और असाधारण है ।

* बलपूर्वक अरणि-मन्थन करनेसे अग्नि उत्पन्न होते हैं; अतएव अग्नि बलपुत्र हैं ।

—सायण ।

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥५॥
स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥६॥
अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरन्ते ॥७॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥१॥

५ हे बलपुत्र अग्नि, जो यजमान यज्ञ द्वारा तुम्हारी परिचर्या करता है, जो इन्धन, शस्त्र और अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी परिचर्या करता है हे अमर अग्नि, वह यजमान मनुष्योंके मध्यमें प्रकृष्ट ज्ञानसे युक्त होता है और धन तथा द्योतमान अन्नसे अतिशय शोभित होता है ।

६ हे अग्नि, तुम जिस कार्यके लिये प्रेरित हुए हो, उस कार्यको शीघ्र ही करो । तुम बलवान् हो; अतएव दूसरोंको अभिभूत करनेवाले बलसे शत्रुओंको विनष्ट करो । स्तुतिरूप वचनसे जो स्तोता तुम्हारा स्तवन करता है, उस स्तोताके उच्चारित स्तोत्रका तुम सेवन करो । अग्नि, द्योतमान तेजसे युक्त हैं ।

७ हे अग्नि, तुम्हारी रक्षा द्वारा हम अभिलषित फल प्राप्त करें । हे धनाधिपति, हम शोभन पुत्र आदिसे युक्त धन प्राप्त करें । अन्नाभिलाषी होकर हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्न लाभ करें । हे जरारहित अग्नि, हम तुम्हारे अजर और द्योतमान यश लाभ करें ।

---

१ स्तुतिके योग्य, बलपुत्र अग्निके निकट अन्नकी अभिलाषा करनेवाले यजमान (स्तोता) नवीन यज्ञसे युक्त होकर गमन करते हैं । अग्नि वनको दग्ध करनेवाले, कृष्णवर्त्मा, श्वेतवर्ण, कमनीय, होता और स्वर्गीय हैं ।

स: श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥२॥
वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥३॥
ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः ।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥४॥
अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥५॥
आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६॥

---

२ अग्नि श्वेतवर्ण, शब्दकारी, अन्तरिक्षमें वर्तमान, अजर और अत्यन्त शब्दकारी मरुतोंके साथ मिलित एवम् युवतम हैं । अग्नि पावक और सुमहान् हैं । वे असङ्ख्य स्थूल काष्ठोंको भक्षण करके अनुगमन करते हैं ।

३ हे विशुद्ध अग्नि, तुम्हारी प्रदीप्त शिखाएँ पवन द्वारा सञ्चालित होकर बहुत काष्ठोंको भक्षण करती हैं और सर्वत्र व्याप्त होती हैं । प्रदीप्त अग्निसे सम्भूत नवोत्पन्न रश्मियाँ धर्षणकारी दीप्ति द्वारा वनोंको मज्जित करती हुई दग्ध करती हैं ।

४ हे दीप्तिसम्पन्न अग्नि, तुम्हारी जो सम्पूर्ण शुभ्र रश्मियाँ पृथ्वीके केशस्थानीय ओषधियोंको दग्ध करती हैं, वे विमुक्त अश्वोंकी तरह इतस्ततः गमन करती हैं । तुम्हारी भ्रमणशील शिखाएँ विचित्र रूप पृथ्वीके ऊपर स्थित उन्नत प्रदेशपर आरोहण करके अभी विराजित होती हैं ।

५ वर्षणकारी अग्निकी शिखाएँ बारम्बार निर्गत होती हैं । जैसे, धनुओंके लिये युद्ध करने वाले इन्द्रके द्वारा प्रयुक्त वज्र बारम्बार निर्गत होता है । वीरोंके पौरुष (बन्धन) की तरह अग्निकी शिखा दुःसह, दुर्निवार है । भयङ्कर अग्नि वनोंको दग्ध करते हैं ।

६ हे अग्नि, तुम प्रबल और उत्तेजक रश्मि द्वारा पृथ्वीके गन्तव्य स्थानोंको दीप्ति द्वारा आच्छन्न करो । तुम सम्पूर्ण विपत्तियोंको दूर करो एवम् अपने तेजःप्रभावसे स्पर्द्धा-कारियोंको अभिभूत करके शत्रुओंको विनष्ट करो ।

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७॥

७ सूक्त

वैश्वानर अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सन्नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥२॥
त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्स्पृहयाय्याणि ॥३॥

---

७ हे विचित्र अद्भुत बल-सम्पन्न, आनन्द-दायक अग्नि, हमलोग आह्लादक स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम अद्भुत, अत्यद्भुत, यशस्कर, अन्नप्रद, अन्नदायक और पुत्र-पौत्रादिसमन्वित विपुल ऐश्वर्य प्रदान करो ।

---

१ वैश्वानर अग्नि स्वर्गके शिरोभूत, भूमिमें गमन करनेवाले, यज्ञके लिये उत्पन्न, ज्ञानसम्पन्न, भली भाँतिसे राजमान, यजमानोंके अतिथिस्वरूप, मुखस्वरूप (अग्नि-लक्षण मुखसे ही देवगण भोजन करते हैं) और रक्षाविधायक हैं। देवों, स्तोताओं या ऋत्विकोंने अग्निको उत्पन्न किया है।

२ स्तोता लोग यज्ञके बन्धक, धनके स्थान और हव्यके आश्रयस्वरूप अग्निका, भली भाँतिसे, स्तवन करते हैं। देवगण यज्ञीय द्रव्योंके वहनकारी और यज्ञके केतुस्वरूप वैश्वानर अग्निको उत्पन्न करते हैं।

३ हे अग्नि, हवीरूप अन्नसे युक्त पुरुष तुम्हारे समीपसे ही ज्ञानवान होता है । वीर लोग तुम्हारे समीपसे ही शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले होते हैं । इसलिये हे दीप्तिशाली वैश्वानर, तुम हमलोगोंको वाञ्छित धन प्रदान करो ।

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सन्नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत् पित्रोरदीदेः ॥४॥
वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरादधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥५॥
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्द्धनि वयाइव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥६॥
वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥७॥

४ हे अमरणशील अग्नि, तुम पुत्रकी तरह अरणिद्वयसे उत्पन्न हुए हो । समस्त देवगण तुम्हारा स्तवन करते हैं । हे वैश्वानर, जब तुम पालक द्यावापृथिवीके मध्यमें दीप्यमान होते हो, तब यजमान लोग तुम्हारे यज्ञकार्य द्वारा अमरत्व लाभ करते हैं ।

५ हे वैश्वानर, तुम्हारे उन प्रसिद्ध महान् कर्मोंमें कोई भी बाधा उपस्थित नहीं कर सकता है। पितृ-मातृ-स्वरूप द्यावापृथ्वीके क्रोड़भूत अन्तरिक्ष-भागमें उत्पन्न होकर तुमने दिवसोंके प्रज्ञापक सूर्यको अन्तरिक्ष पथमें संस्थापित किया है ।

६ वैश्वानरके वारिप्रज्ञापक तेज द्वारा द्युलोकके उन्नत स्थल (नक्षत्र आदि अथवा मेघ) निर्मित हुए हैं । वैश्वानरके शिरःस्थान (मेघ रूपमें परिणत धूम) में वारिराशि अवस्थान करती हैं एवं उससे सात नदियाँ शाखाकी तरह उद्भूत होती हैं । † अर्थात् आहुति द्वारा सम्पूर्ण जगत् अग्निसे उत्पन्न होता है ।

७ शोभन कर्म करनेवाले जिन वैश्वानर अग्निने उदक अथवा लोकोंका निर्माण किया था, ज्ञान-सम्पन्न होकर जिन्होंने द्युलोकके दीप्तिमान नक्षत्रोंको सृष्ट किया था और जिन्होंने समस्त भूत-जातको चतुर्दिक् प्राप्त किया था, वे अजय, पालक और वारिरक्षक अग्नि विराजमान होते हैं ।

---

† यहाँ भी गङ्गा आदि सात नदियोंकी ओर सङ्केत है ।

८ सूक्त

वैश्वानर अग्निदेवता । भरद्वाज ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥१॥
स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥
व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३॥
अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुपतस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४॥
युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५॥

१ हमलोग सर्वव्यापी, वारिवर्षक और दीप्तिमान् जातवेदाके बलके लिये इस यज्ञमें भली भाँतिसे स्तवन करते हैं। वैश्वानर अग्निके अभिमुख नवीन, निर्मल और शोभन स्तोत्र सोमरसकी तरह निर्गत होता है।

२ सत्कर्मपालक वैश्वानर उत्कृष्ट आकाशमें जायमान होकर लौकिक तथा वैदिक दोनों कर्मोंकी रक्षा करते हैं और अन्तरिक्षका परिमाण करते हैं। शोभन कर्म करनेवाले वैश्वानर अपने तेजोंसे द्युलोकका स्पर्शन करते हैं।

३ सबके मित्रभूत और महान् आश्चर्यभूत वैश्वानरने द्यावापृथिवीको अपने-अपने स्थानपर विशेष रूपसे स्तम्भित किया है। तेज द्वारा उन्होंने अन्धकारको अन्तर्हित किया है। आधारभूत द्यावा-पृथिवीको उन्होंने पशुचर्मकी तरह विस्तृत किया है। वैश्वानर अग्नि समस्त वीर्य धारण करते हैं।

४ महान् मरुतोंने अन्तरिक्षके मध्यमें अग्निको धारण किया था और मनुष्योंने पूजनीय स्वामी कहकर इनकी स्तुति की थी। देवोंके दूत या वेगवान् मातरिश्वा (वायु) दूर देशस्थित सूर्यमण्डलसे वैश्वानर अग्निको इस लोकमें लाये हैं।

५ हे अग्नि, तुम यागयोग्य हो। तुम्हारे उद्देशसे जो नवीन स्तोत्रका उच्चारण करते हैं, उन्हें तुम धन और यशस्वी पुत्र प्रदान करो। हे जरारहित और हे राजमान अग्नि, तुम अपने तेज द्वारा शत्रुको उसी प्रकार निपातित करो, जैसे वज्र वृक्षको निपातित करता है।

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६॥
अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥७॥

६ सूक्त

वैश्वानर अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि त्रिष्टुप् छन्द ।

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥१॥
नाहं तन्तुं न वि जानात्योतुं न यं वयन्ति समरेतमानाः
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥२॥

६ हे अग्नि, हमलोग हविर्लक्षण धनसे युक्त हैं । हमें तुम अनपहार्य, अक्षय और सुवीर्य धन प्रदान करो। हे वैश्वानर अग्नि, हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर शत-सहस्र प्रकार अन्न लाभ करें ।

७ हे तीनों लोकोंमें वर्तमान यागार्ह अग्नि, किसीके द्वारा भी अहिंसित और रक्षाकारी बल द्वारा तुम हम स्तोताओंकी रक्षा करो। हे वैश्वानर अग्नि, तुम हम हव्यदाताओंके बलकी रक्षा करो । हमलोग तुम्हारा स्तवन करते हैं, तुम हमें प्रवर्द्धित करो ।

१ कृष्णवर्ण रात्रि और शुक्लवर्ण दिवस अपनी-अपनी ज्ञातव्य प्रवृत्ति द्वारा सम्पूर्ण जगत्को रञ्जित करके नियत परिवर्तित होते हैं । वैश्वानर अग्नि राजाकी तरह प्रकाशित होकर दीप्ति द्वारा तमो-नाश करते हैं ।

२ हम तन्तु (सूत्र) अथवा ओतु (तिरश्चीन सूत्र) नहीं जानते हैं एवम् सतत चेष्टा द्वारा जो वस्त्र वयन किया जाता है, वह भी हमें कुछ अवगत नहीं है । इस लोकमें अवस्थित पिता द्वारा उपदिष्ट होकर किसका पुत्र अन्य जगत्के वक्तव्य वाक्योंका बोलनेमें समर्थ होता है ? *

* तन्तु=गायत्री आदि छन्द, ओतु=यजुः और अध्वर्यु, वस्त्र=यज्ञ; अथवा तन्तु=सूक्ष्म, ओतु=स्थूल, वस्त्र=प्रपञ्च । —सायण ।

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥३॥
अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोमर्त्यस्तन्वा वर्द्धमानः ॥४॥
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५॥
वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥६॥
विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥७॥

---

३ एक मात्र वैश्वानर ही तन्तु एवम् ओतुको जानते हैं । वे समय-समयपर वक्तव्योंको कहते हैं । वारिरक्षक और भूलोकमें सञ्चरण करनेवाले अग्नि अन्तरिक्षमें सूर्य रूपसे सम्पूर्ण जगतको प्रकाशित करते हुए इन परिदृश्यमान भूतोंको अवगत करते हैं ।

४ ये वैश्वानर अग्नि आदि होता हैं । हे मनुष्यो, तुम लोग अग्निका भजन करो । अमरणशील अग्नि मरणशील शरीरमें जाठर रूपसे वर्तमान रहते हैं । निश्चल, सर्वव्यापी, अक्षय अग्नि शरीर, धारण-पूर्वक उत्पन्न और वर्द्धमान होते हैं ।

५ मनकी अपेक्षा भी अतिशय वेगवान् (वैश्वानरकी) निश्चल ज्योति सुखके पथोंको प्रदर्शित करनेके लिये जङ्गम-जीवोंमें अन्तर्निहित रहती है । सम्पूर्ण देवगण एकमत और समान-प्रज्ञ होकर सम्मानके साथ, प्रधान कर्म-कर्ता वैश्वानरके अभिमुखवर्ती होते हैं ।

६ तुम्हारे गुणको श्रवण करनेके लिये हमारे कर्णद्वय और तुम्हारे रूपको देखनेके लिये हमारे चक्षु धावित होते हैं । हृदय कमलमें जो ज्योति बुद्धि निहित है, वह भी तुम्हारे स्वरूपको अवगत करनेके लिये समुत्सुक होता है । दूरस्थ-विषयक चिन्तासे युक्त हमारा हृदय तुम्हारे अभिमुख धावित होता है । हम वैश्वानरके किस प्रकारके स्वरूपका वर्णन करें । अथवा किस रूपमें उन्हें हृदयमें धारण करें ।

७ हे वैश्वानर, सम्पूर्ण देवगण तुम्हें नमस्कार करते हैं । तुम अन्धकारमें अवस्थित हो । वैश्वानर अपनी रक्षा द्वारा हम लोगोंकी रक्षा करें । अमर अग्नि अपनी रक्षा द्वारा हम लोगोंकी रक्षा करें ।

१० सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । विराट् और त्रिष्टुप् छन्द ।

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१॥
तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥२॥
पीपाय सः श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥३॥
आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥४॥
नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥५॥

१ हे यजमानो, तुमलोग इस प्रवर्तमान, विघ्न-रहित यज्ञमें स्तवनीय, स्वर्गोद्भव और सब प्रकारसे दोष-विवर्जित अग्नि को, स्तोत्र द्वारा, सम्मुखमें स्थापित करो; क्योंकि जातवेदा यज्ञमें हमलोगोंका समृद्धि-विधान करते हैं ।

२ हे दीप्तिमान, बहुज्वाला-विशिष्ट, देवोंके अह्वानकर्ता अग्नि, अपने अवयवभूत अन्य अग्नियोंके साथ समिद्धमान होकर तुम मनुष्य स्तोताके इस स्तोत्रका श्रवण करो । स्तोता लोग ममता की * तरह अग्निके उद्देश्यसे मनोहर स्तोत्रको घृतकी तरह अर्पित करते हैं ।

३ जो यजमान स्तोत्रके साथ अग्निमें हव्य प्रदान करता है, वह मनुष्योंके मध्यमें अग्नि द्वारा समृद्धि लाभ करता है । विचित्र दीप्तिवाले अग्नि, विचित्र या आश्चर्यभूत रक्षाके द्वारा उस यजमानको गायुक्त गोष्ठके भोगका अधिकारी बनाते हैं ।

४ प्रादुर्भूत होकर कृष्णवर्त्मा अग्निने दूरसे ही दृश्यमान दीप्ति द्वारा विस्तीर्ण द्यावापृथिवीको पूर्ण किया है । वह पावक अग्नि रात्रिके सघन अन्धकारको अपनी दीप्ति द्वारा नष्ट करते हैं और परिदृश्यमान होते हैं ।

५ हे अग्नि, हमलोग हविर्लक्षण धनसे युक्त हैं । हमें तुम शीघ्र ही बहुत अन्न और रक्षाके साथ विचित्र धन प्रदान करो । धन, अन्न और उत्कृष्ट वीर्य द्वारा अन्य मनुष्योंको जो पराजित कर सके ऐसा पुत्र हमें प्रदान करो ।

* ममता दीर्घतमाकी माता थी । दीर्घतमाका उल्लेख तृतीय अष्टकमें हो चुका है ।

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यंत आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥६॥
वि द्वेषांसीनुहि वर्द्धयेड़ां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥७॥

११ सूक्त

अग्नि देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥१॥
त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वा वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं तव स्वाम् ॥२॥

६ हे अग्नि, बैठकर जो हव्ययुक्त यजमान तुम्हारे लिये हवन करता है, तुम हव्याभिलाषी होकर उस यज्ञ-साधन अन्नको स्वीकार करो। भरद्वाज-वंशीयोंके निर्दोष स्तोत्रको ग्रहण करो। उनके प्रति अनुग्रह करो, जिससे वे नाना प्रकारका अन्न प्राप्त कर सकें।

७ हे अग्नि, शत्रुओंको विलीन करो। हम लोगोंके अन्नको वर्द्धित करो। हमलोग शोभन पुत्र पौत्रादिसे युक्त होकर शत हेमन्त पर्यन्त सुख भोग कर सकें।*

---

१ हे देवोंके आह्वानकारी तथा यजन करनेवालोंमें श्रेष्ठ हमलोग तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। तुम अभी हमलोगोंके इस आरब्ध यज्ञमें शत्रुबाधक मरुतोंका यजन करो। तुम मित्र, वरुण, नासत्यद्वय और द्यावापृथ्वीको हमारे यज्ञके लिये लाओ।

२ हे अग्नि, तुम अतिशय स्तवनीय, हम लोगोंके प्रति द्रोह-रहित और दानादि गुणसे युक्त हो। हे अग्नि, तुम हव्य वहन करनेवाले हो। तुम शुद्धि-विधायक और देवोंके मुखस्वरूप ज्वालाके द्वारा अपने शरीरका यजन करो।

* पहले हेमन्त ऋतुसे ही सम्वत्सर आरम्भ होता था। ऋग्वेदके अनुसार मनुष्योंकी परमायु सौ वर्षोंकी ही है।

धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै ।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधुच्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥३॥
अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४॥
वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः ।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५॥
दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥६॥

३ हे अग्नि, धनाभिलाषिणी स्तुति तुम्हारी कामना करती है; क्योंकि तुम्हारे प्रादुर्भावसे इन्द्रादि देवोंके यजनमें यजमान समर्थ होते है । ऋषियोंके मध्यमें अङ्गिरा स्तुतिके अतिशय प्रेरयिता हैं और मेधावी भरद्वाज यज्ञमें हर्षकारक स्तोत्रका उच्चारण करते है ।

४ बुद्धिमान और दीप्तिमान् अग्नि भली भाँतिसे शोभा पाते हैं । हे अग्नि, तुम विस्तृत द्यावा-पृथिवीका हव्य द्वारा पूजन करो । तुम शोभन हव्यसम्पन्न हो । मनुष्य यजमानकी तरह अग्निको, हवि देनेवाले ऋत्विक-यजमान आदि हव्य द्वारा, तृप्त करते है ।

५ जब अग्निके समीप हव्यके साथ कुश आनीत होता है एवम् दोषवर्जित घृतपूर्ण स्रुक कुशके ऊपर रखा जाता है, तब भूमिके ऊपर अग्निके लिये आधारभूत वेदि रचित होती है । सूर्य जिस प्रकारसे तेजोराशिको समवेत करते हैं, उसी प्रकार यजमानका यज्ञकार्य समाश्रित होता है ।

६ हे बहुज्वाला-विशिष्ट देवोंके आह्वानकर्ता अग्नि, तुम दीप्तिशाली अन्य अग्नियोंके साथ प्रदीप्त होकर हम लोगोंको धन प्रदान करो । हे बलपुत्र, हमलोग हवि द्वारा तुम्हें आच्छादित करते हैं । शत्रुतुल्य पापसे हमलोग मुक्त हों ।

---

१२ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१॥
आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥२॥
तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥३॥
सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥४॥
अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥५॥

१ देवोंके आह्वानकारी और यज्ञके अधिपति अग्नि द्यावापृथिवीका यजन करनेके लिये यजमानके गृहमें अवस्थित होते हैं। यज्ञ-सम्पन्न, बलपुत्र अग्नि दूरसे ही दीप्तिके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को सूर्यकी तरह प्रकाशित करते हैं।

२ हे यागार्ह, दीप्तिसम्पन्न अग्नि, तुम बुद्धिसम्पन्न हो। सम्पूर्ण यजमान तुममें आग्रह-पूर्वक प्रचुर हव्य समर्पण करते हैं। तुम त्रिभुवनमें अवस्थित होकर मनुष्यदत्त उत्कृष्ट हव्यको देवोंके निकट वहन करनेके लिये सूर्यको तरह वेगशाली होओ।

३ जिनकी सर्वव्यापिनी और अतिशय तेजस्विनी ज्वाला वनमें दीप्त होती है वह प्रवृद्ध-मान अग्नि सूर्यको तरह अन्तरिक्ष मार्गमें विराजमान होते हैं। सबके कल्याण-विधायक वायुकी तरह अक्षय और अनिवार्य अग्नि ओषधियोंके मध्यमें वेगपूर्वक गमन करते हैं और अपनी दीप्ति द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को प्रवृद्धमान करते हैं।

४ जातवेदा अग्नि याजकोंके सुखादायक स्तोत्रकी तरह हमलोगोंके स्तोत्र द्वारा हमारे यज्ञ-गृहमें स्तुत होते हैं। यजमान लोग द्रुमभोजी, अरण्याश्रयकारी और वत्सोंके पिता वृषभकी तरह क्षिप्रकर्मकारी अग्निका स्तवन करते हैं।

५ जब अग्नि अनायास ही वनोंको भस्म करके पृथ्वीके ऊपर विस्तृत होते हैं, तब स्तोता लोग इस लोकमें अग्निकी शिखाओंका स्तवन करते हैं। अप्रतिहत भावसे विचरण करनेवाले और चोरकी तरह द्रुतगमन करनेवाले अग्नि मरुभूमिके ऊपर विराजित होते हैं।

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥

१३ सूक्त

अग्नि देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥१॥
त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२॥
स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम्।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥३॥

६ हे शीघ्र गमन करनेवाले अग्नि, तुम समस्त अग्नियोंके साथ प्रज्वलित होकर हमलोगोंको निन्दासे रक्षा करो। तुम हम लोगोंको धन प्रदान करो। दुःखदायक शत्रु सैन्यको दूर करो। हमलोग शोभन पुत्र-पौत्रसे युक्त होकर शत हेमन्त अर्थात् सौ वर्षपर्यन्त सुख भोग करें।

१ हे शोभन धनवाले अग्नि, विविध प्रकारके धन तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं।* जैसे वृक्षसे विविध प्रकारकी शाखाएं उत्पन्न होती हैं, तुमसे पशु-समूह शीघ्र ही उत्पन्न होता है। संग्राममें शत्रुओंको जीतनेके लिये बल भी तुमसे ही उत्पन्न होता है। अन्तरिक्षकी वृष्टि तुमसे ही उत्पन्न होती है; अतएव तुम सबके स्तवनीय हो।

२ हे अग्नि, तुम सेवनीय हो। तुम हमें रमणीय धन प्रदान करो। हे दर्शनीय दीप्ति, तुम सर्वव्यापी वायुकी तरह सर्वत्र अवस्थिति करो। हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम मित्रकी तरह प्रचुर यज्ञ और पर्याप्त वाञ्छित धन प्रदान करो।

३ हे प्रकृष्ट ज्ञान-सम्पन्न और यज्ञके लिये समुद्भूत अग्नि, तुम वारिपुत्र वैद्युताग्निके साथ संगत होकर धनके लिये जिस व्यक्तिको प्रेरित करते हो, वह साधुओंका रक्षाकारी और बुद्धिमान् व्यक्ति बल द्वारा शत्रुओंका संहार करता है एवं पणिकी शक्तिका अपहरण करता है।

* सुवर्ण ही जब अग्निसे उत्पन्न हुआ है, तब सोनेके विनिमयसे कौनसी चीज नहीं खरीदी जा सकती?

यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥४॥
ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥५॥
वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजिनो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥

१४ सूक्त

अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । शक्वरी और त्रिष्टुप छन्द ।

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥१॥

४ हे बलपुत्र और द्युतिमान अग्नि, जो यजमान स्तुति, उपासना और यज्ञ द्वारा यज्ञभूमिमें तुम्हारी तीक्ष्ण दीप्तिको आकृष्ट करता है; वह मनुष्य समस्त प्राचुर्य और धान्य धारण करता है एवं धन सम्पन्न होता है।

५ हे बलपुत्र अग्नि, तुम हमलोगोंके पोषणार्थ, शत्रुओंसे लाकर, उत्कृष्ट पुत्रोंके साथ शोभन अन्न प्रदान करो। निकृष्टपूर्ण शत्रुओंसे बल द्वारा जो पशुसम्बन्धी दुग्धादि अन्न तुम आहरण करते हो, वह प्रचुर परिमाणमें हमें प्रदान करो।

६ हे बलपुत्र अग्नि, तुम बलशाली हो। तुम हमलोगोंके उपदेष्टा होओ। हमलोगोंको अन्नके साथ पुत्र और पौत्र प्रदान करो। हम स्तुतियोंके द्वारा पूर्णमनोरथ हों। हमलोग शोभन पुत्र-पौत्रों के साथ शत हेमन्त अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त सुख भोग करें।

---

१ जो मनुष्य स्तोत्रके साथ अग्निकी परिचर्या करता है और यागादि कार्य करता है, वह मनुष्योंके मध्यमें शीघ्र ही प्रधान होकर प्रकाशमान होता है। अपने पुत्र आदिकी रक्षाके लिये वह शत्रुओंके समीपसे प्रचुर अन्न प्राप्त करता है।

अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीड़ते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥२॥
नाना ह्यग्नेवसे स्पर्द्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥३॥
अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया ॥४॥
अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्त मुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥५॥
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥६॥

२ एक मात्र अग्नि ही प्रकृष्ट ज्ञानसे युक्त हैं और दूसरा कोई भी नहीं है। वे यज्ञकार्यके अतिशय निर्वाहक और सर्वद्रष्टा हैं। यजमानोंके पुत्र आदि (ऋत्विग्गण) यज्ञमें अग्निको देवोंके आह्वानकर्ता कहकर स्तवन करते हैं।

३ हे अग्नि, शत्रुओंका धन उनके निकटसे पृथक् होकर तुम्हारे स्तोताओंकी रक्षा करनेके लिये परस्पर स्पर्द्धा करते हैं। शत्रुविजयी तुम्हारे स्तोता लोग तुम्हारा यज्ञ करके व्रतविरोधियोंको पराभूत करनेकी इच्छा करते हैं।

४ अग्नि स्तोताओंको सुन्दर कार्य करनेवाला, शत्रुविजयी और साधुजनोचित कार्योंका पालन करनेवाला पुत्र प्रदान करते हैं, जिसे देखकर ही शत्रुगण उसके बलसे भीत होकर कम्पित होने लगते हैं।

५ जिस मनुष्यका हव्य रूप धन यज्ञमें राक्षसोंके द्वारा अनावृत (निर्विघ्न) होता है और अन्यान्य यजमानोंके द्वारा असंसक्त होता है, बलशाली और ज्ञानसम्पन्न अग्निदेव उस यजमानको निन्दकोंसे रक्षा करते हैं।

६ हे अनुकूल दीप्तिवाले, दानादिगुणयुक्त और द्यावापृथिवीमें वर्तमान अग्निदेव, तुम देवोंके निकट हमलोगोंकी स्तुतिका उच्चारण करो। हम स्तोताओंको शोभन निवास युक्त सुखमें ले जाओ। हमलोग शत्रुओं, पापों और कष्टोंका अतिक्रमण करें। हमलोग जन्मान्तरमें कृत पापोंसे मुक्त हों। हे अग्नि, हम तुम्हारी रक्षाके द्वारा शत्रुओंसे उद्धार पावें

१५ सूक्त

अग्नि देवता। अङ्गिराके पुत्र वीतहव्य अथवा भरद्वाज ऋषि। जगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अनुष्टुप् बृहती और त्रिष्टुप् छन्द।

इमम् षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥१॥
मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम्।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥२॥
स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय
सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥३॥
द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम्।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देव मृञ्जसे ॥४॥

१ हे वीतहव्य अथवा भरद्वाज ऋषि, तुम उषाकालमें प्रबुद्ध, लोकरक्षक और जन्मसे ही अथवा स्वभावसे ही शुद्ध या निर्मल अतिथि रूप अग्निको प्रसन्न करो। अग्नि सब समयमें द्युलोकसे अवतीर्ण होते हैं और अक्षय हव्य भक्षण करते हैं।

२ हे अद्भुत अग्नि, तुम अरणियोंके मध्यमें निहित, स्तुत्य हो और ऊर्द्ध्व ज्वालावाले हो। तुम्हें भृगुलोग (महर्षि) गृहमें मित्रकी तरह स्थापित करते हैं। वीतहव्य अथवा भरद्वाज प्रतिदिन उत्कृष्ट स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम उनके प्रति प्रसन्न होओ।

३ हे अग्नि, जो यागादिके अनुष्ठानमें निपुण है, उसे तुम समृद्ध बनाते हो और दूरस्थ तथा समीपस्थ शत्रुसे उसकी रक्षा करते हो। हे महान् अग्नि तुम मनुष्योंके मध्यमें भरद्वाजको धन और गृह प्रदान करो।

४ हे वीतहव्य, तुम शोभन स्तुतियों द्वारा हव्यवाहक, दीप्तिमान, अतिथिवत् पूजनीय, स्वर्गप्रदर्शक मनुके यज्ञमें देवोंका आह्वान करनेवाले यज्ञसम्पादक, मेधावी और ओजस्वी वक्ता अग्नि देवको प्रसन्न करो।

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामनूरुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥५॥
अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि
वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो वः ॥६॥
समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥७॥
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८॥
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९॥

५ जैसे उषा प्रकाशसे शोभित होती है, वैसे ही जो पृथिवीके ऊपर पवित्रताकारक और चेतनाविधायक दीप्तिके द्वारा विराजित होते हैं, जो संग्राममें शत्रुसंहार-कारक वीरके सदृश एतश ऋषिकी सहायता करनेके लिये शीघ्र प्रदीप्त हुए थे और जो सर्वभक्षणशील तथा क्षयरहित हैं हे वीतहव्य, उन्हें तुम प्रसन्न करो।

६ हे हमारे स्तोताओं, अत्यन्त प्रिय और अतिथिकी तरह पूजनीय अग्निका इन्धन द्वारा तुम लोग निरन्तर पूजन करो। देवोंके मध्यमें दानादि गुणसम्पन्न अग्नि इन्धन ग्रहण करते हैं और हम लोगोंका पूजन ग्रहण करते हैं; इसलिये अविनश्वर अग्निके सम्मुख होकर स्तोत्र द्वारा उनकी पूजा करो।

७ हम समिधसे प्रदीप्त अग्निको, स्तुति द्वारा, प्रसन्न करते हैं। स्वतः शुद्ध, पवित्रता-विधायक और निश्चल अग्निको हम यज्ञमें स्थापित करते हैं। ज्ञान-सम्पन्न देवोंको बुलानेवाले, सबके द्वारा वरणीय, सदाशयसम्पन्न, सर्वदर्शी और सर्व-भूतज्ञ अग्निका हम सुखकर स्तोत्रसे सम्भजन करते हैं अथवा अग्निके, निकट धनके लिये प्रार्थना करते हैं।

८ हे अग्नि, देवता और मनुष्य तुमको दूत बनाते हैं। तुम अमरणशील, प्रत्येक समयमें हव्य वहन करनेवाले, पालक और स्तवनीय हो। वे दोनों (वीतहव्य और भरद्वाज)जागरणशील, व्याप्त और प्रजाओंके पालक अग्निको, नमस्कार द्वारा अथवा हव्य द्वारा, स्थापित करते हैं।

९ हे अग्नि, तुम देवों और मनुष्योंको विशेष प्रकारसे अलङ्कृत करके और यज्ञमें देवोंका दूत होकरके द्यावापृथिवीमें सञ्चरण करते हो।* हम लोग शोभन स्तुति द्वारा और यज्ञ द्वारा तुम्हारा सम्भजन करते हैं; अतएव तुम त्रिभुवनवर्ती होकर हमारे लिये सुखविधान करो।

* देवोंको बुलानेके लिये अग्नि द्युलोकमें सञ्चरण करते हैं और हवि ले जानेके लिये पृथिवीमें सञ्चरण करते हैं।

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥१०॥
तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित् पृणक्षि शवसोत राया ॥११॥
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥१२॥
अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥१३॥
अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥१४॥

---

१० हम अल्प बुद्धिवाले सर्वज्ञ, शोभनाङ्ग, मनोज्ञमूर्ति और गमनशील अग्निदेवकी परिचरण करते हैं। ज्ञातव्य वस्तुओंको जाननेवाले अग्नि देवोंका यजन करें और देवोंके मध्यमें हमारे हव्यको प्रचारित करें।

११ हे शौर्यसम्पन्न अग्नि, तुम दूरदर्शी हो। जो पुरुष तुम्हारा स्तवन करता है, तुम उसकी रक्षा करते हो और उसका मनोरथ पूर्ण करते हो। जो यज्ञसम्पादन करता है और जो हव्य उत्क्षेप (प्रदान) करता है, उसको तुम बल और धनसे पूर्ण करते हो।

१२ हे अग्नि, तुम शत्रुओंसे हम लोगोंकी रक्षा करो। हे बलसम्पन्न अग्नि, तुम हम लोगोंको पापसे परित्राण करो। तुम्हारे समीप हमारे द्वारा प्रदत्त निर्दोष हव्य उपस्थित हो। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सहस्र प्रकारका धन हमारे समीप उपस्थित हो।

१३ देवोंको बुलानेवाले, दीप्तिमान् अग्नि गृहके अधिपति और सर्वज्ञ हैं; अतएव वे सम्पूर्ण प्राणियोंको जानते हैं। जो अग्नि देवों और मनुष्योंके मध्यमें अतिशय यजनकारी हैं, वह सत्य सम्पन्न अग्नि उत्तम रूपसे यज्ञ करें।

१४ हे यज्ञनिष्पादक और शोधक दीप्तिवाले अग्नि, इस समय जो यजमानका कर्तव्य है, उसकी तुम कामना करो। तुम देवोंका यजन करनेवाले हो, अतएव तुम यज्ञमें देवोंका यजन करो। हे युवतम अग्नि, तुम अपने माहात्म्यसे सर्वव्यापी हो। आज तुम्हारे लिये जो हव्य प्रदान करते हैं, उसे तुम स्वीकार करो।

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम
ता तरेम तवावसा तरेम ॥१५॥

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥१६॥

इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥१७॥

जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान्वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥१८॥

वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥१९॥

---

१५ हे अग्नि, वेदीके ऊपर सन्निहित स्थापित हव्यको देखो। यजमानने तुम्हें द्यावापृथिवीमें यज्ञके लिये स्थापित किया है। हे ऐश्वर्यशाली अग्नि तुम संग्राममें हम लोगोंकी रक्षा करो, जिससे हम समस्त पापसे परित्राण पावें।

१६ हे शोभन शिखासम्पन्न अग्नि, तुम समस्त देवोंके सहित सर्वाग्रगण्य होकर ऊर्णा (कम्बल) युक्त, कुलायसदृश और घृतसंयुक्त उत्तर वेदीपर अवस्थान करो। हव्यदाता यजमानके यज्ञको समुचित रूपसे देवोंके निकट ले जाओ।

१७ कर्मका विधान करनेवाले ऋत्विक् लोग अथर्वा ऋषिकी तरह अग्निका मन्थन करते थे। देवतासे निर्गत होकर इतस्ततः पलायमान और बुद्धिमान अग्निको रात्रिके अन्धकारसे आनयन करते थे।

१८ हे अग्नि, देवाभिलाषी यजमानके कल्याणको अविनश्वर करनेके लिये तुम यज्ञमें मथ्यमान होकर प्रादुर्भूत होओ। यज्ञवर्द्धक और अमरणशील देवोंका आनयन करो। अनन्तर, देवोंके निकट हमारे यज्ञको पहुंचा दो।

१९ हे यज्ञपालक अग्नि, प्राणियोंके मध्यमें हम लोग ही तुम्हें इन्धन द्वारा महान् बनाते हैं। अतएव हम लोगोंके गार्हपत्य अग्नि पुत्र, पशु और धनादि द्वारा सम्पूर्णता लाभ करें। तीक्ष्ण तेज द्वारा तुम हम लोगोंको याजित करो।

---

१६ सूक्त

२ अनुवाक । अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । गायत्री, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥१॥
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजामहः ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२॥
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा ।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३॥
त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् ।
ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥४॥
त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।
भरद्वाजाय दाशुषे ॥५॥

---

१ हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण यज्ञके होमनिष्पादक हो अथवा देवोंके आह्वानकर्ता हो। तुम मनुसम्बन्धी मनुष्यके यज्ञमें देवों द्वारा होतृकार्यमें नियुक्त हो।

२ हे अग्नि, तुम हमलोगोंके यज्ञमें मदकारक ज्वाला द्वारा महान् देवोंका यजन करो। इन्द्रादि देवोंका आनयन करो और उन्हें हव्य प्रदान करो।

३ हे विधाता, हे शोभन कर्म करनेवाले दानादि गुणविशिष्ट अग्नि, तुम दर्शपूर्णमासादि यज्ञमें महान् और क्षुद्र मार्गोंको वेग द्वारा जानते हो, अतः यज्ञमार्गसे भ्रष्ट यजमानको पुनः सन्मार्गाधिरूढ़ करो।

४ हे अग्नि, दुष्यन्ततनय भरत हव्यदाता ऋत्विकोंके साथ सुखके उद्देश्यसे तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुमसे इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टका निवारण होता है। स्तवनके उपरान्त तुम्हारा यजन करते हैं। तुम यागयोग्य हो।

५ हे अग्नि, सोमाभिषवकारी राजा दिवोदासको तुमने जिस प्रकारसे बहुविध रमणीय धन प्रदान किया था, उसी प्रकारसे हव्य प्रदान करनेवाले भरद्वाज ऋषिको बहुविध रमणीय धन प्रदान करो।

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् ।
शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥६॥
त्वामग्ने स्वाध्यो मर्तासो देववीतये ।
यज्ञेषु देवमीळते ॥७॥
तव प्र यक्षि संदृशमुत क्रतुं सुदानवः
विश्वे जुषन्त कामिनः ॥८॥
त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१०॥
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥११॥

६ हे अग्नि, तुम अमरणशील और दूत हो। मेधावी भारद्वाज ऋषिकी शोभन स्तुति श्रवण कर तुम हमारे यज्ञमें देवोंको ले आओ।

७ हे ध्यानमान अग्नि, सुन्दर चिन्ता करनेवाले मनुष्य देवोंको तृप्त करनेके लिये यज्ञमें तुम्हारा स्तवन करते हैं अथवा तुमसे याचना करते हैं।

८ हे अग्नि, हम तुम्हारे दर्शनीय तेजका पूजन भली-भाँतिसे करते हैं और तुम्हारे शोभन दानशील कार्यका भी पूजन करते हैं। अकेले हम ही नहीं; किन्तु दूसरे यजमान लोग भी तुम्हारे अनुग्रहसे सफलाभिलाष होकर तुम्हारे यज्ञ या कार्यका सेवन करते हैं।

९ हे अग्नि, होतृकार्यमें मनुने तुम्हें नियुक्त किया है। तुम ज्वाला रूप मुख द्वारा हव्य वहन करनेवाले और अतिशय विद्वान् हो। तुम द्युलोक-सम्बन्धिनी प्रजाओं (देवों)का यजन करो।

१० हे अग्नि, तुम हव्य भक्षण करनेके लिये आगमन करो और देवोंके समीप हव्य वहन करनेके लिये, स्तुति-भाजन होकर होता रूपसे कुशोंके ऊपर उपवेशन करो।

११ हे अङ्गार रूप अग्नि, हमलोग काष्ठ और आज्य द्वारा तुम्हें प्रवर्द्धित करते हैं; इसलिये हे युवतम अग्नि, तुम अत्यन्त दीप्तिमान् होओ।

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि ।
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥१२॥

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥१३॥

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ।
वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ १४ ॥

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयं रणेरणे ॥ १५ ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६ ॥

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥

---

१२ हे द्युतिमान अग्नि, तुम हमलोगोंको विस्तीर्ण, प्रशंसनीय और महान् धन प्रदान करो ।

१३ हे अग्नि, मस्तककी भाँति संसारके धारक पुष्करपत्रके ऊपर अरणिद्वयके मध्यसे तुम्हें अथर्वा ऋषिने उत्पन्न किया है । *

१४ हे अग्नि, अथर्वाके पुत्र दध्यङ ऋषिने तुम्हें समुज्ज्वलित किया था । तुम आवरणकारी शत्रुओंके हननकर्ता और असुरोंके नगर विनाशक हो ।

१५ हे अग्नि, पाथ्य वृषा नामक किसी ऋषिने तुम्हें समुद्दीपित किया है । तुम दस्युहन्ता और प्रत्येक युद्धमे धनके जेता हो ।

१६ हे अग्नि, तुम यहाँ आगमन करो; क्योंकि हम तुम्हारे लिये जिस प्रकारका स्तोत्र उच्चारित करते हैं, उसे तुम श्रवण करो । यहाँ आकर तुम इन सोमरसों द्वारा वर्द्धमान होओ ।

१७ हे अग्नि, तुम्हारा अनुग्रहात्मक अन्तःकरण जिस देशमें और जिस यजमानमें वर्तमान होता है, वह श्रेष्ठ बल और अन्न धारण करता है । तुम उसी यजमानमें अपना स्थान बनाते हो ।

---

* प्रजापतिके द्वारा पद्मपत्रके ऊपर संसारकी सृष्टि हुई है । यही शास्त्रीय कथा सायणके भाष्यमें दृष्ट होती है ।

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो ।
अथा दुवो वनवसे ॥ १८ ॥

अग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः ।
दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ १९ ॥

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना ।
वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० ॥

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता ।
बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ॥ २२ ॥

स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः ।
दूतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥

१८ हे अग्नि, तुम्हारा दीप्तिपुञ्ज नेत्र-विघातक नहीं हो, वह सदा हमें दर्शनसमर्थ बनावे। हे कतिपय यजमानोंके गृहप्रदाता, तुम हम यजमानोंके द्वारा विहित परिचरणको ग्रहण करो।

१९ स्तुतियोंके द्वारा हमलोग अग्निका अभिगमन करते हैं। अग्नि हविके स्वामी, दिवोदास राजाके शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले, सवज्ञ और यजमानोंके पालक हैं।

२० अग्नि अपनी महिमाके द्वारा हमलोगोंको सम्पूर्ण पार्थिव धन (भूतजात) प्रचुर परिणाममें प्रदान करें। अग्नि अपने तेजसे शत्रुओं या काष्ठोंके विनाशक, शत्रुओंके द्वारा अजेय और किसीके भी द्वारा अहिंसित हैं।

२१ हे अग्नि, तुम प्राचीनवत् नवीन दीप्ति द्वारा इस विस्तीर्ण अन्तरिक्षको विस्तारित करते हो।

२२ हे मित्रभूत ऋत्विग्गण, तुम लोग शत्रुहन्ता और विधातास्वरूप अग्निका स्तोत्र गान करो एवम् यज्ञसाधन हव्य प्रदान करो।

२३ वह अग्नि हमारे यज्ञमें कुशोंके ऊपर उपवेशन करें, जो अग्नि देवोंके आहूवाता, अतिशय बुद्धिमान्, मनुष्यसम्बन्धी यज्ञकालमें देवोंके दूत और हव्यके वाहक हैं।

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम्।
वसो यक्षीह रोदसी ॥२४॥
वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय।
ऊर्जो नपादमृतस्य ॥२५॥
क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः।
मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥२६॥
ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥२७॥
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम्।
अग्निर्नो वनते रयिम् ॥२८॥
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२९॥

२४ हे गृहप्रदाता अग्नि, तुम इस यज्ञमें प्रसिद्ध, राजमान, सुन्दर कर्म करनेवाले मित्रावरुण, अदिति पुत्र, मरुद्गण और द्यावापृथिवीका यजन करो।

२५ हे बलपुत्र अग्नि, तुम मरणरहित हो। तुम्हारा प्रशस्त दीप्ति मनुष्य यजमानोंको अन्न प्रदान करती है।

२६ हे अग्नि, आज हवि देनेवाले यजमान परिचरण कर्म द्वारा तुम्हारा संभजन करके अतिशय प्रशंसनीय और शोभन धनवाले हों। वह मनुष्य तुम्हारी स्तुतिका सर्वदा स्तोता हो।

२७ हे अग्नि, तुम्हारे स्तोता और तुम्हारे द्वारा रक्षित होते हैं, वे सब अभिलाषी होकर सम्पूर्ण आयु और अन्न प्राप्त करते हैं। वे आक्रमण द्वारा शत्रुओंको पराजित और विनष्ट करते हैं।

२८ अग्नि अपने तीक्ष्ण तेजके द्वारा सब वस्तुओंके भोजन कर्ता, राक्षसोंके संहारकर्ता और हम लोगोंके धन-प्रदाता हैं।

२९ हे जातवेदा अग्नि, तुम शोभन पुत्र पौत्रादिसे युक्त धन आहरण करो। हे शोभन कर्म करनेवाले तुम राक्षसोंका विनाश करो।

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः।
रक्षाणो ब्रह्मणस्कवे ॥३०॥

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति।
तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥३१॥

त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम्।
मर्तो यो नो जिघांसति ॥३२॥

भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य।
अग्ने वरेण्यं वसु ॥३३॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥३४॥

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥३५॥

---

३० हे जातवेदा, तुम पापसे हमलोगोंकी रक्षा करो। हे स्तुतिरूपमन्त्रोंके कर्ता* अग्नि, तुम विद्वेषकारियोंसे हमारी रक्षा करो।

३१ हे अग्नि, जो मनुष्य दुष्ट अभिप्रायसे हमलोगोंको मारनेके लिये आयुध प्रदर्शित करता है अर्थात् आयुध द्वारा हमारी हिंसा करता है, उस मनुष्यसे और पापसे तुम हमारी रक्षा करो।

३२ हे द्योतमान अग्नि, जो मनुष्य हमलोगोंको मारनेकी इच्छा करता है, उस दुष्कर्मकारी मनुष्यको तुम ज्वाला द्वारा परिबाधित करो।

३३ हे शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले अग्नि, तुम हमें अर्थात् भरद्वाज ऋषिको विस्तीर्ण (विपुल) सुख अथवा गृह प्रदान करो और वरणीय धन भी दो।

३४ भली भाँतिसे दीप्त, अतएव शुक्लवर्ण और हवि द्वारा आहुत अग्नि स्तुतिसे स्तूयमान होकर हविकी इच्छा करते हैं। अग्नि शत्रुओंका अथवा अन्धकारका विनाश करे।

३५ माता पृथ्वीकी गर्भस्थानीय और क्षरणरहित वेदीपर अग्नि विद्योतमान होते हैं और हवि द्वारा द्युलोकके पालक अग्नि यज्ञकी उत्तर वेदीपर उपविष्ट होकर शत्रुओंका विनाश करते हैं।

* मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतं। मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्॥

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३६॥
उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥३७॥
उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥३८॥
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३९॥
आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति ।
विशामग्निं स्वध्वरम् ॥४०॥

---

३६ हे सर्वदर्शी जातवेदा, तुम पुत्र-पौत्रोंके साथ उस अन्नका आनयन करो, जो अन्न द्युलोकमें देवोंके मध्यमें प्रशस्त अन्न होकर शोभमान हो ।

३७ हे बल द्वारा उत्पाद्यमान अग्नि, तुम्हारा दर्शन अत्यन्त रमणीय है । हवीरूप अन्न लेकर हम लोग तुम्हारे समीप स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं ।

३८ हे अग्नि, तुम्हारा तेज सुवर्णकी तरह रोचमान है और तुम दीप्तिसम्पन्न हो। हम लोग तुम्हारी शरणमें उसी तरह प्राप्त होते हैं, जैसे कि घर्मार्त्त पुरुष छायाका आश्रय ग्रहण करता है ।

३९ अग्नि प्रचण्ड बलशाली धानुष्ककी तरह बाणों द्वारा शत्रुओंके हन्ता हैं और तीक्ष्ण-शृङ्ग वृषभकी तरह हैं । हे अग्नि तुमने त्रिपुरासुरके तीनों पुरोंको भग्न किया है।*

४० अध्वर्यु लोग अरणिमन्थनसे उत्पन्न जिस सद्योजात अग्निको पुत्रकी तरह हाथमें यानी अभिमुख धारण करते हैं, उस हव्य-भक्षक और मनुष्योंके शोभन यज्ञके निष्पादक अग्निका हे ऋत्विक्‌गण तुमलोग परिचरण करो ।

* रुद्र और अग्निमें कोई भेद नहीं है । यद्यपि त्रिपुर-दहन महादेव द्वारा हुआ है; तथापि वह अग्निकृत ही कहलाता है । अथवा त्रिपुर-दहन करनेवाले बाणमें अग्नि वर्तमान थे; अतः वह अग्निजन्य कार्य हुआ ।—सायण ।

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् ।
आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥४१॥
आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् ।
स्योन आ गृहपतिम् ॥४२॥
अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
अरं वहन्ति मन्यवे ॥४३॥
अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥४४॥
उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।
शोचा वि भाह्यजर ॥४५॥
वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीलीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥४६॥

---

४१ हे अध्वर्युगण, तुमलोग देवोंके भक्षणार्थ आहवनीय अग्निमें प्रक्षेप करो। अग्नि द्योतमान और धनोंके ज्ञाता है। अग्नि अपने आहवनीय स्थानमें उपवेशन करें।

४२ हे अध्वर्युओ, प्रादुर्भूत, अतिथिकी तरह प्रिय और गृहस्वामी अग्निको ज्ञानप्रदायक और सुखकर आहवनीय अग्निमें संस्थापित करो।

४३ हे द्योतमान अग्नि, तुम उन समर्थ सुशील अश्वोंको अपने रथमें युक्त करो, जो तुम्हें यज्ञके प्रति पर्याप्त रूपसे वहन करते हैं।

४४ हे अग्नि, तुम हमारे अभिमुख आगमन करो। हव्य-भोजन और सोमपान करनेके लिये तुम देवोंको आनयन करो।

४५ हे हव्यवाहक अग्नि, तुम अत्यन्त ऊर्द्ध्व तेज होकर दीप्यमान होओ। हे जरारहित अग्नि, तुम अजस्र द्योतमान तेजसे प्रकाशित होओ। तुम पहले उद्दीप्त होओ और पश्चात् अपने तेज-से सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करो।

४६ हविसे युक्त जो यजमान हविर्लक्षण अन्न द्वारा जिस किसी देवताकी परिचर्या करता है, उस यज्ञमें भी अग्नि स्तुत होते हैं अर्थात् अग्निकी पूजा सब यज्ञोंमें होती है। अग्नि द्यावापृथिवीमें वर्तमान देवोंके आह्वानकर्ता और सत्य रूप हवि द्वारा यष्टव्य हैं। यजमान लोग बद्धाञ्जलि होकर नमस्कार-पूर्वक ऐसे अग्निकी परिचर्या करें।

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥४७॥
अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।
येना वसून्याभृता तृह्ला रक्षांसि वाजिना ॥४८॥

४७ हे अग्नि, हम तुम्हें संस्कृत ऋक् रूप हव्य प्रदान करते हैं। अर्थात् ऋचाको ही हव्य बनाकर प्रदान करते हैं। ऋक् स्वरूप वह हवि तुम्हारे भक्षणके लिये सेचनसमर्थ वृषभ और गौ रूपमें परिणत हो।

४८ जिस बलवान् अग्निने यज्ञविरोधक राक्षसोंका संहार किया है, जिस अग्निने असुरोंके समीपसे धन आहरण किया है, उस वृत्रहन्ता प्रधान अग्निको देवगण उद्दीप्त करते हैं।

पञ्चम अध्याय समाप्त

षष्ठ अध्याय

१७ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् और द्विपदा त्रिष्टुप् छन्द।

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥१॥
स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान्वृषभो यो मतीनाम्।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥२॥
एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३॥
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥४॥

---

१ हे उद्यतायुध या प्रचण्ड बलशाली इन्द्र, अङ्गिराओं द्वारा स्तूयमान होकर तुमने सोमपान करनेके लिये पणियों द्वारा अपहृत गौओंको प्रकाशित किया था। तुम सोमपान करो। हे शत्रुओंके विनाशक वज्रधर इन्द्र, बलसे युक्त होकर तुमने सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश किया है।

२ हे रसविहीन सोमके पानकर्ता इन्द्र, तुम शत्रुओंसे त्राण करनेवाले, शोभन कपोलवाले और स्तोताओंकी कामनाके पूरक हो। तुम इस सोमरसका पान करो। हे इन्द्र, तुम वज्रधर, पर्वतों या मेघोंके विदारक और अश्वोंके संयोजक हो। तुम हम लोगोंके विचित्र अन्नको प्रकाशित करो।

३ हे इन्द्र, तुमने जैसे प्राचीन सोमरस पान किया था, वैसे ही हमारे इस सोमरसको पियो। यह सोमरस तुम्हें प्रसन्न करे। हमारे स्तोत्रको सुनो और स्तुतियों द्वारा वर्द्धमान होओ। सूर्यको आविष्कृत करो।* हम लोगोंको अन्न भोजन कराओ। हमारे शत्रुओंका विनाश करो और पणियों द्वारा अपहृत गौओंको प्रकाशित करो।

४ हे अन्नवान् इन्द्र, तुम दीप्तिमान् हो। यह पिया गया मादक सोमरस तुम्हें अतिशय सिंचित करे। हे इन्द्र, यह मदकारक सोमरस तुम्हें अतिशय हर्षित करे। तुम महान्, निखिल-गुणवान्, प्रवृद्ध, विभववान् और शत्रुओंको पराभूत करनेवाले हो।

---

* सूर्यके दर्शन बहुत कम होनेके कारण इस तरहकी स्तुति की गयी है।

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोवासयोप दृह्लानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसः परि स्वात् ॥५॥
तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृह्लोदूर्वाद्गा असृजो अंगिरस्वान् ॥६॥
पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥७॥
अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥८॥
अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद्द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ॥९॥

---

५ हे इन्द्र, सोमरससे मोदमान होकर तुमने दृढ़ अन्धकारका भेदन किया है और सूर्य तथा उषाको अपने-अपने स्थानपर निवेशित किया है। तुमने अपने स्थानसे अविचलित अर्थात् विनाशरहित, स्थिर पर्वतको विदीर्ण किया है, जिस पर्वतके चारों तरफ पणियों द्वारा अपहृत गौएँ वर्तमान थीं।

६ हे इन्द्र, तुमने अपनी बुद्धि, कार्य और सामर्थ्यके द्वारा अपरिपक्व गौओंको परिणत दुग्ध प्रदान किया है अर्थात् अकालमें ही गौओंको क्षीरदायिनी बनाया है। हे इन्द्र, तुमने गौओंको बाहर आनेके लिये पाषाणादिके दृढ़ द्वारोंको उद्घाटित किया है। अङ्गिराओंके साथ मिलित होकर तुमने गौओंको गोष्ठमें उन्मुक्त किया था।

७ हे इन्द्र, तुमने महान् कर्म द्वारा विस्तीर्ण पृथिवीको विशेष प्रकारसे पूर्ण किया है। हे इन्द्र, तुम महान् हो। तुमने महान् द्युलोकका धारण किया है, जिससे वह निपतित न हो जाय। तुमने पोषण करनेके लिये द्यावापृथिवीका धारण किया है। देवता लोग द्यावापृथिवीके पुत्र हैं। द्यावापृथिवी पुरातन, यज्ञ या उदकका निर्माण करनेवाली और महान् है।

८ हे इन्द्र, जब कि, वृत्रासुर संग्रामके लिये देवोंके प्रति चला था, तब संपूर्ण देवोंने एक तुम्हें ही संग्रामके लिये अगुआ बनाया था। तुम अत्यन्त बलशाली हो। तुमने मरुतोंके संग्राममें इन्द्रको साहाय्य दिया था।

९ विपुल अन्नवाले इन्द्रने जब कि सोने (मरने) के लिये आक्रमणकारी वृत्रका बध किया था, तब हे इन्द्र, तुम्हारे क्रोध और वज्रके भयसे द्युलोक अवसन्न हो गया था।

अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥१०॥
वर्द्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥११॥
आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृजऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥१२॥
एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम्
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥१३॥
स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥१४॥

१० हे अत्यन्त बलशाली इन्द्र, देवशिल्पी त्वष्टाने तुम्हारे लिये सहस्र धारावाले और सौ पर्व (गाँठ) वाले वज्रका निर्माण किया था। हे नारस सोमपान करनेवाले इन्द्र, उसी वज्र द्वारा तुमने नियताभिलाष, उद्धत-प्रकृति और शब्दायमान वृत्रासुरको चूर्ण किया था।

११ हे इन्द्र, सम्पूर्ण मरुद्गण समान प्रीतिभाजन होकर स्तोत्र द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते है और तुम्हारे निमित्त पूषा तथा विष्णु देव शतसंख्यक महिषोंका पाक करते हैं। तीन पात्रोंको पूर्ण करनेके लिये मद-कारक और वृत्रविनाशक सोम धावित होता है अर्थात् पूषा और विष्णु सोमपात्रको पूर्ण करें। सोमपान करनेके बाद वृत्र-विनाशमें इन्द्र समर्थ होते हैं।

१२ हे इन्द्र, तुमने वृत्र द्वारा समाच्छादित सर्वतः स्थित नदियोंके जलको उन्मुक्त किया था, जिससे नदियाँ प्रवाहित हुईं। तुमने उदक तरङ्गको उन्मुक्त किया है। हे इन्द्र, तुमने उन नदियोंको निम्न मार्गसे प्रवाहित किया है। तुमने वेगयुक्त उदकको समुद्रमें पहुँचाया है।

१३ हे इन्द्र, इस प्रकारसे तुम सम्पूर्ण कार्योंके करनेवाले, ऐश्वर्यशाली, महान् ओजस्वी, अजर, बलदाता, शोभन मरुतोंसे सहायता पानेवाले, अस्त्रधारी और वज्रधर हो। हम लोगोंका नवीन स्तोत्र तुम्हें प्रवर्तित करे, जिससे हम लोगोंकी रक्षा हो।

१४ हे इन्द्र, तुम हम लोगोंको बल, पुष्टि, अन्न और धनके लिये धारण करो। हम लोग शक्तिसम्पन्न और मेधावी हैं। हे इन्द्र, हम भरद्वाजको परिचारकोंसे युक्त करो। तुम्हारी स्तुति करने वाले पुत्र-पौत्रोंको करो। हे इन्द्र तुम आनेवाले दिवसमें हमारी रक्षा करो।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥

१८ सूक्त

इन्द्र देवता भरद्वाज। ऋषि। त्रिष्टुप छन्द।

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाह्ळमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥१॥
स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥२॥
त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥३॥
सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥४॥

१५ इस स्तुतिके द्वारा हमलोग द्योतमान इन्द्र द्वारा प्रदत्त अन्न लाभ करें। हमलोग शोभन पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त प्रमुदित हों।

---

१ हे भरद्वाज, तुम अनभिभूत तेजवाले, शत्रुओंका हिंसा करनेवाले, अधृष्य और बहुतोंके द्वारा आहूत इन्द्रका स्तवन करो। तुम इन स्तोत्रों द्वारा अनभिभूत, ओजस्वी, शत्रुविजयी और मनुष्योंके अभीष्ट-पूरक इन्द्रको संवर्द्धित करो।

२ इन्द्र संग्राममें रेणुओंके उत्थापक, मुख्य, बलवान, योद्धा, दाता, युद्धमें संलग्न, सहानु-भूति-सम्पन्न, वृष्टि द्वारा बहुतोंके उपकारक, शब्दविधायक, तीनों सवनोंमें सोमपान करनेवाले और मनुका सन्तानोंकी रक्षा करनेवाले हैं।

३ हे इन्द्र, तुम कर्मविहीन मनुष्योंको शीघ्र ही वशीभूत करो। अकेले तुमने ही कर्मानुष्ठानकारी आर्योंको पुत्र-दासादि प्रदान किया था। हे इन्द्र, तुममें इस प्रकारकी पूर्वोक्त सामर्थ्य है अथवा नहीं ? तुम समय-समयपर अपने वीर्यका विशेष परिचय प्रदान करो।

४ तथापि हे बलवान् इन्द्र, तुम संसारके बहुत यज्ञोंमे प्रादुर्भूत हुए हो और हमारे शत्रुओंका विनाश किया है। तुममें प्रचण्ड और प्रवृद्ध बल है हम ऐसा समझते हैं। तुम ओजस्वी, समृद्धि सम्पन्न, शत्रुओं द्वारा अजेय तथा जयशील शत्रुओंके निधनकर्ता हो।

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५॥
स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥६॥
स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥७॥
स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तु नामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८॥
उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥९॥

५ हे अविचलित पर्वतादिके संचालनकर्ता और मनोज्ञदर्शन इन्द्र, हम लोगोंका चिरकालानुवर्ती सख्य चिरस्थायी हो। तुमने स्तवकारी अङ्गिराओंके साथ अस्त्र निक्षेप करनेवाले बल नामक असुरका बध किया था एवं उसके नगरों और नगरोंके द्वारोंको उद्घाटित किया था।

६ ओजस्वी और स्तोताओंकी सामर्थ्यको करनेवाले इन्द्र महान् संग्राममें स्तोताओं या स्तुतियों द्वारा आहूत होते हैं। पुत्रलाभके लिये इन्द्र आहूत होते हैं। वज्रधारी इन्द्र संग्राममें विशेष रूपसे बन्दनीय होते हैं।

७ इन्द्रने विनाशरहित और शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले बल द्वारा मनुष्योंके जन्मको अतिशय प्राप्त किया है। इन्द्र यश द्वारा समान स्थानवाले होते हैं और नेतृतम इन्द्र धन तथा सामर्थ्यके द्वारा समान स्थानवाले होते हैं।

८ जो इन्द्र संग्राममें कभी भी कर्तव्य-विमूढ़ नहीं होते हैं, जो कभी भी वृथा वस्तुओंको उत्पन्न नहीं करते हैं; किन्तु जो प्रख्यात नामवाले हैं, वही इन्द्र शत्रुओंके नगरोंको विनष्ट करनेके लिये और शत्रुओंको मारनेके लिये शीघ्र ही कार्यरत होते हैं। हे इन्द्र, तुमने चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर और शुष्ण नामक असुरोंको विनष्ट किया है।

९ हे इन्द्र, तुम ऊर्द्ध्वगामी और शत्रुओंके संहारकर्ता हो। तुम स्तवनीय बलसे युक्त होकर शत्रुओंको मारनेके लिये अपने रथपर आरोहण करो। दक्षिण हस्तमें अपने अस्त्र वज्रको धारण करो। हे बहु-धनवाले इन्द्र, तुम जाकर आसुरी मायाको विशेष प्रकारसे उच्छिन्न करो।

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥१०॥
आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११॥
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२॥
प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥१३॥
अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥१४॥

१० हे इन्द्र, अग्नि जिस प्रकारसे नारस वृक्षोंको दग्ध करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा वज्र शत्रुओंको नष्ट करता है। तुम वज्रकी तरह भयङ्कर हो। तुम वज्र द्वारा राक्षसोंको अतिशय भस्मसात् करो। इन्द्रने अनभिभूत और महान् वज्र द्वारा शत्रुओंको भग्न किया है। इन्द्र संग्राममें शब्द करते हैं और समस्त दुरितोंका भेदन करते हैं।

११ हे बहुधनसम्पन्न, बहुतोंके द्वारा आहूत, बलपुत्र इन्द्र, कोई भी असुर तुम्हें बलसे पृथक् करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है। धनसे युक्त होकर तुम असंख्य बलशाली वाहनोंके द्वारा हमारे अभिमुख आगमन करो।

१२ बहुत धनवाले या बहुत यशवाले, शत्रुओंके निहन्ता और प्रवृद्धमान इन्द्रकी महिमा द्यावापृथिवीसे भी महान् है। बहुत बुद्धिवाले और शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले इन्द्रका कोई शत्रु नहीं है, कोई प्रतिनिधि नहीं है और न कोई आश्रय है।

१३ हे इन्द्र, तुम्हारा वह कर्म प्रकाशित होता है। तुमने शुष्णनामक राक्षससे कुत्सको और शत्रुओंके समीपसे आयु तथा दिवोदासकी रक्षा की थी। तुमने हम अतिथिग्वको शम्बरके समीपसे बहुत धन प्रदान किया था। हे इन्द्र, तुमने विजयी वज्र द्वारा शम्बरको मार करके पृथिवीमें वर्तमान शीघ्र गमन करनेवाले दिवोदासको विपदुसे बचाया था।

१४ हे द्योतमान इन्द्र, सम्पूर्ण स्तोता लोग अभी मेघको विनष्ट करनेके लिये अर्थात् वृष्टि प्रदान करनेके लिये तुम्हारा स्तवन कर रहे हैं। तुम सम्पूर्ण मेधावियोंमें श्रेष्ठ हो। स्तोताओंके स्तवनसे प्रसन्न होकर तुम दारिद्र्यादिसे पीड़ित यजमानों और उनके पुत्रोंको धन प्रदान करते हो।

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५॥

१६ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥
इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद्बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाह्लेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥२॥
पृथु करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥३॥

१५ हे इन्द्र, द्यावापृथिवी और अमर देव तुम्हारे बलको स्वीकार करते हैं । हे बहुत कार्यके करनेवाले इन्द्र, तुम असम्पादित कार्योंका अनुष्ठान करो और उसके अनन्तर यज्ञमें नवीनतर स्तोत्रको उत्पन्न करो ।

१ राजाकी तरह स्तोता मनुष्योंकी कामनाओंके पूरक प्रभूत इन्द्र आगमन करें । दोनों लोकोंके ऊपर पराक्रमको विस्तारित करनेवाले और शत्रुओं द्वारा अहिंसनीय इन्द्र हम लोगोंके निकट वीरत्व प्रकाशित करनेके लिये वर्द्धित होते हैं । इन्द्र विस्तीर्ण शरीरवाले और प्रख्यात गुणवाले हैं । वे यजमानों द्वारा भली भाँतिसे परिचित होते हैं ।

२ इन्द्र उत्पन्न होते ही अत्यधिक वर्द्धमान होते हैं । हमारी स्तुति दानके लिये इन्द्रको धारण करती है । इन्द्र महान्, गमनशील, जरारहित, युवा और शत्रुओं द्वारा अनभिभूत होनेवाले बलसे वर्द्धमान हैं ।

३ हे इन्द्र, तुम अन्नदान करनेके लिये हम लोगोंके अभिमुख अपने विस्तीर्ण, कार्यकर्ता और अतिशय दानशील हाथोंको करो । हे इन्द्र, तुम शान्त मनवाले हो । पशुपालक जिस प्रकारसे पशुओंके समूहको संचालित करता है, उसी प्रकार तुम संग्राममें हम लोगोंको संचारित करो ।

तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥४॥
धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
संजग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५॥
शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूतउग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥ ६ ॥
यस्ते मदः पृतनाषाडमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥ ७ ॥
आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥

४ हम स्तोतालोग अन्नाभिलाषी होकर इस यज्ञमें समथ सहायक मरुतोंके साथ शत्रु निहन्ता प्रसिद्ध इन्द्रका स्तवन करते हैं। हे इन्द्र, तुम्हारे पुरातन स्तोताका तरह हमलोग भी अनिन्द्य, पापरहित और अहिंसित हो।

५ जिस तरह नदियाँ प्रवाहित होकर समुद्रमें निपतित होती हैं, उसी प्रकार स्तोताओंका हितकर धन इन्द्रके प्रति गमन करता है। इन्द्र धनसे कर्म करनेवाले, वांछित धनके स्वामी और सोमरस द्वार प्रवृद्धमान हैं।

६ हे पराक्रमशाली इन्द्र, तुम हमलोगोंको प्रकृष्टतम बल प्रदान करो। हे शत्रुओंको अभिभूत करनेवाले इन्द्र, तुम हमलोगोंको असह्य और अतिशय ओजस्वी दीप्ति प्रदान करो। हे अश्ववाले इन्द्र, तुम हमलोगोंको सेचन-समर्थ, द्योतमान और मनुष्योंके भोगके लिये कल्पित सम्पूर्ण धन प्रदान करो।

७ हे इन्द्र, तुम हमलोगोंको शत्रु-सेनाओंको अभिभूत करने वाला और अहिंसित हर्ष प्रदान करो। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हमलोग जयशील हों। पुत्र-पौत्रके लाभके निमित्त हमलोग उसी हर्षसे तुम्हारा स्तवन करें।

८ हे इन्द्र, तुम हमलोगोंको अभिलाषपूरक सेनारूप बल प्रदान करो। वह (बल) धनका पालक, प्रवृद्ध और शोभन बल हो। हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा द्वारा हम संग्राममें जिस बलसे आत्मीय तथा अपरिचित शत्रुओंका वध कर सकें।

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥
नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥ १० ॥
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥
जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ १२ ॥
वयन्त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोः शत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥ १३ ॥

९ हे इन्द्र, तुम्हारा अभिष्टवर्षी बल पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और पूर्वको ओरसे हमारे अभिमुख आगमन करे । वह प्रत्येक दिशा होकर हमारे निकट आगमन करे । तुम हम लोगोंको सब प्रकारके साथ धन प्रदान करो ।

१० हे इन्द्र, परिचारकोंसे युक्त और श्रोतव्य यशके साथ हमलोग श्रेष्ठ धनका उपभोग, तुम्हारी रक्षाके द्वारा, करते हैं । हे राजमान इन्द्र, तुम पार्थिव और दिव्य धनके अधिपति हो; अतएव तुम हमलोगों-को महान्, असीम एवम् गुणयुक्त रत्न प्रदान करो ।

११ हमलोग अभिनव रक्षाके लिये इस यज्ञमें प्रसिद्ध इन्द्रका आह्वान करते हैं । वे मरुतोंके साथ युक्त, अभीष्टवर्षी, समृद्ध, शत्रुओंके द्वारा अकुत्सित (अकदर्य), दीप्तिमान्, शासनकारी, लोकका अभि-भव करनेवाले, प्रचण्ड और बलप्रद हैं ।

१२ हे वज्रधर, हम जिन मनुष्योंके मध्यमें वर्तमान हैं, उन मनुष्योंसे अपनेको अधिक माननेवाले व्यक्तिको तुम वशीभूत करो । हमलोग अभी इस लोकमें युद्धके समयमें एवम् पुत्र, पशु और उदक लाभके निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ।

१३ हे बहुजनाहूत इन्द्र, हमलोग इन स्तोत्र रूप सखिकर्मके द्वारा तुम्हारे साथ समुदित शत्रुओंका संहार करें और उनकी अपेक्षा प्रबल हों । हे पराक्रमवान इन्द्र, हमलोग तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर महान् धनसे प्रसन्न हों ।

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥ ५ ॥
प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥
वि पिप्रोरहिमायस्य दृह्लाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥
स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८ ॥
स इं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९ ॥

---

५ वज्रके पतित होनेसे जब शुष्णने प्राण त्याग किया, तब महान् द्रोही शुष्णका सम्पूर्ण बल नष्ट हो गया। इन्द्रने सूर्यका संभजन करनेके लिये सारथीभूत कुत्सको अपने रथको विस्तृत करनेके लिये कहा ।

६ इन्द्रने प्राणियोंको उपद्रुत करनेवाले नमुचि नामक असुरके मस्तकको चूर्ण किया एवम् सप्यके पुत्र निद्रित नमी ऋषिकी रक्षा करके उन्हें पशु आदि धन तथा अन्नसे युक्त किया । उस समय श्येन पक्षीने इन्द्रके लिये मदकर सोमका आनयन किया था ।

७ हे वज्रधर इन्द्र, तुमने दुरन्त मायावाले पिप्रु नामक असुरके दृढ़ दुर्गोंको बल द्वारा विदीर्ण किया था। हे शोभन दानसम्पन्न इन्द्र, तुमने हव्य रूप धन प्रदान करनेवाले राजर्षि ऋजिश्वाको अप्रतिबाध धन प्रदान किया था ।

८ अभिलषित सुख-प्रदाता इन्द्रने वेतसु दशोणि, तूतुजि, तुग्र और इभ नामक असुरोंको राजा द्योतनके निकट सर्वदा गमन करनेके लिये उसी तरह वशीभूत किया था, जैसे कि माताके निकट गमन करनेमें पुत्र वशीभूत होते हैं ।

९ शत्रुओं द्वारा नहीं निरस्त होनेवाले इन्द्र हाथमें शत्रुओंको मारनेवाले अपने आयुधको धारण करते हुए स्पर्द्धाकारी वृत्रादि शत्रुओंका विनाश करते हैं। शूर जिस प्रकारसे रथपर आरोहण करता है, उसी प्रकार वे अपने अश्वोंपर आरोहण करते हैं । वचन मात्रसे युज्यमान होकर वे दोनों घोड़े महान् इन्द्रका वहन करें ।

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥ १० ॥
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वन्नपातम् ॥ ११ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीऋर्णोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥
तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनी चुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कैः ॥१३॥

१० हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षाके द्वारा हम स्तोता लोग नवीन धनके लिये सम्भजन करते हैं। मनुष्य स्तोता लोग इस प्रकारसे युक्त यज्ञोंके द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं कि, यज्ञविद्वेषी प्रजाओंकी हिंसा करते हुए पुरुकुत्स राजाको धन प्रदान करते हैं। हे इन्द्र, तुमने शरत् नामक असुरकी सात पुरियोंको वज्र द्वारा विदीर्ण किया है।

११ हे इन्द्र, धनाभिलाषी होकर तुम कविपुत्र उशनाके लिये प्राचीन उपकारक हुए थे अर्थात् स्तोताओंके वर्द्धक हुए थे तुमने नववास्त्व नामक असुरका बध किया और क्षमताशाली पिता उशनाके निकट उसके देय पुत्रको समर्पित किया।

१२ हे इन्द्र, तुम शत्रुओंको कंपानेवाले हो। तुमने धुनिनामक असुर द्वारा निरुद्ध जलको नदीकी तरह प्रवहणशील बनाया था अर्थात् धुनिका हनन करके निरुद्ध जलराशिको बहाया था। हे वीर इन्द्र, जब तुम समुद्रका अतिक्रमण करके उत्तीर्ण होते हो, तब समुद्रके पारमें वर्तमान तुर्वश और यदुको समुद्र पार कराते हो।

१३ हे इन्द्र, संग्राममें उस तरहके सब कार्य तुम्हारे ही हैं। धुनी और चुमुरी नामक असुरोंको तुमने संग्राममें सुलाया है अर्थात् मार डाला है। हे इन्द्र, इसके अनन्तर हव्यपाक करनेवाले, इन्धनके भर्ता और तुम्हारे निमित्त सोमाभिषव करनेवाले राजर्षि दभीतिने हवीरूप अन्नसे तुम्हें दीप्त किया है।

२० सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप छन्द।

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान्।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥
दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम्।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥ २ ॥
तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥
शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत् किं चन प्र ॥४॥

१ हे बलपुत्र इन्द्र, सूर्य जिस प्रकारसे अपनी दीप्ति द्वारा पृथिवीको आक्रान्त करते हैं उसी प्रकार संग्राममें शत्रुओंको आक्रान्त करनेवाला पुत्र रूप धन तुम हमें प्रदान करो। वह सहस्र प्रकारके धनका भर्ता, शस्यपूर्ण भूमिका अधिपति और शत्रुओंका निहन्ता हो।

२ हे इन्द्र, स्तोताओंने स्तोत्र द्वारा सूर्यकी तरह तुममें सचमुच समस्त बल अर्पित किया था। हे नीरस सोमपान करनवाले इन्द्र, तुमने विष्णुके साथ युक्त होकर बल द्वारा वारिनिरोधक आदि वृत्रका बध किया था।

३ जब इन्द्रने सम्पूर्ण शत्रु-पुरियोंके विदारक बज्रको प्राप्त किया, तब वे मधुर सोमरसके स्वामी हुए। इन्द्र हिंसकोंको हिंसा करनेवाल अतिशय ओजस्वी, बलवान्, अन्न देनेवाले और प्रवृद्ध तेजवाले हैं।

४ हे इन्द्र, युद्धमें बहुत अन्न प्रदान करनेवाले और तुम्हारी सहायता करने वाले मेधावी कुत्ससे भीत होकर शतसंख्यक सेनाओंके साथ पणि नामक असुरने पलायन किया था। इन्द्रने बलशाली शुष्ण नामक असुरका कपटताका आयुध द्वारा नष्ट करके उसके समस्त अन्नको अपहृत किया था।

२१ सूक्त

इन्द्र देवता। नवम और एकादश ऋचाके विश्वदेवगण देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥१॥
तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम्।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥
स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३॥
यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु।
कस्ते यज्ञो मनसे शम्वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४॥

---

१ हे शूर इन्द्र, बहुत कार्यकी अभिलाषा करनेवाले, स्तोता भरद्वाजकी प्रशंसनीय स्तुतियाँ तुम्हारा आह्वान करती हैं; इन्द्र रथपर स्थित, जरारहित और नवीनतर हैं। श्रेष्ठ विभूति [हविर्लक्षण धन] इन्द्रका अनुगमन करती है।

२ जो सब जानते हैं अथवा जो सबके द्वारा जाने जाते हैं, जो स्तुतियों द्वारा प्रापणीय हैं और जो यज्ञ द्वारा प्रवृद्धमान होते हैं, उन इन्द्रका हम स्तवन करते हैं। बहुत प्रज्ञावाले इन्द्रका माहात्म्य द्यावा-पृथिवीका अतिक्रमण करता है।

३ इन्द्रने ही वृत्र द्वारा विस्तीर्ण और अप्रज्ञात (अप्रकाशित) अन्धकारको सूर्य्य द्वारा प्रकाशित किया था। हे बलवान् इन्द्र, तुम अमरणशील हो। मनुष्यगण तुम्हारे स्वर्ग नामक स्थानका (वहाँ रहने-वालों देवोंका) सर्वदा यजन करना चाहते हैं। वे किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करते।

४ जिन इन्द्रने उन वृत्र-वधादि प्रसिद्ध कार्यों को किया है, वे अभी कहाँ वर्तमान हैं, किस देश और किन प्रजाओंके मध्यमें वर्तमान हैं (अतिशय विभूतिके कारण यह निश्चय किया जा सकता है कि, वे कहाँ हैं।) हे इन्द्र, किस तरहका यज्ञ तुम्हारे चित्तके लिये सुखकर होता है? तुम्हारा वरण करनेमें किस तरहका मन्त्र समर्थ होता है? तुम्हारा वरण करनेमें जो आहुता समर्थ होता है, वह कौन है?

इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५॥
तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥६॥
अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥७॥
स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्यापिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद्बभूथ सुहव एष्टौ ॥८॥
प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥९॥

---

५ हे बहुत कार्योंके करनेवाले इन्द्र, पूर्वकालोत्पन्न पुरातन अङ्गिरा आदि आजकलकी तरह कार्य करते हुए तुम्हारे स्तोता हुए थे। मध्यकालीन और नवीन [आजकलवाले] भी तुम्हारे स्तोता हुए हैं; अतएव हे बहुजनाहूत इन्द्र, तुम मुझ अर्वाचीनकी स्तुतिको समझो [सुनो]।

६ हे शूर और मन्त्र द्वारा प्रापणीय इन्द्र, अर्वाचीन मनुष्यगण, उक्त गुणोंसे युक्त, तुम्हारी अर्चना करते हैं। तुम्हारे प्राचीन और उत्कृष्ट महान् कार्योंको स्तुतिरूप वचनोंमें बाँधते हैं। तुम्हारे जिन कार्योंको हमलोग जानते हैं, उन्हींसे हमलोग तुम्हारी अर्चना करते हैं। तुम महान् हो।

७ हे इन्द्र, राक्षसोंका बल तुम्हारे अभिमुख प्रतिष्ठित है। तुम भी उस प्रादुर्भूत महान् बलके अभिमुख स्थिर होओ। हे शत्रुओंके धर्षक इन्द्र, स्थिर होकर तुम अपने वज्र द्वारा उस बलका अपनोदन करो। तुम्हारा वज्र पुरातन, याजनीय और नित्य सहायक है।

८ हे स्तोताओंके धारक वीर इन्द्र, तुम हमारे स्तोत्रको शीघ्र सुनो। हम इदानीन्तन [आधुनिक] और स्तोत्र करनेकी इच्छा रखनेवाले हैं। हे इन्द्र, यज्ञमें तुम शोभन आह्वानवाले होकर पूर्व कालमें अङ्गिराओंके चिरकालतक बन्धु हुए थे। इसलिये तुम हमारे स्तोत्रको सुनो।

९ हे भरद्वाज, तुम अभी हमलोगोंकी तृप्ति और रक्षाके लिये रात्र्यभिमानी वरुण, दिनाभिमानी मित्र, इन्द्र, मरुद्गण, पूषा, सर्वव्यापी विष्णु, बहु कर्मकारी अग्नि, सबके प्रेरक सविता, ओषधियोंके अभिमानी देव और पर्वतोंको स्तुतिके अभिमुख करो।

इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृतत्वदस्ति ॥१०॥
नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥११॥
स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः ।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥१२॥

२२ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥

१० हे बहुत शक्तिवाले अतिशय यजनीय इन्द्र, ये स्तोता लोग अर्चनीय स्तोत्रोंके द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे अमरणशील इन्द्र, स्तूयमान होकर तुम स्तुति करनेवाले मेरे स्तोत्रको सुनो; क्योंकि तुम्हारे सदृश दूसरे देव नहीं हैं ।

११ हे बलपुत्र इन्द्र, तुम सर्वज्ञ हो। तुम सम्पूर्ण यजनीय देवोंके साथ शीघ्र ही मेरे स्तुतिरूप वचनके अभिमुख आगमन करो। जो देव अग्नि-जिह्व हैं, जो यज्ञमें भोजन करते हैं और जिन्होंने राजर्षि मनुको, शत्रुओंको नष्ट करनेके लिये, दस्युओंके ऊपर किया है, उन्हींके साथ आगमन करो ।

१२ हे इन्द्र, तुम मार्गनिर्माता और विद्वान् हो। तुम सुख-पूर्वक जाने योग्य मार्गमें तथा दुःखसे जाने योग्य मार्गमें हमलोगोंके अग्रसर होओ। श्रमरहित, महान् और वाहक श्रेष्ठ जो तुम्हारे अश्व हैं, उनके द्वारा हे इन्द्र, तुम हमलोगोंके लिये अन्न आहरण करो ।

---

१ जो इन्द्र प्रजाओंकी आपत्तियोंमें एक मात्र आह्वान करनेके योग्य हैं। जो स्तोताओंके प्रति आगमन करते हैं। जो अभीष्टवर्षक, बलवान्, सत्यवादी, शत्रुपीड़क, बहुप्रज्ञ और अभिभवकर्त्ता हैं उन इन्द्रकी स्तुतियों द्वारा स्तवन करता हूँ ।

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२॥
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३॥
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीलिता स्वोजो रुजो वि दृह्ला धृषता विरप्शिन् ॥६॥

२ पुरातन, नौ महीनोंमें यज्ञ करनेवाले, सप्त-सङ्ख्यक मेधावी, हमारे पिता अङ्गिरा आदिने इन्द्रको बलवान् अथवा अन्नवान् करते हुए स्तुतियों द्वारा उनका स्तवन किया था। इन्द्र गमनशील, शत्रुओंके हिंसक, पर्वतोंपर अवस्थिति करनेवाले और अनुल्लंघनीय शासन हैं।

३ बहुत पुत्र-पौत्रोंसे युक्त, परिचारकोंके साथ और पशुओंके साथ हमलोग इन्द्रके निकट अविच्छिन्न, अक्षय और सुखदायक धनकी प्रार्थना करते हैं। हे अश्वोंके अधिपति, तुम हमलोगोंको सुखी करनेके लिये वह धन आहरण करो।

४ हे इन्द्र, जब पूर्व कालमें तुम्हारे स्तोताओंने सुख लाभ किया था, तब हमलोगोंको भी वह सुख बताओ। हे दुर्द्धर्ष, शत्रु-विजयी, ऐश्वर्यशाली, बहुजनाहूत इन्द्र, तुम असुरोंके मारनेवाले हो। तुम्हारे लिये यज्ञमें कौन भाग और कौन हव्य कल्पित हुआ है?

५ यागादि लक्षण कर्मसे युक्त और गुणवाचक स्तुति करनेवाले यजमान वज्रधारण करनेवाले और रथपर अवस्थिति करनेवाले इन्द्रकी अर्चना करते हैं। इन्द्र बहुतोंके ग्रहण करनेवाले [आश्रयदाता] बहुत कर्म करनेवाले और बलके दाता हैं। वह यजमान सुख प्राप्त करता है और शत्रुके अभिमुख गमन करता है।

६ हे निज बलसे बलवान् इन्द्र, तुमने मनकी तरह गमन करनेवाले और बहुत पर्व [गाँठ] वाले वज्रसे माया द्वारा प्रवृद्ध उस वृत्रको चूर्ण किया था। हे शोभन तेजवाले महान् इन्द्र, तुमने धर्षक वज्र द्वारा नाशरहित, अशिथिल और दृढ़ पुरियोंको भग्न किया था।

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुब्रह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।
धिष्व वज्रन्दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः॥९॥
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१०॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमामद्र्यद्रिक् ॥११॥

७ हे इन्द्र, हम चिरन्तन ऋषियोंकी तरह नवीन स्तुतियोंके द्वारा तुम्हें (तुम्हारे गौरवको) विस्तारित करते हैं। तुम अतिशय बलवान् और प्राचीन हो। अपरिमाण और शोभन वहनकारी इन्द्र हम लोगोंकी, समस्त विघ्नोंसे, रक्षा करें।

८ हे इन्द्र, तुम साधु-द्रोही राक्षसोंके लिये द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षस्थित स्थानोंको सन्तप्त करते हो। हे कामनाओंके वर्षक इन्द्र, तुम अपनी दीप्ति द्वारा सर्वत्र विद्यमान उन राक्षसोंको भस्मीभूत करो। ब्राह्मणद्वेषी राक्षसोंको दग्ध करनेके लिये पृथिवी और अन्तरिक्षको दीप्त करो।

९ हे दीप्त-दर्शन इन्द्र, तुम स्वर्गीय तथा पार्थिव जनके ईश्वर होते हो। हे अतिशय स्तवनीय इन्द्र, तुम दक्षिण हस्तमें वज्र धारण करते हो और असुरोंकी मायाको उच्छिन्न करते हो।

१० हे इन्द्र, तुम हम लोगोंको महान्, अहिंसित, संगच्छमान और कल्याणयुक्त सम्पत्ति प्रदान करो, जिससे शत्रुगण वर्षण करनेमें समर्थ नहीं हों। हे वज्रधर इन्द्र, जिस कल्याणके द्वारा तुमने कर्महीन मनुष्योंको कर्मयुक्त बनाया था और मनुष्य-सम्बन्धी शत्रुओंको शोभन हिंसासे युक्त किया था।

११ हे बहुजनाहूत, विधाता, अतिशय यजनीय इन्द्र, तुम सबके द्वारा सम्भजनीय अश्वोंके द्वारा हमारे निकट आगमन करो। जिन अश्वोंका निवारण देव या असुर कोई भी नहीं करते हैं, उन अश्वोंके साथ तुम शीघ्र ही हमारे अभिमुख आगमन करो।

२३ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप छन्द ।

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन् हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥१॥
यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥२॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥ ३ ॥
गन्तेयन्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥

---

१ हे इन्द्र, सोमके अभिषुत होनेपर और महान् स्तोत्रके उच्चार्यमाण होनेपर एवम् शास्त्र [वैदिक स्तुति] विहित होनेपर तुम रथमें अपने अश्वको संयुक्त करते हो । हे धनवान् इन्द्र, तुम दोनो हाथोमें वज्र धारण करके रथमें योजित अश्वद्वयके साथ आगमन करते हो ।

२ हे इन्द्र, तुम स्वर्गमें शूरों द्वारा सम्भजनीय संग्राममें उपस्थित होकर अभिषवकारी यजमानकी रक्षा करते हो एवम् निर्भीक होकर धार्मिक तथा सन्त्रस्त यजमानके विघ्नकारी दस्युओंको वशीभूत करते हो ।

३ इन्द्र अभिषुत सोमके पानकर्ता होते है । भीषण इन्द्र स्तवकारीको [निरापद] मार्गमे ले आते हैं । इन्द्र यज्ञ करनेमें दक्ष तथा सोमाभिषव करनेवाले यजमानको स्थान प्रदान करते है एवम् स्तोत्र करनेवालेको धन प्रदान करते हैं ।

४ इन्द्र अपने अश्वद्वयके साथ सुदूरस्थानीय तीनों सवनोंमें गमन करते हैं । इन्द्र वज्र धारण करनेवाले, अभिषुत सोमके पान करनेवाले, गोदाता, मनुष्यों हितके लिये बहु पुत्रोपेत पुत्र प्रदान करनेवाले और स्तवकारी यजमानके स्तोत्रको श्रवण करनेवाले तथा स्वीकार करनेवाले हैं ।

अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्द्धनं यथासत् ॥ ५ ॥
ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥६॥
स नो बोधि पुरोलाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ ७ ॥
स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८ ॥
तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥ ९ ॥

५ जो पुरातन इन्द्र हम लोगोंके लिये पोषणादि कर्म करते हैं, उन्हीं इन्द्रके अभिलषित स्तोत्रका हमलोग उच्चारण करते हैं। सोमाभिषुत होनेपर हमलोग इन्द्रका स्तवन करते हैं। उक्थोंका उच्चारण करते हुए हमलोग इन्द्रको हविर्लक्षण अन्न उस प्रकारसे देते हैं, जिससे उनका वर्द्धन हो।

६ हे इन्द्र, जिस लिये तुमने स्तोत्रोंको स्वयं बढ़ाया है; अतः हमलोग उस तरहके स्तोत्रोंका, तुम्हारे उद्देशसे, बुद्धिपूर्वक, उच्चारण करते हैं। (हमारे स्तोत्र जिस प्रकारसे वर्द्धमान हों, तुमने वैसा ही किया है)। हे अभिषुत सोमपान-कर्त्ता इन्द्र, तुम्हारे उद्देश्यसे सोमाभिषव होनेपर तुम्हारे उद्देश्यसे निरतिशय सुखदायक, कमनीय और हविसे युक्त स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं।

७ हे इन्द्र, प्रमुदित होकर तुम हमलोगोंके पुरोडाशको स्वीकार करो। दही आदिसे संस्कृत सोमरसको शीघ्र पियो। सोमपान करनेके लिये यजमान-सम्बन्धी कुशोंपर बैठो। तदनन्तर तुम्हारी इच्छा करनेवाले यजमानके स्थानको विस्तीर्ण करो।

८ हे उद्यतायुध इन्द्र, तुम अपनी इच्छाके अनुसार प्रमुदित होओ। यह सोमरस तुम्हें प्राप्त हो। हे बहुजनाहूत इन्द्र, हमारे स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हों। यह स्तुति हमलोगोंकी रक्षाके लिये तुम्हें नियुक्त (प्रवृत्त) करे।

९ हे स्तोताओ, सोमाभिषव होनेपर तुमलोग दाता इन्द्रको, सोमरस द्वारा, यथाभिलाष पूर्ण करो। इन्द्रके लिये वह [सोम] बहुत परिमाणमें हो, जिससे वह हम लोगोंका पोषण करें। इन्द्र अभिषवणशील यजमानकी तृप्ति [सुख] में बाधा नहीं देते हैं।

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥ १० ॥

२४ सूक्त

३ अनुवाक । इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थै र्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥१॥
ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् । २ ।
अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन् प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥

---

१० सोमाभिषव होनेपर हव्यरूप धनवाले और यजमानके ईश्वर इन्द्र स्तोताके सन्मार्ग-प्रदर्शक और वरणीय धन-प्रदाता जैसे हों, वैसा ही जानकर भरद्वाज ऋषिने स्तुति की ।

१ सोमवान् यज्ञमें इन्द्रका सोमपान-जनित हर्ष यजमानकी कामनाओंका पूरक हो और वेदिकोपासना-सहित स्तोत्र अभिलाष-वर्षक हो । अभिषुत सोमरस पान करनेवाले, नीरस सोमका भी त्याग नहीं करनेवाले धनवान् इन्द्र स्तुतिकारकोंकी स्तुतियों द्वारा अर्चनीय होते हैं । द्युलोक-निवासी और स्तुतिओंके अधिपति इन्द्र रक्षक होते हैं ।

२ शत्रुओंके हिंसक, विक्रमवान्, मनुष्योंके हितकर्त्ता, विवेकशील, हमलोगोंके स्तोत्रको सुननेवाले स्तोताओंके अतिशय रक्षक, गृहप्रदाता, स्तोताओं द्वारा प्रशंसनीय, स्तोताओंके धारक यज्ञमें स्तूयमान होनेपर हमलोगोंको अन्न प्रदान करते हैं ।

३ हे विक्रान्त इन्द्र, चक्रद्वयके अक्षकी तरह (रथ-सम्बन्धी अक्ष जैसे पहियोंसे बाहर हो जाता है) तुम्हारी बृहत् महिमा द्यावापृथिवीको अतिक्रान्त करती है । हे बहुजनाहूत, वृक्षकी शाखाओंकी तरह तुम्हारा रक्षण-कार्य वर्द्धमान होता है ।

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४॥
अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥५॥
वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६॥
न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥
न वीलवे नमते न स्थिराय न शर्द्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥८॥

---

४ हे बहुकर्मा इन्द्र, तुम प्रज्ञावान् हो। तुम्हारी शक्तियाँ (अथवा कर्म) उसी तरहसे सर्वत्र विचरण करती हैं, जैसे धेनुओंके मार्ग सर्वत्र सञ्चारी होते हैं। हे शोभन दानवाले इन्द्र, बछड़ोंकी डोरियोंकी तरह तुम्हारी शक्तियाँ स्वयम् अनिरुद्ध होकर बहुत शत्रुओंको बन्धनयुक्त करती हैं।

५ इन्द्र आज एक कर्म करते हैं, तो दूसरे दिन इससे कुछ विलक्षण ही कार्य करते हैं। वे पुनः-पुनः सत् और असत् कार्योंका अनुष्ठान करते हैं। इन्द्र, मित्र, वरुण, पूषा, सविता इस यज्ञमें हम लोगोंकी कामनाओंके पूरक हों।

६ हे इन्द्र, तुम्हारे समीपसे शस्त्र और हविके द्वारा स्तोता लोग कामनाओंको प्राप्त करते हैं, जैसे पर्वतके उपरिभागसे जल प्राप्त होता है। हे स्तुतियों द्वारा वन्दनीय इन्द्र, अश्वगण जैसे वेगपूर्वक संग्राममें उपस्थित होते हैं, वैसे ही स्तुति करनेवाले अन्नाभिलाषी भरद्वाज आदि स्तुतियोंके साथ तुम्हारे निकट गमन करते हैं।

७ संवत्सर और मास आदि जिस इन्द्रको वृद्ध नहीं बना सकते हैं; दिवस जिस इन्द्रको अल्प (दुर्बल) नहीं बना सकते हैं, उस प्रवृद्धमान इन्द्रका शरीर हम लोगोंकी स्तुतियों और स्तोत्रों द्वारा स्तूयमान होकर प्रवृद्ध हो।

८ हम लोगोंकी स्तुति द्वारा स्तूयमान इन्द्र दृढ़गात्र, संग्राममें अविचलित और दस्युओं (कर्म-विवर्जितों) द्वारा उत्साहित तथा प्रेरित यजमानके वशीभूत नहीं होते हैं। अर्थात् यद्यपि स्तोता बहुत गुणवाले हैं, तथापि इन्द्र दस्यु-सहित स्तोताके वशीभूत नहीं होते हैं। महान् पर्वत भी इन्द्रके लिये सुगम हैं और अगाध स्थान भी इन्द्रके लिये विषयीभूत हैं।

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥९॥
सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥

----

२५ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥१॥
आभिः स्पृधोमिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥२॥

---

९ हे बलवान् और सोमपानकर्त्ता इन्द्र, तुम किसीके द्वारा भी अनवगाहनीय उदार चित्तसे हम लोगोंको अन्न और बल प्रदान करो। हे इन्द्र, तुम दिन-रात हम लोगोंकी रक्षाके लिये तत्पर रहो।

१० हे इन्द्र, तुम संग्राममें स्तुति-कर्त्ताकी रक्षाके लिये उनका सेवन करो। निकटस्थ या दूरस्थ शत्रुओंसे उनकी रक्षा करो। गृहमें अथवा काननमें रिपुओंसे उनकी रक्षा करो। शोभन पुत्रवाले होकर हम लोग सौ वर्षोंतक प्रमुदित हों।

१ हे बलवान् इन्द्र, तुम संग्राममें हम लोगोंका, अधम, उत्तम और मध्यम सब प्रकारकी रक्षा द्वारा, भली भाँतिसे, पालन करो। हे भीषण इन्द्र, तुम महान् हो। तुम हम लोगोंको भोज्य साधन अन्नोंसे युक्त करो।

२ हे इन्द्र, तुम हमारी स्तुतियोंसे शत्रुसेनाओंको नष्टकरनेवाली हमारी सेनाकी रक्षा करते हुए संग्राममें विद्यमान शत्रुके कोपको नष्ट करो। यज्ञादि कार्य करनेवाले यजमानके लिये तुम कार्योंको विनष्ट करनेवाली सम्पूर्ण प्रजाओंको स्तुतियों द्वारा विनष्ट करो।

इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुहि पराचः ॥३॥
शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥४॥
नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र न किष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥५॥
स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥६॥
अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥७॥

---

३ हे इन्द्र, ज्ञातिरूप निकटस्थ अथवा दूर देशस्थित जो शत्रु हमारे अभिमुखीन होकर हिंसाके लिये उद्यत होते हैं, उन दोनों प्रकारके शत्रुओंके बलको तुम नष्ट करो। इनके वीर्योंको नष्ट करो और इन्हें पराङ्मुख करो।

४ हे इन्द्र, तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत शूर अपने शरीरसे शत्रु वीरोंको विनष्ट करता है। जब कि, वे दोनों परस्पर विरोधी, शोभमान शरीरसे संग्राममें प्रवृत्त होते हैं। जब कि, वे पुत्र, पौत्र, धेनु, जल और उर्वरा (उपजाऊ भूमिके) लिये हल्ला मचाते हुए विवाद करते हैं।

५ हे इन्द्र, विक्रान्त जन, शत्रुनिहन्ता, विजयी और युद्धमें प्रकुपित योद्धा तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें समर्थ नहीं होता है। हे इन्द्र, इनके मध्यमें कोई भी तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। तुम इन व्यक्तियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हो।

६ महान् शत्रुओंका निरोध करनेके लिये अथवा परिचारकोंसे युक्त गृहके लिये जो दो व्यक्ति परस्पर युद्ध करते हैं, उन दोनोंके मध्यमें वही जन, धन लाभ करता है, जिसके यज्ञमें ऋत्विक् लोग इन्द्रको हवन करते हैं।

७ हे इन्द्र, तुम्हारे पुरुष [स्तोता] जब कम्पित हों, तब तुम उनके पालक होओ। उनके रक्षक होओ। हे इन्द्र, हमारे जो नेतृतम पुरुष तुम्हें प्राप्त करनेवाले होते हैं, तुम उनके त्राता होओ। हे इन्द्र, जिन स्तोताओंने हमें पुरोभागमें स्थापित किया है, तुम उनके त्राता होओ।

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥८॥
एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥९॥

२६ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥१॥
त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥२॥

८ हे इन्द्र, तुम महान् हो। शत्रुवधके लिये तुममें समस्त शक्ति अर्पित हुई है। हे यजनीय इन्द्र, युद्धमें समस्त देवोंने तुम्हें शत्रुओंका अभिभूत करनेवाला बल और विश्वधारक बल प्रदान किया था।

९ हे इन्द्र, इस प्रकारसे स्तुत होकर तुम संग्राममें हमलोगोंको शत्रुओंको मारनेके लिये प्रोत्साहित करो और प्रेरित करो। तुम हमलोगोंके लिये हिंसा करनेवाली असुर-सेनाको वशीभूत करो। हे इन्द्र, तुम्हारी स्तुति करनेवाले हम भरद्वाज अन्नके साथ अवश्य ही निवास प्राप्त करें।

---

१ हे इन्द्र, हम स्तोता लोग अन्न लाभ करनेके लिये सोमरसके द्वारा तुम्हारा सिंचन करते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम हम लोगोंके आह्वानका श्रवण करो जब मनुष्य-गण युद्धके लिये गमन करेंगे, तब तुम हम लोगोंकी भली भाँतिसे रक्षा करना।

२ हे इन्द्र, सबके द्वारा प्रार्थनीय और महान् अन्न लाभ करनेके लिये वाजिनी-पुत्र भरद्वाज अन्नवान् होकर तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे इन्द्र तुम सज्जनोंके पालक और दुर्जनोंके विघातक हो। उपद्रुत होनेपर भरद्वाज तुम्हारा आह्वान् करते हैं। वे मुष्टिबल द्वारा शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले हैं। जब वे गौओंके लिये युद्ध करते हैं, तब तुम्हारे ऊपर निर्भर रहते हैं।

त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥३॥
त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥४॥
त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५॥
त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥६॥
अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥७॥

३ हे इन्द्र, अन्नलाभ करनेके लिये तुम भार्गव ऋषि को प्रेरित करो। हव्यदाता कुत्सके लिये तुमने शुष्णासुरका छेदन किया था। तुमने अतिथिग्व [दिवोदास] को सुखी करनेके लिये शम्बरासुरका शिरच्छेदन किया था। वह अपनेको मर्महीन [दुर्भेद्य] समझता था।

४ हे इन्द्र, तुमने वृषभ नामक राजाको युद्धसाधन महान् रथ प्रदान किया था। जब वे शत्रुओंके साथ दस दिनोंतक युद्ध कर रहे थे, तब तुमने उनकी रक्षा की थी। वेतसु * राजाके सहायभूत होकर तुमने तुग्रासुरको मारा था। तुमने स्तवकर्ता तुजि राजाकी समृद्धिको बढ़ाया था।

५ हे इन्द्र, तुम शत्रु निहन्ता हो। तुमने प्रशंसनीय कार्योंका सम्पादन किया है; क्योंकि हे वीर इन्द्र, तुमने शत-शत और सहस्र-सहस्र शम्बर-सेनाओंको विदीर्ण किया है। तुमने पर्वतसे निर्गत, यज्ञादि कार्योंके विघातक शम्बरासुरका वध किया है। विचित्र रक्षा द्वारा तुमने दिवोदासकी रक्षा की है।

६ हे इन्द्र, श्रद्धापूर्वक अनुष्ठित कार्यों द्वारा और सोमरस द्वारा मोदमान होकर तुमने दभीति राजाके लिये चुमुरि नामक असुरका वध किया था। हे इन्द्र, तुमने पिठीनसको रजि नामक कन्या या राज्य प्रदान किया था। तुमने बुद्धिसे साठ हजार योद्धाओंको एक कालमें ही विनष्ट किया था।

७ हे वीरोंके साथी बलवत्तम इन्द्र, तुम त्रिभुवनोंके रक्षक और शत्रुविजयी हो। स्तोता लोग तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख और बलकी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र, हम भरद्वाज तुम्हारे द्वारा प्रदत्त उत्कृष्ट सुख और बलको अपने स्तोताओंके साथ प्राप्त करें।

* वेतसु नामका कोई असुर भी था। ऐसी जगह ऐसा अर्थ करना चाहिये—वेतसुके साथ तुग्रासुरको मारा था।—सायण

वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घनेवृत्राणां सनये धनानाम् ॥८॥

२७ सूक्त

इन्द्र देवता, किन्तु अष्टम ऋचाके दान देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥१॥
सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥२॥
न हि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियन्ते ॥३॥

८ हे पूजनीय इन्द्र, हम लोग तुम्हारे मित्रभूत और स्तोता हैं। धनलाभार्थ किये गये इन स्तोत्रों द्वारा हमलोग तुम्हारे निरतिशय प्रीतिभाजन हों। प्रातर्दनके पुत्र हमारे राजा क्षत्रश्री शत्रुओंका वध और धन लाभ करके सबसे उत्कृष्ट हों।

१ सोमरससे प्रसन्न होकर इन्द्रने क्या किया? इस सोमरसका पान करके क्या किया? इस सोमरसके साथ मैत्री करके उन्होंने क्या किया? पुरातन और आधुनिक स्तोताओंने सोमगृहमें तुमसे क्या प्राप्त किया?

२ सोमपानसे प्रमुदित होकर इन्द्रने सुन्दर (सोभन) कार्योंको किया था। सोमपान करके उन्होंने सुन्दर कर्म किया था। इसके साथ उन्होंने शुभ कार्य किया था। हे इन्द्र, पुरातन तथा इदानींन्तन स्तोताओंने सोमगृहमें तुमसे शुभ कर्मको प्राप्त किया है।

३ हे धनवान् इन्द्र, तुम्हारे तुल्य दूसरेकी महिमा हमें अवगत नहीं है। तुम्हारे तुल्य धनिकत्व और धन भी हमें अवगत नहीं। हे इन्द्र, तुम्हारी तरह सामर्थ्य कोई भी नहीं दिखा सकता है।

एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥४॥
वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥५॥
त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥६॥
यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥७॥
द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥८॥

४ हे इन्द्र, तुमने जिस वीर्य द्वारा वरशिख नामक असुरके पुत्रोंका संहार किया था, तुम्हारा वह वीर्य हम लोगोंके द्वारा अवगत नहीं है। हे इन्द्र, बल-पूर्वक निक्षिप्त तुम्हारे वज्रके शब्दसे ही बलिष्ठतम वरशिखके पुत्र विदीर्ण हुए थे।

५ इन्द्रने चायमान राजाके अभ्यवर्ती नामक पुत्रको अभिलषित धन देते हुए वरशिख नामक असुरके पुत्रोंका संहार किया था। हरियूपिया नामक नदी या नगरीके पूर्व भागमें अवस्थित वरशिखके गोत्रोत्पन्न वृचीवान्‌के पुत्रोंका इन्द्रने वध किया था। तब अपर भागमें अवस्थित वरशिखके श्रेष्ठ पुत्र भयसे विदीर्ण हुए थे।

६ हे बहुजनाहूत इन्द्र, युद्धमें तुम्हें जीत (मार) कर अन्न अथवा यश प्राप्त करें ऐसी कामना करनेवाले, यज्ञपात्रोंका भञ्जन करनेवाले और कवच धारण करनेवाले वरशिखके एक सौ तीस पुत्र यव्यावती (हरियूपिया) के निकट आगमन करके एक कालमें ही विनष्ट हुए थे।

७ जिनके रोचमान, शोभन तृणाभिलाषी पुनः-पुनः घासका आस्वादन करनेवाले अश्वगण द्यावापृथिवीके मध्यभागमें विचरण करते हैं। वे इन्द्र सृञ्जय नामक राजाके निकट तुर्वश (राजा) को समर्पित करते हैं और देववाक-वंशोत्पन्न अभ्यवर्ती राजाके निकट वरशिखके पुत्रोंको वशीभूत किया था।

८ हे अग्नि, अतिशय धन देनेवाले और राजसूय यज्ञ करनेवाले चयमानके पुत्र राजा अभ्यवर्तीने हमें (भरद्वाजको) स्त्रियोंसे युक्त रथ और बीस गौएं दी थीं। पृथुके वंशधर राजा अभ्यवर्तीकी यह दक्षिणा किसीके भी द्वारा अविनाशनीय है।

२८ सूक्त

गो देवता, किन्तु द्वितीय तथा अष्टम ऋचाके कुछ अंशका इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१॥
इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२॥
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३॥
न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४॥

---

१ गौएँ हमारे घर आवें और हमारा कल्याण करें। वे हमारे गोष्ठमें उपवेशन करें और हमारे ऊपर प्रसन्न हों। इस गोष्ठमें नाना वर्णशाली गौएँ सन्ततिसम्पन्न होकर उषाकालमें इन्द्रके लिये दुग्ध प्रदान करें।

२ इन्द्र यज्ञ करनेवाले और स्तुति करनेवालेको अपेक्षित धन प्रदान करते हैं। वे उन्हें सर्वदा धन प्रदान करते हैं। और उनके स्वकीय धनको कभी भी नहीं लेते हैं। वे निरन्तर उनके धनको बढ़ाते हैं और उन इन्द्राभिलाषीको शत्रुओंके द्वारा दुर्भेद्य स्थानमें स्थापित करते हैं।

३ गौएँ हमारे समीपसे नष्ट नहीं हों। चोर हमारी गौओंको नहीं चुरावें। शत्रुओंका शस्त्र हमारी गौओंपर पतित नहीं हों। गोस्वामी यजमान जिन गौओंसे इन्द्रादिका यजन करते हैं और जिन गौओंको इन्द्रके लिये प्रदान करते हैं उन गौओंके साथ वे चिर कालतक सङ्गत हों।

४ रेणुओंके उद्भेदक और युद्धार्थ आगमन करनेवाले अश्व उन्हें (गौओंको) नहीं प्राप्त करें। वे गौएँ विशसनादि संस्कारको नहीं प्राप्त करें। यागशील मनुष्यकी गौएँ निर्भय और स्वाधीन भावसे विचरण करती हैं।

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनासा चिदिन्द्रम् ॥५॥
यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥६॥
प्रजावतीः सुयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥७॥
उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥८॥

५ गाएँ हमारे लिये धन हों। इन्द्र हमें गौएँ प्रदान करें। गौएँ हव्य-श्रेष्ठ सोमरसका भक्षण प्रदान करें। ⊛ हे मनुष्यो, ये गौएँ हो इन्द्र होता हैं, श्रद्धायुक्त मनसे हम जिनकी कामना करते हैं।

६ हे गौओ, तुम हमें पुष्ट करो। तुम क्षीण और अमङ्गल अङ्गको सुन्दर बनाओ हे कल्याण-युक्त वचनवाली गौओ, हमारे घरको कल्याणयुक्त करो अर्थात् गौओंसे युक्त करो। हे गौओ, याग-सभामें तुम्हारा महान् अन्न ही कीर्तित होता है।

७ हे गौओ, तुम सन्तानयुक्त होओ। शोभन तृणका भक्षण करो और सुखसे प्राप्त करने योग्य तड़ागादिका निर्मल जल पान करो। तुम्हारा शासक चोर नहीं हो और व्याघ्रादि तुम्हारा ईश्वर नहीं हो अर्थात् हिंसक जन्तु तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करे। कालात्मक परमेश्वरका आयुध तुमसे दूर रहे।

८ हे इन्द्र, तुम्हारे बलाधानके निमित्त गौओंकी पुष्टि प्रार्थित हो एवम् गौओंके गर्भाधानकारी वृषभोंका बल प्रार्थित हो अर्थात् गौओंके पुष्ट (सन्तुष्ट) होनेपर तत्सम्बन्धी क्षीरादि द्वारा इन्द्र आप्यायित (सन्तुष्ट) होते हैं।

⊛ सोमरसमें आज्यादि गव्य मिलाया जाता है। —सायण।

षष्ठ अध्याय समाप्त

सप्तम अध्याय

२९ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१॥
आ यस्मिन् हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥२॥
श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥३॥
स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन् पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४॥

---

१ हे यजमानो, तुम्हारे नेतृ-स्वरूप ऋत्विक् लोग सखि-भावसे इन्द्रकी परिचर्या करते हैं। वे महान् स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं और उनकी बुद्धि शोभन तथा अनुग्रहात्मिका है; क्योंकि वज्रपाणि इन्द्र महान् धन प्रदान करते हैं; इसलिये रमणीय और महान् इन्द्रकी पूजा रक्षाके लिये करो।

२ जिस इन्द्रके हाथमें मनुष्योंके हितकर धन सञ्चित हैं, जो रथपर चढ़नेवाले इन्द्र सुवर्णमय रथपर आरूढ़ होते हैं, जिनके विशाल बाहुओंमें रश्मियाँ नियमित हैं, जिन इन्द्रको सेचन करनेवाले (बलिष्ठ) और रथमें युक्त अश्वगण वहन करते हैं, हम उन इन्द्रका स्तवन करते हैं।

३ हे इन्द्र, ऐश्वर्यलाभके लिये भरद्वाज तुम्हारे चरणोंमें परिचरण समर्पित करते हैं। तुम बलद्वारा शत्रुओंको पराजित करते हो, वज्र धारण करते हो और स्तोताओंको धन देनेवाले हो। हे नेता इन्द्र, तुम सबके दर्शनार्थ प्रशस्त और सतत-गमनशील रूप धारण करके सूर्यकी तरह परिभ्रमणशील होते हो।

४ सोमके अभिषुत होनेपर वह भली भाँति मिश्रित हुआ है, जिसके अभिषुत होनेपर पाकयोग्य पुरोडाशादि पकाया जाता है। भुने जौ हविके लिये संस्कृत होते हैं। हविर्लक्षण अन्नके कर्ता ऋत्विक् लोग स्तोत्रोंके द्वारा इन्द्रका स्तवन करते हैं। शस्त्रोंका उच्चारण करते हुए वे देवताके निकटस्थ होते हैं।

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५॥
एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६॥

३० सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥
अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥२॥

---

५ हे इन्द्र, तुम्हारे बलका अवसान नहीं है अर्थात् तुम्हारे बलका हमलोग नहीं जानते। द्यावा-पृथिवी जिस महान बलसे भीत होती है, गोपालक जैसे जल द्वारा गौओंको तृप्त करता है, उसी प्रकार स्तोता शीघ्र ही तृप्तिकारक हव्य द्वारा भली भाँति यज्ञ करके तुम्हें तृप्त करते हैं।

६ हरित नासावाले महेन्द्र इस प्रकारसे सुखपूर्वक आह्वान करनेके योग्य होते हैं इन्द्र स्वयं उपस्थित अथवा अनुपस्थित हों; किन्तु स्तोताओंको धन प्रदान करते हैं। इस प्रकारसे प्रादुर्भूत होकर उत्कृष्टतर बलवाले इन्द्र बहुतेरे वृत्रादि राक्षसोंको तथा शत्रुओंको मारते हैं।

---

१ वृत्रवधादि वीरकार्य करनेके लिये इन्द्र पुनः प्रवृद्ध हुए हैं। मुख्य (श्रेष्ठ) और जरारहित इन्द्र स्तोताओंको धन प्रदान करें। इन्द्र द्यावापृथिवीका अतिक्रमण करते हैं। इन्द्रका आधा भाग ही द्यावा-पृथिवीके बराबर है अर्थात् प्रतिनिधि है।

२ अभी हम इन्द्रके बलका स्तवन करते हैं। वह बल असुरोंके हननमें कुशल है। इन्द्र जिन कर्मोंको धारण करते हैं, उनकी हिंसा कोई भी नहीं करता। वे प्रतिदिन वृत्रावृत सूर्यको दर्शनीय बनाते हैं। शोभन कर्म करनेवाले इन्द्रने भुवनोंको विस्तीर्ण किया है।

अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृह्ळानि सुक्रतो रजांसि ॥३॥
सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥४॥
त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन्द्यामुषासम् ॥५॥

३१ सूक्त

इन्द्र देवता। सुहोत्र ऋषि शक्करी और त्रिष्टुप् छन्द ।

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ।

३ हे इन्द्र, पहलेकी तरह आज भी तुम्हारा नदी-सम्बन्धक कार्य विद्यमान है। नदियोंके बहनेके लिये तुमने मार्ग बनाया है। भोजनार्थ उपविष्ट मनुष्योंकी तरह पर्वतगण तुम्हारी आज्ञासे निश्चल भावसे उपविष्ट हैं। हे शोभन कर्म करनेवाले इन्द्र, सम्पूर्ण लोक तुम्हारे द्वारा स्थिर हुए हैं।

४ हे इन्द्र, तुम्हारे सदृश अन्य देव नहीं है, यह एकदम सत्य है। तुम्हारे सदृश कोई दूसरा मनुष्य भी नहीं है। तुमसे अधिक न कोई देव है, न मनुष्य, यह जो कहा जाता है, सो एकदम सत्य है। वारिराशिको आवृत करके सोनेवाले मेघको तुमने बध किया था। वारिराशिको समुद्रमें पतित होनेके लिये तुमने मुक्त किया था।

५ हे इन्द्र, वृत्रसे आवृत जलको स्वयं प्रवाहित होनेके लिये तुमने मुक्त किया था। तुमने मेघके दृढ़ बन्धनको छिन्न किया था। तुम सूर्य द्युलोक और उषाको एक कालमें ही प्रकाशित करके जगत्-सम्बन्धी प्रजाओंके राजा हुओ।

१ हे धनके पालक इन्द्र, तुम धनके प्रधान स्वामी हो। हे इन्द्र, तुम अपने बाहुद्वयमें प्रजाओंको धारण करते हो अर्थात् सम्पूर्ण जगत् तुम्हारी आज्ञाका अनुवर्ती है। मनुष्यगण विविध प्रकारसे तुम्हारा स्तवन, पुत्र, शत्रु विजयी पौत्र और वृष्टिके लिये करते हैं।

त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृह्लं भयते अज्मन्नाते ॥२॥
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥३॥
त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्था प्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय
सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥
स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक् प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥५॥

---

२ हे इन्द्र, तुम्हारे भयसे व्यापक और अन्तरिक्षोद्भव उदक पतनयोग्य नहीं होनेपर भी मेघ द्वारा बरसाये जाते हैं। हे इन्द्र, तुम्हारे आगमनसे द्यावापृथिवी, पर्वत, वृक्ष और सम्पूर्ण स्थावर प्राणिजात भीत होते हैं।

३ हे इन्द्र कुत्सके साथ प्रबल शुष्णके विरुद्ध तुमने युद्ध किया था अर्थात् कुत्सके साहाय्यार्थ तुमने शुष्णके साथ युद्ध किया था। संग्राममें तुमने कुयवका बध किया था। संग्राममें तुमने सूर्यके रथ-चक्रका हरण किया था। तबसे सूर्यका रथ एक चक्रका हो गया है पापकारी राक्षसोंको तुमने मारा था। *

४ हे इन्द्र, तुमने दस्यु शम्बरासुरके सौ नगरोंको उच्छिन्न किया था। हे प्रज्ञावान् तथा अभिषुत सोम द्वारा क्रीत इन्द्र, उस समय तुमने सोमाभिषव करनेवाले दिवोदासको प्रज्ञापूर्वक धन प्रदान किया था तथा स्तुति करनेवाले भरद्वाजको धन प्रदान किया था।

५ हे अबध्य भटवाले तथा विपुल धनवाले इन्द्र, तुम महान् संग्रामके लिये अपने भयङ्कर रथपर आरोहण करो। हे प्रकृष्ट मार्गवाले इन्द्र, तुम रक्षाके साथ हमारे अभिमुख आगमन करो। हे विख्यात इन्द्र, प्रजाओंके मध्यमें हमें प्रख्यात करो।

---

* जब एतश ऋषिका सूर्यके साथ युद्ध हुआ था, तब सहायताके लिये गये हुए इन्द्रने सूर्यके रथका एक चक्र ले लिया था—सायण

३२ सूक्त

इन्द्र देवता। सुहोत्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥१॥

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥२॥

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुराज कविभिः कविः सन् ॥३॥

स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥४॥

स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट्।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥५॥

---

१ हमने महान्, विविध शत्रुओंको मारनेवाले, बलवान्, वेगसम्पन्न, विशेष प्रकारसे स्तुति-योग्य, वज्रधारी और प्रवृद्ध इन्द्रके लिये, मुख द्वारा, अपूर्व, सुविस्तीर्ण और सुखदायक स्तोत्रोंको रचा है।

२ इन्द्रने मेधावी अङ्गिराओंके लिये जननीस्वरूप स्वर्ग और पृथिवीको सूर्य द्वारा प्रकाशित किया था एवम् अङ्गिराओं द्वारा स्तूयमान होकर पर्वतोंको चूर्ण किया था। इन्द्रने शोभन ध्यानशील स्तोता अङ्गिराओं द्वारा बारम्बार प्रार्थित होनेपर धेनुओंके बन्धनको मुक्त किया था।

३ बहुत कर्म करनेवाले इन्द्रने हवन करनेवाले, स्तुति करनेवाले और सङ्कुचित-जानु अङ्गिराओंके साथ मिलित होकर धेनुओंके लिये शत्रुओंको पराजित किया था। मित्रभूत, मेधावी अङ्गिराओंके साथ मित्राभिलाषी और दूरदर्शी होकर इन्द्रने असुरपुरियोंको भग्न किया था।

४ हे कामनाओंके पूरक, हे स्तुति द्वारा सम्भजनीय इन्द्र, तुम महान् अन्न, महान् बल और बहुत वत्सवती युवती वडवाके साथ आकर स्तुतिकर्ताको मनुष्योंके मध्यमें सुखी करनेके लिये उनके अभिमुख आगमन करते हो।

५ हिंसकोंके अभिभवकर्ता इन्द्र सदा उद्यत बल द्वारा सतत गमनशील तेजसे युक्त होकर सूर्यके दक्षिणायन होनेपर जलको मुक्त करते हैं। इस प्रकार विसृष्ट वारिराशि उस क्षोभशून्य समुद्रमें प्रतिदिन पतित होती है, जिससे वारिराशिका पुनः प्रत्यावर्तन नहीं होता।

३३ सूक्त

इन्द्र देवता। शुनहोत्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान्।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥१॥
त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ।
त्वं विप्रेभिर्विपणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥२॥
त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥३॥
स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४॥
नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥५॥

१ हे अभीष्टवर्षक इन्द्र, तुम हमलोगोंको बलवत्तम, स्तुतियों द्वारा स्तवनकर्ता, शोभन यज्ञ-कर्ता और हव्य प्रदान करनेवाला एक पुत्र प्रदान करो। वह पुत्र उत्कृष्ट अश्वपर आरूढ़ होकर संग्राममें शोभन अश्वों और प्रतिकूलताचारी शत्रुओंको पराभूत करे।

२ हे इन्द्र, विविध-स्तुति रूप वचनवाले मनुष्यगण, युद्धमें रक्षाके लिये, तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुमने मेधावी अङ्गिराओंके साथ पणियोंका संहार किया था। तुम्हारा संभजन करनेवाला पुरुष तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर अन्न लाभ करता है।

३ हे शूर इन्द्र, तुम दस्युओं अथवा आर्यों दोनों प्रकारके शत्रुओंका संहार करते हो। हे नेतृश्रेष्ठ, जैसे काष्ठ छेदक कुठारादिसे वृक्षोंको छिन्न कर देता है उसी प्रकार तुम संग्राममें भली भाँति प्रयुक्त अस्त्रों द्वारा शत्रुओंका विदारण करते हो।

४ हे इन्द्र, तुम सर्वत्र गमन करने वाले हो। तुम श्रेष्ठ रक्षाके द्वारा हमलोगोंकी समृद्धिके वर्द्धक, तथा मित्र होओ। कुछ पुरुषोंसे युक्त संग्राममें युद्ध करनेवाले हम लोग धन लाभके लिये तुम्हारा आह्वान करते हैं।

५ हे इन्द्र, इस समयमें तथा दूसरे समयमें तुम निश्चय ही हमारे होओ। हमलोगोंकी अवस्थाके अनुसार सुख-प्रदाता होओ इस प्रकारसे स्तुति करनेवाले हम लोग गौओंके संभजन करनेवाले होकर तुम्हारे सम्बन्धी द्योतमान सुखमें अवस्थान करें तुम महान् हो।

* यज्ञादि कर्मके विरोधी बल प्रभृति असुर और कर्मानुष्ठानकारी, किन्तु आवरक वृत्रादि।

३४ सूक्त

इन्द्र देवता। शुनहोत्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥१॥
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः।
रथो न महे शवसे युजानोऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत ॥२॥
न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥३॥
अस्मा एतद्दिव्यर्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥४॥
अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५॥

---

१ हे इन्द्र, तुममें असङ्ख्य स्तोत्र संगत होते हैं। तुमसे स्तोताओंकी पर्याप्त प्रशंसा निर्गत होती है। पूर्व कालमें और इस समयमें भी ऋषियोंको स्तोत्र, उपासना और मन्त्र, इन्द्रकी पूजाके विषयमें, परस्पर स्पर्द्धा करते हैं।

२ हमलोग सर्वदा इन्द्रको प्रसन्न करते हैं। वे बहुजनाहूत, बहुतोंके द्वारा प्रबोधित, महान्, अद्वितीय एवम् यजमानों द्वारा भली भाँति स्तुत हैं। हमलोग महान् लाभ करनेके लिये रथकी तरह इन्द्रके प्रति अनुरक्त होकर सर्वदा उनका स्तवन करें।

३ समृद्धि-विधायक स्तोत्र इन्द्रके अभिमुख गमन करें। कर्म और स्तुतियां इन्द्रको बाधित नहीं करतीं। * शत-सहस्र-स्तव-कारी स्तुतिभाजन इन्द्रको स्तुति करके प्रीति उत्पन्न करते हैं।

४ इस यज्ञ-दिनमें स्तोत्रकी तरह पूजाके साथ प्रदत्त होनेके लिये इन्द्रके निमित्त मिश्रित सोमरस प्रस्तुत हुआ है। मरुदेशके अभिमुख गमन करनेवाला जल जिस प्रकार प्राणियोंका पोषण करता है, उसी प्रकार हव्यके साथ स्तोत्र उन्हें वर्द्धित करें।

५ सर्वत्र गन्ता इन्द्र महान् संग्राममें हम लोगोंके रक्षक और समृद्धि विधायक जिससे हों; अतः स्तोताओंका स्तोत्र आग्रहके साथ इन्द्रके प्रति उक्त होता है।

---

* दरिद्र व्यक्ति धन देनेमें असमर्थ होनेके कारण स्तुतिकारसे खिन्न हो जाता है; परन्तु इन्द्र स्तुतियोंसे खिन्न नहीं होते सबको धन देते हैं। —सायण

३५ सूक्त

इन्द्र देवता । नर ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१॥
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥२॥
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥३॥
स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥४॥
तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५॥

१ हे इन्द्र, तुम रथाधिरूढ़के निकट हमारे स्तोत्र कब उपस्थित होंगे? कब तुम मुझ स्तोत्र करनेवालेको सहस्र पुरुषोंके पोषक गोसमूह या पुत्र प्रदान करोगे? कब तुम मुझ स्तोताके स्तोत्रको धन द्वारा पुरस्कृत करोगे? कब तुम अग्नि-होत्रादि कार्यको अन्नसे रमणीय बनाओगे?

२ हे इन्द्र, कब तुम हमारे पुरुषोंके साथ शत्रुओंके पुरुषोंको तथा हमारे पुत्रोंके साथ शत्रुओंके पुत्रोंको मिलित कराओगे? (युद्धमें इस तरहका संश्लेषण कब होगा?) हमारे लिये तुम कब संग्राम में जय प्राप्त करोगे? कब तुम गमनशील शत्रुओंसे क्षीर, दधि और घृतादि धारण करनेवाली गौओंको जीतोगे? हे इन्द्र, कब तुम हम लोगोंको व्याप्त धन प्रदान करोगे?

३ हे बलवत्तम इन्द्र, कब तुम स्तोताको विविध अन्न प्रदान करोगे? कब तुम अपनेमें यज्ञ और स्तोत्रको युक्त करोगे? कब तुम स्तोत्रोंको गोदायक करोगे?

४ हे इन्द्र, तुम गोदायक, अश्वों द्वारा आह्लादित करनेवाला और बल द्वारा प्रसिद्ध अन्न हम स्तुति करनेवाले भरद्वाज-पुत्रोंको प्रदान करो। तुम अन्नोंको तथा सुगमतासे दोहन योग्य गौओंको परिपुष्ट करो। वे गौएँ जिससे शोभन दीप्तिवाली हों, वैसा तुम करो।

५ हे इन्द्र, तुम हमारे शत्रुको अन्य प्रकारसे (जीवनके विपरीत अर्थात् मरण पथसे) युक्त करो हे इन्द्र, तुम शक्तिमान्, धीर और शत्रु निहन्ता हो, इस प्रकारसे हम लोग तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे इन्द्र, तुम विशुद्ध वस्तुओंके प्रदानक हो। हम तुम्हारे स्तोत्रके उच्चारण करनेमें विरत नहीं हों। हे प्राज्ञ इन्द्र, तुम अङ्गिराओंको अन्न द्वारा तृप्त (प्रसन्न) करो।

३६ सूक्त

इन्द्र देवता । नर ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असूयम् ॥१॥
अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥२॥
तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥३॥
स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४॥
स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥५॥

---

१ हे इन्द्र, तुम्हारा सोमपान जनित हर्ष निश्चय ही सब लोगोंके लिये हितकर होता है । त्रिभुवनमें अवस्थित तुम्हारा धनसमूह सचमुच सब लोगोंके लिये हितकर है । तुम सचमुच अन्नदाता हो । देवोंके मध्यमें तुम बल धारण करते हो ।

२ यजमान विशेष प्रकारसे इन्द्रके बलकी पूजा करते हैं । वीरत्व प्राप्तिके लिये अथवा वीर कर्म करनेके लिये यजमान इन्द्रको पुरोभागमें धारण करते हैं । अविच्छिन्न शत्रु-श्रेणीके निरोधकर्ता, हिंसाकारी और आक्रमणकारी इन्द्र वृत्र (शत्रु) का संहार करेंगे; अतः यजमान उनकी परिचर्या करते हैं ।

३ संगत होकर मरुद्गण इन्द्रका सेवन करते हैं एवम् वीर्य, बल और रथमें नियोज्यमान अश्व भी इन्द्रका सेवन करते हैं । नदियाँ जिस प्रकार समुद्रमें प्रविष्ट होती हैं, उसी प्रकार उपासना (उक्थ, शस्त्र) रूप बलवाली स्तुतियाँ विश्वव्यापी इन्द्रके साथ संगत होती हैं ।

४ हे इन्द्र, स्तूयमान होनेपर तुम बहुतोंके अन्नदायक और गृहप्रदायक धनकी धाराको प्रवाहित करो । तुम सम्पूर्ण प्राणीके उत्कृष्ट अधिपति और सम्पूर्ण भूतजातके असाधारण अधीश्वर हो ।

५ हे इन्द्र, तुम श्रोतव्य स्तोत्रोंको शीघ्र सुनो । हमलोगोंकी परिचर्याकी कामना करके सूर्यकी तरह शत्रुओंके धनको जीतो । तुम बलसम्पन्न हो । प्रत्येक कालमें स्तूयमान और हव्य रूप अन्न द्वारा भली भाँतिसे ज्ञायमान होकर हमारे निकट पहलेकी ही तरह (असाधारण) रहो ।

३७ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥१॥
प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥२॥
आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥३॥
वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥४॥
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥५॥

१ हे उद्गतायुध इन्द्र, तुम्हारे रथमें युक्त अश्व हमारे सम्मुख तुम्हारे विश्ववन्दनीय रथको लावें। गुणवान् स्तोता भरद्वाज ऋषि तुम्हारा आह्वान करते हैं। अभी तुम्हारे साथ हृष्ट होकर हमलोग वर्द्धित हों।

२ हरितवर्ण सोमरस हमारे यज्ञमें प्रवाहित (गमन करता) होता है और पूयमान (पवित्र) होकर कलशमें ऋजुभावसे गमन करता है। पुरातन, दीप्तिसम्पन्न और मदकारक सोमरसके अधिपति इन्द्र हमारे सोमरसका पान करें।

३ चतुर्दिक् गमन करनेवाले, रथमें युक्त और सरलतापूर्वक गमन करनेवाले अश्वगण सुदृढ़चक्र रथपर अवस्थित बलशाली इन्द्रको हमारे अभिमुख लावें। अमृतमय सोमलक्षण हवि वायुसे नष्ट (शुष्क) नहीं हो। अर्थात् सोमरसके बिगड़नेके पहले ही इन्द्र सोमको पी जायें।

४ निरतिशय बलशाली और बहुविध कार्य करनेवाले इन्द्र हविस्वरूप धनवाले व्यक्तियोंके मध्यमें यजमानको दक्षिणा प्रदान करते हैं। हे वज्रधर, तुम दक्षिणा द्वारा पाप नाश करो। हे शत्रुविजयी, तुम वंशो दक्षिणा प्रेरित करो, जिससे धनराशि और स्तुतिकर्ता पुत्र हमें प्राप्त हो।

५ इन्द्र श्रेष्ठ अन्न अथवा बलके दाता हों। अत्यधिक तेजोयुक्त इन्द्र हम लोगोंकी स्तुति द्वारा वर्द्धित हों। शत्रुओंको सतानेवाले इन्द्र आवरक शत्रुका संहार करें। प्रेरक इन्द्र वेगवान् होकर हमलोगों-को समस्त धन प्रदान करें।

३८ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद्द्युमतीमिन्द्रहूतीम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामन् जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥१॥
दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यगिन्द्रमियमृच्यमाना ॥२॥
तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महांश्च स्तोमो अधि वर्द्धदिन्द्रे ॥३॥
वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद्ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥४॥
एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥५॥

१ आश्चर्यतम इन्द्र हमलोगोंके पानपात्रसे सोमरस पान करें। वे महान् और दीप्तिमान् आह्वान (स्तुति) को स्वीकार करें। दानशील इन्द्र धार्मिक यजमानके यज्ञमें अतिशय स्तुत्य परिचरण और हव्य ग्रहण करें।

२ इन्द्रके कर्णयुगल दूरदेशसे भी स्तोत्र श्रवण करनेके लिये आते हैं। स्तोता उच्च स्वरसे स्तोत्र पाठ करते हैं। इन्द्रका आह्वान करनेवाला यह स्तुति स्वयं प्रेयमाण होकर इन्द्रको हमारे अभिमुख लावें।

३ हे इन्द्र, तुम प्राचीन और क्षयरहित हो। हम उत्कृष्टतम स्तुति और हव्य द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं. इसी लिये इन्द्रमें हव्य रूप अन्न और स्तोत्र निहित हैं। महान् स्तोत्र अधिक वर्द्धमान होता है।

४ जिन इन्द्रको यज्ञ और सोमरस वर्द्धित करते हैं, जिन इन्द्रको हव्य, स्तुति, उपासना और पूजा वर्द्धित करती है, दिन और रात्रिकी गति उन्हें वर्द्धित करती है एवम् उन्हें मास, संवत्सर और दिन वर्द्धित करते हैं।

५ हे मेधावी इन्द्र, तुम इस प्रकारसे प्रादुर्भूत, समृद्ध, बलशाली और प्रचण्ड हो। हम लोग आज धन कीर्ति रक्षा और शत्रु विनाशके लिये तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

३१ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि त्रिष्टुप्। छन्द।

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गो अग्राः ॥१॥
अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः।
रुजदरुग्णं विबलस्य सानुं पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥२॥
अयं द्योतयदद्युतो व्यक्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥३॥
अयं रोचयदरुचो रुचानोऽयं वासयद्व्यृतेन पूर्वीः।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥४॥
नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥५॥

---

१ इन्द्र, तुम हमारे उस सोमको पियो, जो मदकारक, पराक्रमकर्ता, स्वर्गीय, विज्ञ-सम्मत फलदाता प्रसिद्ध और सेवनीय है देव, तुम हमें गो-प्रमुख अन्न दो।

२ इन्हीं इन्द्रने पर्वतके बीच गुप्त रीतिसे रखी गायोंके उद्धारके लिये यज्ञ-कर्त्ता अङ्गिरा लोगोंके साथ होकर और उनके सत्य-रूप स्तोत्र द्वारा उत्तेजित होकर दुर्भग पर्वतको भिन्न और ताड़ना द्वारा पणियोंको अभिभूत किया था।

३ इन्द्र, इस सोमने दीप्ति-शून्य रात्रि, दिन और वर्ष—सबको प्रदान किया था। प्राचीन समयमें देवोंने इस सोमको दिनका केतु-स्वरूप स्थापित किया था। इसी सोमने अपनी दीप्तिसे उषाओंको प्रकाशित किया था।

४ इन्हीं इन्द्रने सूर्य-रूपसे प्रकाशित होकर प्रकाश-शून्य भुवनोंको प्रकाशित किया था और सर्वत्र गतिशील दीप्ति द्वारा उषाओंका अन्धकार नष्ट किया था मनुष्योंके अभीष्ट फल-दाता ये इन्द्र स्तोत्र द्वारा नियोजित होनेवाले अश्वों द्वारा आकृष्ट, और धनपूर्ण रथपर आरूढ़ होकर गये थे।

५ हे पुरातन और प्रकाशमान इन्द्र तुम स्तुति किये जानेपर धन देने योग्य स्तोताको प्रचुर धन दो तुम स्तोताको जल, औषधि विष-शून्य वृक्षावली, धेनु अश्व और मनुष्य प्रदान करो।

४० सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥१॥
अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥२॥
समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥३॥
आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे वयो धात् ॥४॥
यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥५॥

---

१ इन्द्र, तुम्हारे मद-वर्द्धनके लिये जो सोम अभिषुत हुआ है, उसे पान करो। अपने मित्र-भूत दोनों अश्वोंको रथमें जोतो और इसके पीछे रथसे उन्हें छोड़ दो। स्तोताओंके साथ बैठकर हमारे द्वारा किये गये स्तोत्रोंके उच्चारणमें योग दो। स्तोता यजमानको अन्न दो।

२ हे महेन्द्र, तुमने उल्लास और वीरता प्रकट करनेके लिये जन्म लेते ही जैसे सोम पान किया था, उसी तरह सोम पान करो। तुम्हारे लिये सोम तैयार करनेके लिये गाय, ऋत्विक्, जल और पाषाण इकट्ठे होते हैं।

३ इन्द्र, आग प्रज्वलित और सोमरस अभिषुत हुआ है। ढोनेमें शक्तिशाली तुम्हारे अश्व इस यज्ञमें तुम्हें ले आवें। हम तुम्हारी ओर चित्त लगाकर तुम्हें बुला रहे हैं। तुम हमारी विशाल समृद्धिके लिये आओ।

४ इन्द्र, तुम सोमपानके लिये कई बार यज्ञमें उपस्थित हुए हो। इसलिये इस समय सोमपानकी इच्छासे महान् अन्तःकरणके साथ इस यज्ञमें आओ। हमारे स्तोत्रोंको सुनो। तुम्हारी देहकी पुष्टिके लिये यजमान तुम्हें सोमरूप अन्न प्रदान करे।

५ इन्द्र, तुम दूरस्थित स्वर्ग, किसी अन्य स्थान वा अपने गृहमें अथवा कहीं हो; स्तुति-पात्र और अश्वोंके अधिपति तुम मरुतोंके साथ प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करनेके लिये हमारे यज्ञकी रक्षा करो।

४१ सूक्त

इन्द्र देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अहेलमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो नवज्रन्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥१॥
या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥२॥
एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३॥
सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥४॥
ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥५॥

१ इन्द्र, तुम क्रोध-शून्य होकर हमारे यज्ञमें आओ; क्योंकि तुम्हारे लिये पवित्र सोमरस अभिषुत हुआ है। वज्रधर, जैसे गायें गोशालामें जाती हैं, वैसे ही सोमरस कलशमें पैठ रहा है, इसलिये इन्द्र; तुम आओ। तुम यज्ञ-योग्य देवोंमें प्रधान हो।

२ इन्द्र, तुम जिस सुनिर्मित और सुविस्तृत जीभसे सदा सोम पान करते हो उसी जीभसे हमारे सोमरसका पान करो। सोमरस लेकर ऋत्विक्, तुम्हारे सामने खड़ा है इन्द्र, शत्रुओंकी गौओं-का आत्मसात् करनेके लिये अभिलाषी तुम्हारा वज्र शत्रुओंका संहार करे।

३ दर्वीभूत, अभीष्टवर्षी और विविध-मूर्ति यह सोम मनोरथवर्षक इन्द्रके लिये सुसंस्कृत हुआ है हे अश्वोंके अधिपति, सबके शासक और प्रचण्ड बलशाली इन्द्र, बहुत दिनोंसे, जिसके ऊपर तुमने प्रभुत्व किया है और जो तुम्हारे लिये अन्न रूप माना गया है वही तुम इस सोमरसका पान करो

४ इन्द्र, अभिषुत सोम अनभिषुत सोमसे श्रेष्ठतर है और विचारशाली तुम्हारे लिये अधिक प्रसन्नताकारक है। शत्रु विजयी इन्द्र, तुम यज्ञ-साधन इस सोमके पास आओ। और इसके द्वारा अपनी सारी शक्तियाँ सम्पूर्ण करो।

५ इन्द्र, हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम हमारे सामने आओ हमारा यह सोम तुम्हारे शरीरके लिये पर्याप्त हो शतक्रतु इन्द्र, अभिषुत सोम पानके द्वारा उल्लसित होओ और युद्धमें सब लोगोंसे हमें चारो ओरसे रक्षित करो।

४२ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। अनुष्टुप् और बृहती छन्द।

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरे ॥१॥

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥३॥

अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम्।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥४॥

४३ सूक्त

इन्द्र देवता। भरद्वाज ऋषि। उष्णिक् छन्द।

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥१॥

---

१ ऋत्विको, इन्द्रको सोमरस दो; क्योंकि वे पिपासु सर्वज्ञाता, सर्वगामी, यज्ञमें अधिष्ठाता, यज्ञके नायक और सबके अग्रगामी हैं।

२ ऋत्विको तुम सोमरसके साथ, अतिशय सोमरस-पान-कारी इन्द्रके पास उपस्थित होओ। अभिषुत सोमरससे भरे हुए पात्रके साथ बलशाली इन्द्रके सम्मुख आओ।

३ ऋत्विको अभिषुत और दीप्त सोमरसके साथ इन्द्रके पास उपस्थित होओ मेधावी इन्द्र तुम्हारा अभिप्राय जानते हैं और शत्रु संहारके साथ वह तुम्हारे मनोरथको पूर्ण करते हैं।

४ ऋत्विक् एकमात्र इन्द्रको ही सोम-रूप अन्नका अभिषुत रस दो। इन्द्र हमारे सारे उत्साही और जिते जानेवाले रिपुओंके द्वेषसे हमारी सदा रक्षा करें।

---

१ इन्द्र, जिस सोमरस-पानके उल्लासमें तुमने दिवोदासके लिये, शम्बरको वश किया था वही सोमरस तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है इसलिये इसे तुम पान करो।

यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमं तं च रक्षसे ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥२॥
यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृह्ला अवासृजः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥३॥
यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥४॥

४४ सूक्त

४ अनुवाक

इन्द्र देवता। बृहस्पतिके पुत्र शयु ऋषि। अनुष्टुप्, विराट् और त्रिष्टुप् छन्द ।

यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१॥
यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥२॥

---

२ इन्द्र, जब सोमका मादक रस, प्रातः, मध्याह्न और सायंकी पूजामें अभिषुत होता है, तब तुम इसे धारण करते हो। वही सोमरस तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है। इसे पान करो।

३ इन्द्र, जिस सोमके मादक रसका पान करके तुमने पर्वतके बीच, अच्छी तरहसे बँधी हुई, गायोंको छुड़ाया था, वही सोमरस तुम्हारे लिये अभिषुत है इसे पान करो।

४ इन्द्र, जिस सोमरूप अन्नके रस-पानसे उल्लसित होकर तुम असाधारण बलको धारण करते हो, वही सोमरस तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है। इसे पान करो।

---

१ हे धनशाली और सोमरूप अन्नके रक्षक इन्द्र, जो सोम अतिशय धनशाली है और जो दीप्त यशके द्वारा समुज्ज्वल है, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें उल्लसित करता है।

२ हे विपुल-सुख-कारी और सोमरूप अन्नके रक्षाकारी इन्द्र, जो सोम तुम्हारा प्रसन्नता-कारक और तुम्हारे स्तोताओंका ऐश्वर्य-विधायक है, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें उल्लसित करता है।

येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥३॥
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्र विश्वासहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥४॥
यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥५॥
तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥६॥
अविदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥७॥
ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाममहो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥८॥

३ हे सोमरूप अन्नके रक्षक, इन्द्र, जिस सोमके पानसे प्रवृद्ध-बल होकर, अपने रक्षक मरुतोंके साथ, रिपु-विनाश करते हो, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें उल्लसित करता है ।

४ यजमानो, हम तुम्हारे लिये उन इन्द्रकी स्तुति करते हैं, जो भक्तोंके कृपालु, बलके स्वामी, विश्वजेता, यागादि क्रियाओंके नायक और श्रेष्ठ दाता तथा सर्व-दर्शक हैं ।

५ हमारी स्तुतियां द्वारा इन्द्रका जो शत्रु-धन हरण करने वाला बल वर्द्धित होता है, उसी बलकी परिचर्या स्वर्ग देव और पृथिवी-देवी करती हैं ।

६ स्तोताओ, इन्द्रके लिये अपना स्तोत्र विस्तृत करो; क्योंकि मेधावी व्यक्तिकी भाँति तुम्हारी रक्षा इन्द्रके साथ है ।

७ जो यजमान यज्ञादि कार्यमें दक्ष है, उसकी बातें इन्द्र जानते हैं। मित्र और नवीनतर सोमका पान करनेवाले इन्द्र स्तोताओंको श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं। हव्य-रूपी अन्न भोजन करनेवाले वह इन्द्र प्रवृद्ध और पृथिवीको कँपानेवाले अश्वोंके साथ स्तोताओंकी रक्षाकी इच्छासे आकर उनकी रक्षा करते हैं।

८ यज्ञ मार्गमें मेधावियोंसे सोम पिया गया है। ऋत्विक् लोग उसी सोमको, इन्द्रका चित्त आकृष्ट करनेके लिये, प्रदर्शित करते हैं। शत्रु जेता और विशाल देह धारण करनेवाले वही इन्द्र हमारे स्तवसे प्रसन्न होकर हमारे सामने प्रकट हों ।

द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥९॥
इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥१०॥
मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥११॥
उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥१२॥
अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥१३॥

९ इन्द्र, तुम हमें अतीव दीप्तिसे युक्त बल दो। अपने उपासकोंके असंख्य शत्रुओंको दूर करो। अपनी बुद्धिसे हमें यथेष्ट अन्न दो। धनका भोग करनेके लिये हमारी रक्षा करो।

१० धनशाली इन्द्र, तुम्हारे लिये ही हम हव्य देते हैं। अश्वोंके स्वामी इन्द्र, हमारे प्रतिकूल नहीं होना। मनुष्योंके बीच हम तुम्हारे सिवा किसीको अपना मित्र नहीं देखते। इन्द्र, यदि तुम्हारे अन्दर यह गुण नहीं रहता, तो तुम्हें प्राचीन लोग "धनद" क्यों कहते?

११ अभीष्ट-वर्षी इन्द्र, तुम हमें कार्य-विनाशक राक्षसादिकोंके पास नहीं छोड़ना। तुम धनयुक्त हो। तुम्हारे बन्धुत्वके ऊपर अवलम्बित होकर हम कोई विघ्न न पावें। मनुष्योंके बीच तुम्हारे लिये अनेक प्रकारके विघ्न उत्पन्न किये जाते हैं। जो अभिषव-कर्ता नहीं हैं, उनका संहार करो और जो तुम्हें हव्य नहीं देते, उनका विनाश करो।

१२ गर्जन करनेवाले पर्जन्य जैसे मेघ उत्पन्न करते हैं, वैसे ही इन्द्र स्तोताओंको देनेके लिये अश्व और गायें उत्पन्न करते हैं। इन्द्र, तुम स्तोताओंके प्राचीन रक्षक हो। तुम्हें हव्य न देकर धनी लोग तुम्हारे प्रति अयथा आचरण न करें।

१३ ऋत्विको, तुम इन्हीं महेन्द्रको अभिषुत सोम अर्पित करो; क्योंकि ये ही सोमके स्वामी हैं। ये ही इन्द्र स्तोता ऋषियोंके प्राचीन और नवीन स्तोत्रोंके द्वारा परिवर्द्धित हुए हैं।

अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥१४॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥१५॥
इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्यस्मद्द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥१६॥
एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्यादेदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥१७॥
आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्वस्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपान्तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥

---

१४ ज्ञानी और अबाध प्रभाव इन्द्रने इसी सोमका पान कर और उल्लसित होकर असंख्य प्रतिकूल आचरण करनेवाले शत्रुओंका विनाश किया है।

१५ इन्द्र इस अभिषुत सोमका पान करें और इससे उल्लसित होकर वज्र द्वारा वृत्रका संहार करें। गृहदाता, स्तोतृ-रक्षक और यजमान-पालक वह इन्द्र दूर देशसे भी हमारे यज्ञमें आवें।

१६ इन्द्रके पीनेके योग्य और प्रिय यह सोमरूप अमृत इन्द्रके द्वारा इस प्रकार पिया जाय कि, वह उल्लसित होकर हमारे ऊपर अनुग्रह करें और हमारे शत्रुओं तथा पापको हमसे दूर करें।

१७ शौर्यशाली इन्द्र, इस सोमके पानसे प्रसन्न होकर हमारे आत्मीय और अनात्मीय प्रतिकूलाचरण-कारी शत्रुओंका विनाश करो। इन्द्र, हमारे ऊपर मारे हुए अस्त्र छोड़नेवाले शत्रु-सैन्योंको पराङ्मुख और उच्छिन्न करो।

१८ इन्द्र, हमारे इस सारे संग्राममें अतुल धन हमें सुलभ करो। जय-प्राप्तिमें हमें समर्थ बनाओ। वर्षा, पुत्र और पौत्रके द्वारा हमें समृद्ध करो।

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९॥
आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥२०॥
वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभ स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥२१॥
अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥२२॥
अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥२३॥

---

१९ इन्द्र, तुम्हारे अभीष्ट-वर्षक, स्वेच्छाके अनुसार रथमें नियुक्त, अभीष्ट-दाता रथके ढोनेवाले, वारि-वर्षक, किरणों द्वारा संयुत, द्रुतगामी, हमारे सामने आनेवाले, नित्य तरुण, वज्र-वाहक और शोभन रूपसे योजित अश्व बहुत नशा करनेवाले सोमका पीनेके लिये तुम्हें ले आवें।

२० अभीष्ट-वर्षी इन्द्र, तुम्हारे जल-वर्षक और तरुण अश्व जलका सेचन करनेवाली समुद्र-तरङ्गोंके समान उल्लसित होकर तुम्हारे रथमें जुते हैं। तुम तरुण और काम-वर्षक हो। ऋत्विक् लोग तुम्हें पाषाण द्वारा अभिषुत सोमरस अर्पण करते हैं।

२१ इन्द्र, तुम स्वर्गके सेचन-कर्त्ता, पृथिवीके वर्षण-कर्त्ता, नदियोंके पूरण-कर्त्ता और एकत्र समवेत स्थावर और जङ्गम विश्व-भूतोंके अभीष्ट-कर्त्ता हो। अभीष्ट-प्रदायक इन्द्र, तुम श्रेष्ठ सेचन-कारी हो। तुम्हारे लिये मधुकी तरह पीने योग्य माठा सोमरस बह रहा है।

२२ इस दीप्तिमान् सोमने मित्र इन्द्रके साथ जल लेकर बल-पूर्वक पणिकी स्तुति की थी। इसी सोमने गो रूप धनको चुरानेवाले द्वेषियोंकी माया और अस्त्रोंको व्यर्थ किया था।

२३ इसी सोमने उषाओंके पति-स्वरूप सूर्यको शोभा-सम्पन्न किया था। इसी सोमने सूर्य-मण्डलमें दीप्ति स्थापित की थी। इसी सोमने दीप्ति-संयुक्त तीनों भुवनोंके बीच स्वर्गमें गूढ़ भावसे अवस्थित त्रिविध अमृतोंको प्राप्त किया था।

अयं द्यावा पृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥२४

४५ सूक्त

दस मन्त्रोंके इन्द्र और अवशिष्टके बृहस्पति देवता। बृहस्पतिके पुत्र शंयु ऋषि। अनुष्टुप् और गायत्री छन्द।

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥१॥
अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता ।
इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥२॥
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥३॥
सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत ।
स हि नः प्रमतिर्मही ॥४॥

२४ इसी सोमने स्वर्ग और पृथिवीको अपने-अपने स्थानोंपर संस्थापित किया था। इसी सोमने सप्तरश्मि रथको योजित किया था। इसी सोमने स्वेच्छानुसार गौओंके बीच परिणत दुग्धके दस यन्त्रोंके कूपको या बहुधारा-विशिष्ट प्रस्रवणको स्थापित किया था।

१ जो उत्कृष्ट नीति द्वारा तुर्वश और यदुको दूर देशसे लाये थे, वही तरुण इन्द्र हमारे मित्र बनें।

२ जो व्यक्ति इन्द्रकी स्तुति नहीं करता, उसे भी इन्द्र अन्न प्रदान करते हैं। इन्द्र मन्थर-गति अश्व पर चढ़कर शत्रुओंके बीच निहित सम्पत्तिको जीतते हैं।

३ इन्द्रकी नीतियाँ उत्कृष्ट और महान् हैं। उनकी स्तुतियाँ भी नाना प्रकारकी हैं। उनकी रक्षाका कथन कभी क्षीण नहीं होता।

४ बन्धुओ, मन्त्र द्वारा आवाहनके योग्य उन्हीं इन्द्रकी पूजा करो और उन्हींकी स्तुति करो; क्योंकि वही हमें वस्तुतः प्रकृष्ट बुद्धि प्रदान करते हैं।

त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि ।
उतेदृशे यथा वयम् ॥५॥
नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः ।
नृभिः सुवीर उच्यसे ॥६॥
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखाय मृग्मियं । गां न दोहसे हुवे ॥७॥
यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता । वीरस्य पृतनासहः ॥८॥
वि दृह्लानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥९॥
तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते । अहूमहि श्रवस्यवः ॥१०॥
तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने । हव्यः स श्रुधी हवम् ११
धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् । त्वया जेष्म हितं धनम् ॥१२॥

---

५ वृत्र-विनाशक इन्द्र, तुम एक वा दो स्तोताओंके रक्षक हो। तुम्हीं हमारे जैसे लोगोंके रक्षक हो।

६ इन्द्र, हमारे पाससे विद्वेषियोंको दूर करो और स्तोताओंको समृद्धि दो। इन्द्र, तुम शोभन पुत्र-पौत्र आदि देनेवाले हो; इसलिये मनुष्य तुम्हारा स्तुति करते हैं।

७ मैं स्तोत्रके बलसे मित्र, महान् मन्त्र द्वारा आह्वानके योग्य और स्तुति-पात्र इन्द्रको, धेनुकी तरह अभीष्ट दूहनेके लिये, बुलाता हूं।

८ वीर्यवान् और शत्रु-सेनाको पराजित करनेवाले इन्द्रके दोनों हाथोंमें दिव्य और पार्थिव धन है—ऐसा ऋषि लोग बराबर कहा करते हैं।

९ हे वज्रधारक और यज्ञपति इन्द्र, तुम शत्रुओंके दृढ़ नगरोंको निर्मूल करते हो। हे सर्वोन्नत इन्द्र, तुम शत्रुओंको मायाओंको विनष्ट करते हो।

१० हे सत्यस्वभाव, सोमपायी और अन्नरक्षक इन्द्र, हम, अन्नाभिलाषी होकर, ऐसे गुणोंसे संयुक्त तुम्हें ही बुलाते हैं।

११ इन्द्र, तुम पहले आह्वानके योग्य थे और इस समय शत्रुओंके बीच रखे हुए धनकी प्राप्तिके लिये आहूत होते हो। हम तुम्हें बुलाते हैं। तुम हमारा आह्वान सुनो।

१२ इन्द्र, हमारे स्तोत्रको सुनकर तुम्हारे प्रसन्न होनेपर तुम्हारी कृपासे हम अश्वोंके द्वारा शत्रुओंके अश्व, उत्कृष्ट अन्न और गूढ़ धनको जीतनेमें समर्थ हों।

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥१३॥
या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुहि रथम् ॥१४॥
स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना । जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥१५॥
य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥१६॥
यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥१७॥
धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥१८॥
प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥१९॥
स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते । गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥२०॥
स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः । गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥२१॥

---

१३ वीर और स्तुति-पात्र इन्द्र, तुम शत्रुओंके बीच निहित धनकी प्राप्तिके लिये युद्ध शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हुए हो।

१४ शत्रुञ्जय इन्द्र, तुम्हारी गति अतिशय वेगसे संयुक्त है। उसी गतिके द्वारा शत्रुकी जय करनेके लिये हमारा रथ चलाओ।

१५ जयशील और रथि-श्रेष्ठ इन्द्र, तुम हमारे शत्रु-विजयी रथके द्वारा शत्रुओंके द्वारा निहित धनको जीतो।

१६ जो सर्वदर्शी और वर्षणशील हैं, जिन्होंने एक-एक मनुष्योंके अधिपति रूपसे जन्म धारण किया है, उन्हीं इन्द्रकी स्तुति करो।

१७ इन्द्र, तुम रक्षाके कारण सुखदाता और मित्र हो। हमारी स्तुतिपर तुमने प्राचीन समयमें बन्धुता प्रकट की थी। इस समय हमें सुखी करो।

१८ वज्रधर इन्द्र, तुम राक्षसोंके नाशके लिये अपने हाथोंमें वज्र धारण करते हो और स्पर्द्धा वालोंको भली भाँति पराजित करते हो।

१९ जो धनद, मित्र, स्तोताओंके उत्साहदाता और मन्त्रोंके द्वारा आह्वानके योग्य हैं, उन्हीं प्राचीन इन्द्रको मैं आह्वान करता हूँ।

२० जो स्तुति द्वारा वन्दनीय और अप्रतिहत गति हैं, वही एक मात्र इन्द्र हो सारे पार्थिव धनोंके ऊपर एकाधिपत्य करते हैं।

२१ हे गौओंके अधिपति, तुम बहुत लोगोंके साथ आकर अन्न, असंख्य अश्वों और धेनुओंसे भली भाँति हमारे मनोरथको पूरा करो।

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥२२॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥२३॥
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥२४॥
इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः ॥२५॥
दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥२६॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥२७॥
इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥२८॥
पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥२९॥
अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । अस्मान्राये महे हिनु ॥३०॥

२२ स्तोताओ, जैसे घास गौओंके लिये सुखावह होती है, वैसे ही सोमरसके तैयार होनेपर इन्द्रका सुख-दायक स्तोत्र भी बहुसंख्यक लोगोंके द्वारा वन्दनीय होता है। रिपुञ्जय इन्द्रके पास एकत्र होकर गान करो।

२३ गृह-प्रदाता इन्द्र जिस समय हमारा स्तोत्र सुनते हैं, उस समय वह धेनुओंके साथ अन्न प्रदान करनेमें विरत नहीं होते।

२४ दस्युओंके वध-कर्ता इन्द्र कुवित्सकी असंख्य धेनुओंवाली गोशालामें गये और उन्होंने अपने बुद्धि-बलसे हमारे लिये उस निगूढ़ गो-वृन्दको प्रकट किया।

२५ बहु-विध कर्मोंके अनुष्ठाता इन्द्र, जैसे गायें बार-बार बछड़ोंके सामने जाती हैं, वैसे ही हमारी ये सारी स्तुतियाँ बार-बार तुम्हारी ओर जाती हैं।

२६ इन्द्र, तुम्हारे बन्धुत्वका विनाश नहीं होता। वीर, तुम गौ चाहनेवालेको गौ और घोड़ा चाहनेवालेको घोड़ा देते हो।

२७ इन्द्र महाधनके लिये प्रदत्त सोमरसका पान करके अपनेको परितृप्त करो। तुम अपने उपासकको निन्दकके हाथ नहीं सौंपते।

२८ स्तुति द्वारा वन्दनीय इन्द्र, जैसे दूध देनेवाली गायें बछड़ोंके पास जाती हैं, वैसे ही बार-बार सोमरसके अभिषुत होनेपर हमारी ये स्तुतियाँ, बड़े वेगसे, तुम्हारी ओर जाती हैं।

२९ यज्ञ-मण्डपमें हव्यरूप अन्नके साथ दिये गये असंख्य स्तोताओंके स्तोत्र, असंख्य शत्रुओंके नाशक तुम्हें, बलशाली करें।

३० इन्द्र, अतीव उन्नति-कारक हमारे स्तोत्र तुम्हारे पास जायँ। हमें, महाधनकी प्राप्तिके लिये, प्रेरित करो।

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥३१॥
यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी । सद्यो दानाय मंहते ॥३२॥
तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥३३॥

४६ सूक्त

इन्द्र देवता । शंयु ऋषि । बृहती और सतोबृहती छन्द ।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥

३१ गङ्गाके ऊंचे तटोंकी तरह प्राणियोंके बीच ऊंचे स्थानपर बृबुने अधिष्ठान किया था।*

३२ मैं धनार्थी हूं। बृबुने मुझे वायु-वेगके समान वदान्यताके साथ एक हजार गायें तुरत दी थीं

३३ हम सब लोग स्तुति करके हजार गायें देनेवाले, विद्वान् और हजारों स्तोत्रोंके पात्र उन्हीं बृबुकी सदा प्रशंसा करते हैं।

१ हम स्तोता हैं। अन्न-प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाते हैं। तुम साधुओंके रक्षक हो; इसलिये अश्वोंसे युक्त संग्राममें शत्रुओंको जीतनेके लिये वे तुम्हें ही बुलाते हैं।

२ विचित्र-वज्र-पाणि वज्री, जैसे तुम युद्धमें विजयी पुरुषको यथेष्ट अन्न देते हो, वैसे ही तुम हमारे स्तवसे प्रसन्न होकर हमें यथेष्ट गौ और रथ वहन करनेमें पटु अश्व दो; तुम शत्रु-नाशक और प्रतापी हो।

* इस मन्त्रमें गङ्गाका स्पष्ट उल्लेख है। बृबु शिल्पकलाचार्य थे। ऋग्वेद १२०१ देखिये। "नीतिमञ्जरी" और "मनुस्मृति" (१०.१०७) में भी बृबु की कथा है।

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥३॥
बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीह्ळ ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४॥
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥५॥
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोमित्रान्सुषहान्कृधि ॥६॥
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७॥
यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पुरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८॥

३ जो प्रबल शत्रुओंके निधन-कर्त्ता और सर्वदर्शी हैं, उन्हीं इन्द्रको हम बुलाते हैं। सहस्रशेफ, अतुलधन-सम्पन्न और सत्पालक इन्द्र, रण-स्थलमें तुम हमें समृद्धि दो।

४ इन्द्र, जैसा ऋचामें वर्णन मिलता है, वैसा ही तुम्हारा रूप है। तुम तुमुल युद्धमें, वृषभकी तरह, अत्यन्त क्रोधके साथ हमारे शत्रुओंपर आक्रमण करो। जिसमें हम सन्तति, जल और सूर्यका दर्शन (अथवा बहुत समय तक भोग) कर सकें, उसके लिये तुम रण-भूमिमें हमारे रक्षक बनो।

५ शोभन हनु (ठुड्डी) वाले और अद्भुत-वज्रपाणि इन्द्र, जिस अन्नसे तुम स्वर्ग और पृथिवी-का पोषण करते हो, हमारे पास वही प्रकृष्टतम, अत्यन्त बलवर्द्धक और पुष्टिसाधक अन्न ले आओ।

६ दीप्ति-शाली इन्द्र, तुम हमारी रक्षा करोगे; इसलिये तुम्हें हम बुलाते हैं। तुम देवोंमें सबसे बली और शत्रु-जयी हो। गृहदाता इन्द्र, तुम समस्त राक्षसोंको अलग करो और हमें शत्रुओंके ऊपर विजय दो।

७ इन्द्र, मनुष्योंमें जो कुछ बल और धन है और पाँचों वर्णोंमें जो अन्न है, सो सब सारे महान् बलके साथ, हमें दो।

८ ऐश्वर्यशाली इन्द्र, शत्रुओंके साथ युद्ध प्रारम्भ होनेपर हम उन्हें युद्धमें जीत सकें, इसके लिये तुम हमें तक्षु, द्रुह्यु और पुरुका सारा बल दे देना।

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥९॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥१०॥
अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥११॥
यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥१२॥
यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥१३॥
सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥१४॥

९ इन्द्र, हव्य रूप धनसे युक्त मनुष्योंको और मुझे एक ऐसा घर दो, जो लकड़ी, ईंट और पत्थरका बना हुआ हो और जिसमें शीत ताप और ग्रीष्म न सतावे तथा जो घर समृद्ध और आच्छादक हो। शत्रुओंके मारे द नियुक्त आयुधोंको दूर करो।

१० ऐश्वर्यशाली इन्द्र, जिन्होंने हमारी गायें अपहरण करनेके लिये हमारे ऊपर शत्रुवत् आक्रमण किया था अथवा जिन्होंने धृष्टताके साथ हमें उत्पीड़ित किया था, उनसे (हमारे स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर) हमारी रक्षा करनेके लिये हमारे पास आओ।

११ इन्द्र, इस समय हमें धन दो। जिस समय पक्षयुक्त, तीक्ष्णाग्र और दीप्त-शत्रुओंके वाण आकाशसे गिरते हैं, उस समय जो हमारी रक्षा करते हैं, उनकी रक्षा तुम समरभूमिमें करना।

१२ शत्रुओंके सामने जिस समय वीर लोग अपनी देहको दिखाते और पैतृक स्थानोंका परित्याग करते हैं, उस समय तुम हमें और हमारी सन्तानोंको शरीर-रक्षाके लिये, गुप्त रूपसे, कवच देना और शत्रुओंको दूर करना।

१३ महायुद्धका समारोह होनेपर तुम विकट मार्गसे हमारे अश्वोंको, कुटिल प्रान्तसे जानेवाले, द्रुतगति और आमिषार्थी श्येनकी तरह, भेजना।

१४ यद्यपि डरके मारे घोड़े जोरसे हिनहिनाते हैं, तथापि निम्नगामिनी नदियोंकी तरह, वे ही वेगगामी और दृढ़संयत घोड़े, आमिषार्थी पक्षियोंकी तरह, धेनु-प्राप्तिके लिये, प्रवृत्त संग्राममें, बार-बार दौड़ते हैं।

४७ सूक्त

पाँच मन्त्रोंके सोम, बीसवेंके प्रथम पादके देवगण, द्वितीयकी पृथिवी, तृतीयके बृहस्पति और चतुर्थ पादके इन्द्र देवता हैं। बीससे चौबीस तक सृञ्जय-पुत्र प्रस्तोक छब्बीससे तीन मन्त्रोंके देवता रथ, उनतीसवें एकतीसके दुन्दुभि और शेष मन्त्रोंके देवता इन्द्र हैं। भरद्वाजके पुत्र गर्ग ऋषि हैं। त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, गायत्री, बृहती और जगती छन्द हैं।

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्र न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥
अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो॒ऽहन् ॥२॥
अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥३॥
अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥४॥
अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद्द्यामस्तभ्नाद्वृषभो मरुत्वान् ॥५॥

१ यह अभिषुत सोम सुस्वादु, मधुर, तीव्र और सारवान है। इसका इन्द्र पान कर लेते हैं, तब संग्राममें उनके सामने कोई नहीं ठहर सकता।

२ इस यज्ञमें पीनेपर ऐसे ही सोमने अत्यन्त हर्ष प्रदान किया था। वृत्रके विनाशके समय इन्द्रने इसे पीकर प्रसन्नता प्राप्त की थी। इसने शम्बरकी निन्यानवे पुरियोंका विनाश किया था।

३ पीनेपर यह सोमरस मेरे वाक्यकी स्फूर्तिको बढ़ाता है। यह अभिलषित बुद्धिको प्रदान करता है। इसी सुबुद्धि सोमने स्वर्ग, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल और ओषधि आदि छः अवस्थाओंकी सृष्टि की है। भुवनमें कोई भी इससे दूर नहीं ठहर सकता।

४ फलतः इसी सोमरसने पृथिवीका विस्तार और स्वर्गकी दृढता की है। इसी सोमरसने ओषधि, जल और धेनु नामक तीन उत्कृष्ट आधारोंमें रस दिया था। यही विस्तृत अन्तरीक्षको धारण किये हुए है।

५ निर्मल आकाशमें स्थित उषके पहले यही सोम विचित्र दर्शन सूर्य ज्योतिको प्रकट करता है, वारिवर्षी और बलशाली यह सोमरस ही मरुतोंके साथ सुदृढ़ स्तम्भ द्वारा स्वर्गको धारण किये हुए है।

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥६॥
इन्द्र प्र णः पुर एतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥७॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८॥
वरिष्ठे न इन्द्र बन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥९॥
इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किंचाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥१०॥
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥११॥

६ वीर इन्द्र, धन-प्राप्तिके लिये आरम्भ किये गये संग्राममें तुम शत्रु संहार करो। साहसके साथ कलश-स्थित सोमरसका पान करो। मध्याह्नके यज्ञमें तुम बहुत सोम पान करो। हे धन-पात्र हमें धन दो।

७ इन्द्र, मार्ग रक्षककी तरह तुम अग्रगामी होकर हमारे प्रति दृष्टि रखना और हमारे सामने श्रेष्ठ धन ले आना। तुम भली भांति हमें दुःख और शत्रुसे बचाओ और उत्कृष्ट नेता होकर हमें अभिलषित धनमें ले जाओ।

८ इन्द्र, तुम ज्ञानी हो। हमें विस्तीर्ण लोकमें—सुखमय और भय शून्य आलोकमें भी—निर्विघ्न ले जाना। तुम प्राचीन हो। हम तुम्हारे मनोज्ञ और बृहत् बाहुओंके ऊपर रक्षाके लिये आश्रित हैं।

९ धनाढ्य इन्द्र, तुम हमें अपने पराक्रमी अश्वोंके पीछे विस्तृत रथपर चढ़ाओ। विविध अन्नोंके बीच तुम हमारे लिये प्रकृष्टतम अन्न ले आओ। मघवन्, कोई भी धनी धनमें हमें न लाँघ सके।

१० इन्द्र, तुम मुझे सुखी करो। मेरी जीवन-वृद्धि करनेमें प्रसन्न होओ। लौहमय खड्गकी धारकी तरह मेरी बुद्धिको तेज करो। तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये इस समय जो कुछ मैं कह रहा हूँ, सो सब ग्रहण करो। देवगण मेरी रक्षा करें।

११ जो शत्रुओंसे रक्षा करते और मनोरथ पूर्ण करते हैं, जो अनायास आह्वान-योग्य, शौर्यशाली और सभी कामोंमें समर्थ हैं, मैं उन्हीं बहु लोक-वन्दनीय इन्द्रको, प्रत्येक यज्ञमें, बुलाता हूँ। धनवान् इन्द्र हमें समृद्धि दें।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभि सुमृलीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२॥
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥१३॥
अव त्वे इन्द्र प्रवता नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरु न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥१४॥
क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५॥
शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६॥
परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥१७॥

१२ शोभन रक्षा करनेवाले और धनशाली इन्द्र रक्षा द्वारा हम सुख देते हैं। वही सर्वज्ञ इन्द्र हमारे शत्रुओंका वध करके हमें निर्भय करते हैं। उनकी प्रसन्नतासे हम अतीव वीर्य-शाली बनें।

१३ हम उन्हीं यज्ञार्ह इन्द्रके अनुग्रह, बुद्धि और कल्याणवाहक प्रीतिके पात्र बनें। रक्षक और धनी वही इन्द्र विद्वेषियोंको बहुत दूर ले जायँ।

१४ इन्द्र, स्तोताओंकी स्तुति, उपासना, विशाल धन और प्रचुर अभिषुत सोमरस, निम्न-देश-प्रवण जलराशिकी तरह, तुम्हारी ओर जाते हैं। वज्रधर इन्द्र, तुम जल, दूध और सोमरस भली भाँति मिलाते हो।

१५ भली भाँति कौन मनुष्य इन्द्रकी स्तुति, प्रसन्नता और यज्ञ करनेमें समर्थ है? धनशाली इन्द्र प्रतिदिन अपनी उग्र शक्तिको जानते हैं। जैसे पथिक अपने पैरोंको कभी आगे और कभी पीछे करता है, वैसे ही इन्द्र अपने बुद्धि-बलसे स्तोताको कभी परवर्त्ती और कभी अग्रवर्त्ती करते हैं।

१६ प्रबल शत्रुका दमन करके और स्तोताओंका स्थान सदा परिवर्तन करके इन्द्र, अपनी वीरता के लिये, प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। उद्धत व्यक्तियोंके द्वेषी और स्वर्गीय तथा पार्थिव धनोंके अधिपति इन्द्र अपने सेवकोंको, रक्षाके लिये, बार-बार बुलाते हैं।

१७ इन्द्र पूर्वतन प्रशस्त कर्मोंके अनुष्ठाताओंकी मित्रता त्याग देते हैं और उनसे द्वेष करके उनकी अपेक्षा निकृष्ट व्यक्तियोंके साथ मित्रता करते हैं। अथवा अपनी उपासनासे रहित व्यक्तियोंको छोड़कर परिचारकोंके साथ अनेक वर्ष रहते हैं।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥१८॥
युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९॥
अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥२०॥
दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥२१॥
प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दशकोशयीर्दश वाजिनोदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥
दशाश्वान्दशकोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥२३॥

१८ सारे देवोंके प्रतिनिधि इन्द्र तीन प्रकारकी मूर्त्तियाँ धारण करते हैं और इन रूपोंको धारण कर वह अलग-अलग प्रकट होते हैं। वह माया द्वारा अनेक रूप धारण करके यजमानोंके पास उपस्थित होते हैं; क्योंकि इन्द्रके रथमें हजार घोड़े जोते जाते हैं।

१९ रथमें इन्द्र ही घोड़े जोतकर त्रिभुवनोंके अनेक स्थानोंमें प्रकट होते हैं दूसरा कौन व्यक्ति प्रतिदिन उपस्थित स्तोताओंके बीच जाकर शत्रुओंसे उनकी रक्षा करता है?

२० देवो, हम गाय ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उस देशमें आ पहुंचे हैं, जहां गायें नहीं हैं। विस्तृत पृथिवी दस्युओंको आश्रय देती है। बृहस्पति, तुम धेनुओंके अनुसन्धानमें हमें परिचालित करो। इन्द्र, इस तरहसे पथ-भ्रष्ट अपने उपासकको मार्ग दो।*

२१ इन्द्र अन्तरिक्ष स्थित गृहमें सूर्य-रूपसे प्रकट होकर दिनको अपरार्द्ध प्रकाशित करनेके लिये प्रतिदिन, समान रीतिसे, रात्रिको दूर करते हैं। उदव्रज नामक देशमें शम्बर और वर्ची नामके दो धनार्थी दासोंका वर्षक इन्द्रने संहार किया था।

२२ इन्द्र, प्रस्तोकने तुम्हारे स्तोताओंको (हमें) सोनेसे भरे दस कोश और दस घोड़े प्रदान किये थे। अतिथिग्वने शम्बरको जीत कर जो धन प्राप्त किया था, उसी धनको हमने दिवोदाससे पाया है,

२३ मैंने दिवोदासके पाससे दस घोड़े, दस सोनेके कोश, कपड़े यथेष्ट अन्न और दस हिरण्य-पिण्ड पाये हैं।

* इससे भी मालूम होता है कि अनार्य देशमें आर्योंका जाना सूचित होता है।

दशरथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ॥२४॥
महि राधो विश्वजन्यं दधानान्भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥२५॥
वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीलयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥२६॥
दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२७॥
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमान्नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥२८॥
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून् ॥२९॥

२४ मेरे भाई अश्वत्थने पायुको घोड़ोंके साथ दस रथ और अथर्व-गोत्रीय ऋषियोंको एक सौ गायें प्रदान कीं ।

२५ भरद्वाजके पुत्रने सबकी भलाईके लिये जो ये सब ऐश्वर्य ग्रहण किये थे, सृञ्जय-पुत्रने उनकी पूजा की थी।

२६ वनस्पति-निर्मित रथ, तुम्हारे सब अवयव दृढ़ हों। तुम हमारे रक्षक और मित्र बनो। तुम प्रतापी वीरोंसे युक्त होओ। तुम गोचर्म द्वारा बाँधे गये हो। हमें सुदृढ़ करो। तुम्हारे ऊपर आरूढ़ रथी अनायास ही संग्राममें शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हो।

२७ ऋत्विको, तुम हव्यसे रथका यज्ञ करो। यह रथ स्वर्ग और पृथिवीके सारांशसे बना है, वनस्पतियोंके स्थिरांशसे घटित है, जलके वेगकी तरह वेगवान् है, गोचर्म द्वारा ढका हुआ तथा वज्रकी तरह है।

२८ हे दिव्य रथ, हमारे यज्ञमें प्रसन्न होकर हव्य ग्रहण करो; क्योंकि तुम इन्द्रके वज्र-स्वरूप,मरुतों-के अग्रवर्त्ती, मित्रके गर्भ और वरुणकी नाभि हो।

२९ हे युद्ध-दुन्दुभि, अपने शब्दसे स्वर्ग और धरणीको परिपूर्ण करो—स्थावर और जङ्गम इस बातको जानें। तुम इन्द्र और अन्य देवोंके साथ होकर हमारे रिपुओंको दूर फेंक दो।

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा नि ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इतइन्द्रस्य मुष्टिरसि वीलयस्व ॥३०॥
आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३१॥

३० दुन्दुभि, हमारे शत्रुओंको रुलाओ हमें बल दो। इतने जोरसे बजो कि, दुर्द्धर्ष शत्रुओंको दुःख मिले। दुन्दुभि, जो हमारा अनिष्ट करके आनन्दित होते हैं, उन्हें दूर हटाओ तुम इन्द्रकी मुष्टिकासी हो; इसलिये हमें दृढ़ता दो।

३१ इन्द्र, हमारी सारी गायोंको रोक कर हमारे पास ले आओ। सबके पास घोषणा करनेके लिये दुन्दुभि नियत उच्च रव करता है। हमारे सेनानी घोड़ोंपर चढ़कर इकट्ठे हुए हैं। इन्द्र, हमारे रथारूढ़ सैनिक और सेनाएँ युद्धमें विजयी बनें।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय

४८ सूक्त

प्रथम दस ऋकोंके देवता अग्नि, ग्यारहसे पन्द्रह तक मरुद्गण, सोलहसे उन्नीस तक पूषन, बीससे इक्कीस तक पृश्नि और बाईसवें मन्त्रके देवता पृश्नि, गर्ग अथवा पृथिवी हैं। बृहस्पतिके पुत्र शंयु ऋषि हैं। बृहती, महाबृहती, अनुष्टुप् सतोबृहती जगती, ककुप्, उष्णिक्, गायत्री, पुर उष्णिक्, अनुष्टुप् आदि छन्द हैं।

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१॥
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥
वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥३॥
महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥४॥
यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥

---

१ स्तोताओ, तुम प्रत्येक यज्ञमें स्तोत्र द्वारा शक्तिमान् अग्निकी बार-बार स्तुति करो। हम उन अमर, सर्व-द्रष्टा और मित्रकी तरह अनुकूल अग्निदेवकी प्रशंसा करते हैं।

२ हम शक्ति-पुत्रकी प्रशंसा करते हैं; क्योंकि वह वस्तुतः हमसे प्रसन्न हैं। हव्य वहन करनेवाले अग्निको हम हव्य प्रदान करते हैं। वह संग्राममें हमारे रक्षक और समृद्धि-विधायक हों। वह हमारे पुत्रोंकी रक्षा करें।

४ अग्नि, तुम महान् देवोंका यज्ञ किया करते हो; इसलिये हमारे यज्ञमें सदा देवोंका यज्ञ करो। हमारी रक्षाके लिये अपनी बुद्धि और कायसे देवोंको हमारे सामने ले आओ। तुम हमें हव्य-रूप अन्न दो और स्वयं इसे स्वीकार करो।

५ तुम यज्ञके गर्भ हो; तुम्हें सोममें मिलानेके लिये जल (वसतीवरी), अभिषव-पाषाण और अरणि-काष्ठ पुष्ट करते हैं। तुम ऋत्विकों द्वारा बल-पूर्वक मथे जाकर पृथिवीके अत्युन्नत स्थानमें (देव-यजन-देशमें) प्रादुर्भूत होओ।

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६॥
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥७॥
विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारन्शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८॥
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तुनः ॥९॥
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१०॥
आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११॥

६ जो अग्नि दीप्ति द्वारा स्वर्ग और पृथिवीको पूर्ण करते है, जो धूएंके साथ आकाशमें उठते हैं, वही दीप्तिमान् और अभीष्टवर्षी अग्नि अंधेरी रातका तम नष्ट करते देखे जाते हैं। दीप्तिमान् और अभीष्ट-वर्षी वही अग्नि रात्रियोंके ऊपर अधिष्ठान करते हैं।

७ देव, देवोंमें कनिष्ठ और प्रदीप्त अग्नि, तुम हमारे भ्राता भारद्वाज द्वारा समिध्यमान होकर हमें धन देते हुए निर्मल और प्रवृद्ध दीप्तिके साथ प्रज्वलित होओ। प्रदीप्त अग्नि, तुम प्रज्वलित होओ।

८ अग्नि, तुम सारे मनुष्योंके गृहपति हो। मैं तुम्हें सौ हेमन्तों तक प्रज्वलित करता हूं। तुम मुझे सैकड़ों रक्षाओं द्वारा पापसे बचाओ। जो तुम्हारे स्तोताओंको अन्न देते हैं, उन्हें भी बचाओ।

९ गृहदाता विचित्र अग्नि, तुम हमारे पास रक्षाके साथ धन भेजो; क्योंकि तुम्हीं सारे धनोंके प्रेरक हो। शीघ्र ही हमारी सन्तानोंको प्रतिष्ठित करो

१० अग्नि, समर्थन और हिंसा-रहित रक्षाके द्वारा हमारे पुत्र पौत्रका पालन करो। हमारे यज्ञोंमें तुम देवोंका क्रोध और मनुष्योंका विद्वेष हटाओ।

११ बन्धुगण, नये मन्त्रोंके साथ तुम दूध देनेवाली गायके पास आओ। इसके पश्चात् उसे इस प्रकार छुड़ाओ, ताकि उसकी कोई हानि न होने पावे।

या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥१२॥

भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता ।
धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥१३॥

तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥१४॥

त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसूकरत्सुवेदा नो वसू करत् ॥१५॥

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे ।
अघा अर्यो अरातयः ॥१६॥

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥१७॥

---

१२ जो सहिष्णु स्वाधीन-तेजा, मरुतोंका अमरण-हेतु पयोरूप अन्न देती है, जो वेग मरुतोंके सुख-साधनमें रहती है और जो वृष्टि-जलके साथ सुख वर्षण करके अन्तरीक्ष मार्गमें घूमती है, उस धेनुके पास आओ।

१३ मरुतो, भरद्वाजके लिये विशेष दूध देनेवाली गाय और सबोंके खानेके लिये यथेष्ट अन्न-इन दो सुखोंका दोहन करो।

१४ मरुतो, तुम इन्द्रके महान् कर्मोंके अनुष्ठाता हो, वरुणकी तरह बुद्धिमान हो, अर्यमाके समान स्तुति-पात्र हो, विष्णुके समान दानशील हो ; धनके लिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

१५ मरुद्गण सैकड़ों-हजारों तरहके धन हमें एक ही समय दें इसके लिये मैं उपकारकारी हूं अप्रतिहत-प्रभाव और पुष्टिकारक मरुतोंके दीप्त बलकी स्तुति करता हूं। वे ही मरुद्गण हमारे परम गूढ़ धन प्रकट करें और समस्त धन सुलभ करें।

१६ हे पूषन्, तुम शीघ्र मेरे पास आओ। दीप्तिमान देव भीषण आक्रमण करनेवाले शत्रुओंको पीड़ा पहुँचाओ। मैं भी तुम्हारे कानके पास आकर गुण गान करता हूं।

१७ पूषन् तुम कौओं (सन्तानों) के आश्रय भूत वनस्पतिको (मुझे) नष्ट नहीं करना। मेरे निन्दकोंको पूर्णतः नष्ट कर दो। जैसे व्याध चिड़ियोंको फसानेके लिये जाल फैलाता है, वैसे शत्रु लोग, किसी तरह भी, मुझे नहीं बाँध सकें।

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् ।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥१८॥
पुरो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥१९॥
वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥२०॥
सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥२१॥
सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२॥

१८ पूषन्, दधि पूर्ण और निश्छिद्र चर्मकी तरह तुम्हारी मित्रता सदा अविच्छिन्न रहे।

१९ पूषन्, तुम मनुष्योंको अतिक्रम करके अवस्थित हो। धनमें देवोंके बराबर हो। इसलिये संग्राममें हमारी ओर अनुकूल दृष्टि रखना। प्राचीन समयमें तुमने मनुष्योंकी जैसे रक्षा की थी, वैसे ही इस समय हमारी रक्षा करो।

२० कम्पनकारी और भली भाँति स्तुति पात्र मरुतो, तुम्हारी जो प्रशस्त वाणी देवों और यजमानों को वाञ्छित धन देती है, वही सत्य और सूनृत वाणी हमारी पथ प्रदर्शिका बने।

२१ जिन मरुतोंके सारे कार्य दीप्तिमान् सूर्यकी तरह सहसा आकाशमें व्याप्त होते हैं, वे ही मरुद्गण दीप्त, शत्रु विजयी, पूजनीय और शत्रु-नाशक बल धारण करते हैं। शत्रु-नाशक बल सर्वापेक्षा प्रशस्त होता है।

२२ एक ही बार स्वर्ग उत्पन्न हुआ और एक ही बार पृथिवी। एक ही बार पृश्णि (पृश्नि) या मरुतोंकी माता गायसे दूध दुहा गया है। इनके समय और कुछ उत्पन्न नहीं हुआ।

४६ सूक्त

विश्वदेवगण देवता। भरद्वाजके पुत्र ऋजिश्वा ऋषि। शक्वरी और त्रिष्टुप् छन्द।

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१॥
विशोविश ईड्य मध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥२॥
अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३॥
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४॥
स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥५॥

---

१ मैं नये स्तोत्रोंके द्वारा देवों और स्तोताओंके सुखाभिलाषी मित्र और वरुणकी स्तुति करता हूँ। अतीव बली मित्र, वरुण और अग्नि इस यज्ञमें आवें और हमारे स्तोत्र सुनें।

२ जो अग्नि प्रत्येक व्यक्तिके यज्ञमें पूजा-पात्र हैं, जो कार्य करके अहंकार नहीं करते, जो स्वर्ग और पृथिवी नामक दो कन्याओंके स्वामी हैं, जो स्तोताके पुत्र-भूत शक्ति-पुत्र हैं और जो यज्ञके प्रदीप्त केतु-रूप हैं, मैं उन्हीं अग्निका यज्ञ करनेके लिये यजमानको उत्तेजित करता हूँ।

३ दीप्तिमान् सूर्यकी विभिन्न-रूपिणी दो कन्याएँ (दिन और रात्रि) हैं। इनमें एक नक्षत्र-समूह और एक सूर्यके द्वारा समुज्ज्वल है। परस्पर-विरोधी, पृथक् रूपसे संचरण-शील, पवित्रता-विधायक और हमारे स्तुति-भाजन ये दोनों हमारा स्तोत्र सुनकर प्रसन्न हों।

४ हमारी महती स्तुति महाधन-सम्पन्न, अखिल लोकोंके वन्दनीय और रथके पूरक वायुके सामने उपस्थित हो। हे सम्यक् यज्ञ-पात्र, समुज्ज्वल रथपर आरूढ़, जुते हुए अश्वोंके अधिपति और दूरदर्शी मरुत्, तुम मेधावी स्तोताको धनके द्वारा संवर्द्धित करो।

५ जो रथ सोचनेके साथ अश्वसे जुत जाता है, अश्विनी-कुमारोंका वही समुज्ज्वल रथ दीप्ति द्वारा मेरी देहको आच्छादित करे। नेता अश्विनीकुमारो, रथपर चढ़कर, अपने स्तोताका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये उसके घर जाना।

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीभिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥६॥
पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥७॥
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानलर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियन्धियं सीषधाति प्र पूषा ॥८॥
प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥९॥
भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्त मृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥१०॥
आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११॥

---

६ वर्षा करनेवाले पर्जन्य और वायु, अन्तर क्षस्थ तुम प्राप्य जल भेजो। ज्ञान-सम्पन्न, स्तोत्र सुननेवाले और संसार-स्थापक मरुतो, जिसके स्तोत्रसे तुम प्रसन्न होते हो, उसके सारे प्राणियोंको समृद्ध करते हो।

७ पवित्रता-कारिणी, मनोहरा, विचित्र-गमना और वीर पत्नी सरस्वती हमारे यागादि कर्मोंका निर्वाह करें। वह देव-पत्नियोंके साथ प्रसन्न होकर स्तोताको छेद-रहित, शीत और वायुके लिये दुर्द्धर्ष गृह और सुख प्रदान करें।

८ स्तोता, वाञ्छित फलके वशमें आकर सारे मार्गके अधिपति पूजनीय पूषाके पास, स्तोत्रके साथ, उपस्थित होओ। वह हमें सोनेका सींगवाला गायें दे। पूषा हमारे सारे कार्य पूर्ण करें।

९ देवोंको बुलानेवाले और दीप्तिमान् अग्नि त्वष्टाका यज्ञ करें। त्वष्टा सबके आदि विभाजक, प्रसिद्ध अन्नदाता, शोभन-पाणि, दानशील, महान्, गृहस्थोंके यजनीय और अनायास आह्वानके योग्य हैं।

१० स्तोता, दिनमें इन सारे स्तोत्रोंके द्वारा भुवन-पालक रुद्रको वर्द्धित करो और रात्रिमें रुद्रको संवर्द्धना करो।

११ नित्य तरुण, ज्ञान-सम्पन्न और पूजनीय मरुद्गण, जहाँ यजमान स्तोत्र करता है, वहाँ आओ। नेताओ, तुम इसी प्रकार समृद्ध होकर और चलनेवाली रश्मियोंकी तरह व्याप्त होकर वृष्टि द्वारा विरल-पादप वनोंको तृप्त करो।

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२॥
यो रजाँसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा तना च ॥१३॥
तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४॥
नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो
अदेवीरभि च क्रमाम विश आदेवीरभ्यश्नवाम ॥१५॥

---

५० सूक्त

पञ्चम अनुवाक । नाना देवता । ऋजिश्वा ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्त्सवितारं भगं च ॥१॥

१२ जैसे पशु-पालक गोयूथको शीघ्र परिचालित करता है, वैसे ही पराक्रान्त, बली और द्रुत-गामी मरुतोंके पास शीघ्र स्तोत्र प्रेरित करो। जैसे अन्तरिक्ष नक्षत्र-मण्डल द्वारा संश्लिष्ट है, वैसे ही वे ही मरुद्गण मेधावी स्तोताके सुश्राव्य स्तोत्र द्वारा अपनी देहको संश्लिष्ट करें।

१३ जिन विष्णुने उपद्रुत मनुके लिये त्रिपाद पराक्रमके द्वारा पार्थिव लोकोंको नाप डाला था, वहां तुम्हारे द्वारा प्रदत्त गृहमें निवास करें और हम धन, देह और पुत्र द्वारा अनुभव करें।

१४ हमारे मन्त्रों द्वारा स्तूयमान अहिर्बुध्न, पर्वत और सविता हमें जलके साथ अन्न दें। दानशील विश्वदेवगण हमें औषधिके साथ वही अन्न दें। सुबुद्धिदेव भग हमें धनके लिये प्रेरित करें।

१५ विश्वदेवगण, तुम हमें रथ-युक्त और असङ्ख्य अनुचरोंके साथ अनेक पुत्रोंसे युक्त यज्ञका साधन भूत गृह और अक्षय्य अन्न प्रदान करो, जिसके द्वारा हम स्पर्द्धा करके शत्रुओं और देव-शून्य सैन्योंको पराजित करेंगे और देव-भक्तोंको आश्रय प्रदान करनेमें समर्थ होंगे।

१ देवो, मैं सुखके लिये स्तोत्रके साथ अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, शत्रु-हन्ता और सेव्य अर्यमा, सविता, भग और समस्त रक्षक देवोंको बुलाते हैं।

सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितृननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥२॥
उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥३॥
आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥४॥
मिम्यक्ष येषु रोदसी देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्द्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५॥
अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥६॥

२ दीप्ति सम्पन्न सूर्य, दक्षसे सम्भूत शोभन-दीप्ति शाली देवोंको हमारे अनुकूल करो। द्विजन्मा (स्वर्ग और पृथिवीसे उत्पन्न) देवगण यज्ञ-प्रिय, सत्यवादी, धन सम्पन्न, यागार्ह और अग्नि-जिह्व होते हैं।

३ स्वर्ग और पृथिवी, तुम अधिक बल दो। स्वर्ग और पृथिवी, हमारी स्वतन्त्रताके लिये विशाल गृह हमें दो। ऐसा उपाय करो कि, हमारे पास अतुल ऐश्वर्य हो जाय। सदय देव-द्वय, हमारे घरसे पापको हटाओ।

४ गृह-दाता और अजेय रुद्रपुत्रगण इस समय बुलाये जाकर हमारे पास आवें। ये महान और क्षुद्र क्लेशके समय हमें सहायता देंगे; इसलिये हम मरुतोंको बुलाते हैं

५ जिन मरुतोंके साथ दीप्तिमान् स्वर्ग और पृथिवी संश्लिष्ट हैं, जिन मरुतोंकी सेवा, धनके द्वारा, स्तोताओंको समृद्ध करनेवाले पूषा करते हैं, ऐसे तुम, मरुतो, जिस समय हमारा आह्वान सुनकर आते हो, उस समय तुम्हारे विभिन्न मार्गोंमें अवस्थित प्राणी काँप जाते हैं।

६ स्तोता, अभिनव स्तुति द्वारा स्तुति-पात्र वीर इन्द्रकी स्तुति करो। इस प्रकार स्तुति किये जानेपर इन्द्र हमारा आह्वान सुनें; हमें प्रभूत अन्न दें।

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥७॥
आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥८॥
उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेवसा सुवीरः ॥९॥
उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥१०॥
ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥११॥
ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥१२॥

७ वारि-राशि तुम मानव-हितैषी हो; इसलिये हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिये अनिष्ट-घातक और रक्षक अन्न प्रदान करो। तुम सारे उपद्रवोंको शान्त और विदूरित करो। तुम माताओंकी अपेक्षा श्रेष्ठ चिकित्सक हो; तुम स्थावर जङ्गम-रूप संसारके उत्पादक हो।

८ जो उषा-मुखकी तरह यजमानके पास अभिलषित धन प्रकट करते हैं, वे ही रक्षक, हिरण्य-पाणि और पूजनीय सविता हमारे पास आवें।

९ शक्ति पुत्र अग्नि, हमारे यज्ञमें आज देवोंको ले आओ। मैं सदा तुम्हारी उदारताका अनुभव करूँ। देव, तुम्हारी रक्षाके कारण मैं शोभन पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त बनूँ।

१० हे प्राज्ञ अश्विनी-कुमारो, तुम शीघ्र परिचर्यावाले मेरे स्तोत्रके पास आओ। जैसे अन्धकारसे तुमने अत्रि ऋषिको छुड़ाया था, वैसे ही हमें भी छुड़ाओ। नेतृद्वय तुम हमें युद्ध दुःखसे बचाओ।

११ देवो, तुम हमें दीप्ति युक्त, बलकारी, पुत्रादि-सम्पन्न और सुप्रसिद्ध धन प्रदान करो। स्वर्गीय (आदित्यगण), पार्थिव (वसुगण), गोजात (पृश्नि-पुत्र मरुद्गण) और जल जात (रुद्रगण), हमारे मनोरथको पूर्ण कर सुखी करो।

१२ रुद्र, सरस्वती, विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, वाज और विधाता समान-रूपसे प्रसन्न होकर हमें सुखी करें। पर्जन्य और वायु हमारे अन्नको बढ़ावें।

उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥१३॥
उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥१४॥
एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५॥

५१ सूक्त

नाना देवता । ऋजिश्वा ऋषि । उष्णिक्, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शनमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१॥
वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥२॥

१३ प्रसिद्ध देव सविता, भग और वारि-राशिके पौत्र दानशील अग्नि हमारी रक्षा करें । देवों और देव स्त्रियोंके साथ समान रूपसे प्रसन्न हुए त्वष्टा, देवोंके साथ समान-प्रसन्न स्वर्ग तथा समुद्रोंके साथ समान-प्रसन्न पृथिवी हमारी रक्षा करें ।

१४ अहिर्बुध्न अज-एक-पाद्, पृथिवी और समुद्र हमारे स्तोत्र सुनें । यज्ञके समृद्धिकर्त्ता, हमारे द्वारा आहूत और स्तुत, मन्त्र-प्रतिपाद्य और मेधावी ऋषियों द्वारा स्तूयमान विश्वदेवगण हमारी रक्षा करें ।

१५ भरद्वाज-गोत्रीय मेरे पुत्र इसी प्रकारके पूजा-साधक स्तोत्र द्वारा देवोंकी स्तुति करते हैं । यज्ञार्ह देवो, तुम हव्य द्वारा हुत, गृहदाता और अजेय हो । तुम देव-पत्नियोंके साथ नियत पूजित होते हो ।

१ सूर्यकी प्रसिद्ध, प्रकाशक, विस्तृत तथा मित्र और वरुणकी प्रिय, अप्रतिहत, निर्मल और मनोहर दीप्ति प्रकाशित होकर अन्तरीक्षमें भूषणकी तरह शोभा पा रही है ।

२ जो तीनों ज्ञातव्य भुवनोंको जानते हैं, जो ज्ञानशाली है और देवोंके दुर्जेय जन्मको जानते हैं, वही सूर्य मनुष्योंके सत् और असत् कर्मोंका परिदर्शन करते हैं और स्वामी होकर मानवोंके अनुकूल मनोरथको पूर्ण करते हैं ।

स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥३॥
रिशादसः सत्पतींरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु ॥४॥
द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥५॥
मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥६॥
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७॥
नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८॥

३ मैं यज्ञ-रक्षक और शोभन-जन्मा अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमा और भगकी स्तुति करता हूं। जिनके कार्य अप्रतिहत हैं, जो धन-शाली और संसारको पवित्र करने वाले हैं, उनके यशका मैं कीर्तन करता हूं।

४ हे हिंसकोंको फेंकनेवाले, साधुओंके पालक, अबाध-प्रभाव, शक्तिमान् अधीश्वर, शोभन-गृह-दाता, नित्य तरुण, अनाव ऐश्वर्य-शाली और स्वर्गके नेता अदिति-पुत्रो, मैं अदितिकी शरण लेता हूं; क्योंकि वह मेरी परिचर्या चाहती है।

५ हे पिता स्वर्ग, माता पृथिवी, भ्राता अग्नि और वसुओ, तुम हमें सुखी करो। हे अदितिके पुत्रो और अदिति, इकट्ठे होकर तुम हमें अधिक सुख दो।

६ यागयोग्य देवो, तुम हमें वृक और वृकी (अरण्य-कुक्कुर और कुक्कुरी अथवा दस्यु और उसकी पत्नी) के हाथमें नहीं जाने देना। तुम हमारी देह बल और वाक्यके संचालक हो।

७ देवो, हम तुम्हारे ही हैं। हम दूसरेके पापों क्लेशका अनुभव न करें। वसुओ, जिसका तुम निषेध करते हो, उसका अनुष्ठान हम न करें। विश्वदेवगण, तुम विश्वके अधिपति हो; इसलिये ऐसा उपाय करो कि, शत्रु अपना देहका अनिष्ट कर डाले।

८ नमस्कार सबसे बड़ी वस्तु है; इसलिये मैं नमस्कार करता हूं। नमस्कार ही स्वर्ग और पृथिवीको धारण करता है; इसलिये मैं देवोंको नमस्कार करता हूं। देवता लोग नमस्कारके वशीभूत हैं; इसलिये मैं नमस्कार द्वारा किये हुए पापोंका प्रायश्चित्त करता हूं।

ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९॥
ते हि श्रेष्ठ वर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१०॥
ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन्पूषा भगो अदितिः पञ्चजनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११॥
नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥१२॥
अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥१३॥
ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।
जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः ॥१४॥

९ यज्ञ-पात्र देवो, मैं नमस्कारके साथ तुम लोगोंके पास प्रणत हो रहा हूं; क्योंकि तुम यज्ञके नेता, विशुद्ध बलसे युक्त, देव-यजन-गृहके निवासी अजेय बहुदर्शी, अधिनायक और महान् हो।

१० वे अच्छा तरहसे दीप्ति सम्पन्न हैं। वे ही हमारे सारे पापोंका नाश करें। वरुण, मित्र और अग्नि शोभन बलवाले, सत्यकर्मा और स्तोत्र-निरत व्यक्तियोंके एकान्त पक्षपाती हैं।

११ इन्द्र, पृथिवी, पूषा, भग, अदिति और पञ्चजन (देव, गन्धर्व आदि) हमारी वास-भूमिको वर्द्धित करें वे हमारे सुखदाता, अन्नदाता, सत्पथ-प्रदर्शक, शोभन रक्षा करनेवाले और आश्रयदाता हों।

१२ देवो, भरद्वाजगोत्रीय यह होता शीघ्र ही एक स्वर्गीय निवास (या दीप्तिमान् गृह) प्राप्त करें; क्योंकि वह तुम्हारी कृपा चाहता है। हव्यदाता ऋषि, अन्य यजमानोंके साथ, धनार्थी होकर देवोंका स्तुति करते हैं।

१३ अग्नि, तुम कुटिल, चोर और दुष्ट शत्रुको दूर करो। हे साधुओंके रक्षक, हमें सुख दो।

१४ हे सोम हमारे ये अभिषव-पाषाण तुम्हारी मित्रता चाहते हैं। तुम भोजन-निपुण पणिका संहार करो; क्योंकि वह वास्तविक दस्यु है।

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥१५॥
अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६॥

५२ सूक्त

नाना देवता । ऋजिश्वा ऋषि । त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती छन्द ।

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१॥
अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२॥
किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान्ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥३॥

१५ इन्द्रादि देवो, तुम दान-शील और दीप्ति-शाली हो। मार्गमें तुम हमारे रक्षक और सुख-दाता बनो ।

१६ हम उस पवित्र और सरल मार्गमें आ गये हैं, जिसमें जानेपर शत्रुका परिहार और धनका लाभ होता है।

१ मैं इसे (ऋजिश्वा के यज्ञको) स्वर्गीय अथवा देवोंके उपयुक्त नहीं समझता। यह मेरे द्वारा अनुष्ठित यज्ञ अथवा दूसरों द्वारा सम्पादित यज्ञकी तुलना करेगा यह भी नहीं समझता । इसलिये सारे महान् पर्वत उसको (अतियाज ऋषिको) पीड़ित करें । अतियाजके ऋत्विक् भी अत्यन्त दीनता प्राप्त करें ।

२ मरुतो, जो व्यक्ति तुमको हमारी अपेक्षा श्रेष्ठ समझता है और मेरे किये स्तोत्रकी निन्दा करता है, सारी शक्तियाँ उसकी अनिष्टकारिणी बनें और स्वर्ग उस ब्राह्मण द्वेषीको दग्ध करे।

३ सोम, लोग तुम्हें क्यों मन्त्र-रक्षक कहते हैं ? और, क्यों तुम्हें निन्दासे हमें उद्धार करनेवाला बताया जाता है ? शत्रुओं द्वारा हमारे निन्दित होनेपर तुम क्यों निरपेक्ष भावसे देखते रहते हो ? ब्रह्मण-विद्वेषीके प्रति अपना सन्तापक आयुध फेंको ।

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥४॥
विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथ करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥
इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६॥
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत ॥७॥
यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥८॥
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ॥९॥
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥१०॥
स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान्मित्रो अर्यमा । इमा हव्या जुषन्त नः ॥११॥
इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥१२॥

---

४ आविर्भूत उषाएं मेरी रक्षा करें। सारा स्फीत नदियाँ मेरी रक्षा करें। निश्चल पर्वत मेरी रक्षा करें। देव-यजन-कालमें यज्ञमें उपस्थित पितर और देवता मेरी रक्षा करें।

५ हम सदा स्वतन्त्र-चित्त हों। हम सदा उदयोन्मुख सूर्यके दर्शन करें। देवोंके पास हमारा हव्य ढोने वाले यज्ञके अधिष्ठाता और महैश्वर्य-शाली अग्नि हमें उक्त प्रकारसे बनावें।

६ इन्द्र और वारि-राशिके द्वारा स्फीत सरस्वती नदी, रक्षाके साथ, हमारे पास आवें। ओषधियोंके साथ पर्जन्य हमारे लिये सुख-दाता हों। पिताकी तरह अग्नि अनायास स्तुत्य और आह्वान-योग्य हों।

७ विश्वदेवगण, आओ, मेरे आह्वानको सुनो और बिछे हुए कुशोंपर बैठो।

८ देवो, जो व्यक्ति घृतसे मिले हव्यके द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, उसके पास तुम सब आओ।

९ जो अमरके पुत्र हैं, वही विश्वदेवगण हमारा स्तोत्र सुनें और हमें सुख दें।

१० यज्ञके समृद्धि-कारी और यथासमय स्तोत्र-श्रवण-कारी विश्वदेवगण, अच्छी तरहसे अपने-अपने उपयुक्त दुग्ध ग्रहण करें।

११ मरुतोंके साथ इन्द्र, त्वष्टाके साथ मित्र और अर्यमा हमारे स्तोत्र और समस्त हव्यको ग्रहण करें।

१२ देवोंको बुलानेवाले अग्नि, देवोंमें जो महायोग्य हैं, उन्हें जानकर उनकी मर्यादाके अनुसार हमारी इस यज्ञ-क्रियाका सम्पादन करो।

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३॥
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४॥
ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५॥
अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥१६॥
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७॥

---

१३ विश्वदेवगण, तुम अन्तरिक्ष, भूलोक वा स्वर्गमें रहते हो। हमारा आह्वान सुनो। अग्नि-रूप जिह्वाद्वारा वा किसी भी प्रकारसे हमारे इस यज्ञको ग्रहण करो। सब लोग इन बिछे कुशोंपर बैठकर और सोम-रस पानकर उल्लसित होओ।

१४ यज्ञार्ह विश्वदेवगण, स्वर्ग, पृथिवी और जल-राशिके पौत्र अग्नि हमारे स्तोत्रको सुनें। देवो, जो स्तोत्र तुम्हें अग्राह्य है, उसका हम उच्चारण न करें। हम तुम्हारे निकटस्थ होकर और सुख प्राप्त कर उल्लसित हों।

१५ पृथिवी, स्वर्ग अथवा अन्तरीक्षमें प्रादुर्भूत, महान् और संहारक शक्तिसे युक्त देवगण दिनरात हमें और हमारी सन्ततियोंको अन्न दें।

१६ अग्नि और पर्जन्य, हमारे यज्ञ-कार्यकी रक्षा करो। तुम अनायास आह्वानके योग्य हो; इसलिये इस यज्ञमें हमारा स्तोत्र सुनो। तुममेंसे एक व्यक्ति अन्न देते हैं और दूसरे गर्भ उत्पन्न करते हैं। इसलिये तुम हमें सन्ततिके साथ अन्न दो।

१७ पूजनीय विश्वदेवगण, आज हमारे इस यज्ञमें, कुश बिछनेपर, अग्नि प्रज्वलित होनेपर और मेरे स्तोत्रोच्चारण और नमस्कारके साथ तुम्हारी सेवा करनेपर हव्य द्वारा तुम तृप्ति प्राप्त करो।

५३ सूक्त

पूषा देवता । भरद्वाज ऋषि । अनुष्टुप् और गायत्री छन्द ।

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥
अभि नो नर्यं वसुवीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥२॥
अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय । पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥३॥
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः ॥४॥
परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५॥
वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥६॥
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७॥
यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८॥
या ते अष्ट्रा गो ओपशाघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥९॥

---

१ मार्ग-पति पूषन्, कर्मानुष्ठान और अन्न-लाभके लिये रण-स्थलमें रथकी तरह हम तुम्हें अपने अभिमुख करते हैं ।

२ पूषन, हमारे यहाँ मानव-हितैषी, धन-दानमें मुक्त हस्त और विशुद्ध दानवाला एक गृहस्थ भेजो ।

३ दीप्ति-सम्पन्न पूषन्, कृपणको दान देनेके लिये उत्तेजित करो और उनके हृदयको कोमल करो ।

४ प्रचण्ड-बल-शाली पूषन्, अन्न-लाभके लिये सारे पथ परिष्कृत करो । विघ्नकारी चोर आदिका संहार करो और हमारे अनुष्ठानोंको सफल करो ।

५ ज्ञानी पूषन्, सूक्ष्म लोहाग्रदण्ड (आरा) से पणियों या लुब्धकोंका हृदय विद्ध करो और उन्हें हमारे वशमें करो ।

६ पूषन, सूक्ष्म लोहाग्रदण्ड (प्रतोद या आरा) से पणि या चोरका हृदय चीरो । उसके हृदयमें सद्भावना भरो और उसे मेरे वशमें करो ।

७ ज्ञानी पूषन्, चोरोंके हृदयोंको रेखाङ्कित करो । उनके हृदयोंकी कठोरताको भली भाँति कम करो और उन्हें हमारे वशमें करो ।

८ दीप्ति-सम्पन्न पूषन्, तुम अन्न-प्रेरक प्रतोद धारण करो और उसके द्वारा सारे लोभी व्यक्तियोंका हृदय रेखाङ्कित करो एवम् उसकी कठोरता शिथिल करो ।

९ दीप्तिशाली पूषन्, तुम जिस अस्त्रसे धेनुओं और पशुओंको परिचालित करते हो, तुम्हारे उसी अस्त्रसे हम उपकारकी प्रार्थना करते हैं ।

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुहि वीतये ॥१०॥

५४ सूक्त

पूषा देवता। भरद्वाज ऋषि। गायत्री छन्द।

सम्पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति। य एवेदमिति ब्रवत् ॥१॥
समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति। इम एवेति च ब्रवत् ॥२॥
पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽवः पद्यते। नो अस्य व्यथते पविः ॥३॥
यो अस्मै हविषा विधन्न तं पूषापि मृष्यते। प्रथमो विन्दते वसु ॥४॥
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः। पूषा वाजं सनोतु नः ॥५॥
पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः। अस्माकं स्तुवतामुत ॥६॥
माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं संशारि केवटे। अथारिष्टाभिरागहि ॥७॥

१० पूषन्, हमारे उपभोगके लिये हमारे याग-कर्मको गौ, अश्व, अन्न और परिवारकोंका उत्पादक करो।

१ पूषन्, तुम हमें एक ऐसे विलक्षण व्यक्तिसे मिलाओ, जो हमें वस्तुतः पथ-प्रदर्शन करावेगा और जो हमारे अपहृत द्रव्यको मिला देगा।

२ हम पूषाकी कृपासे ऐसे व्यक्तिसे मिलें, जो सारे गृहमें दिखावेगा और कहेगा कि, ये ही तुम्हारे खोये हुए पशु हैं।

३ पूषाका आयुध - चक्र विनष्ट नहीं होता। इस चक्रका कोश हीन नहीं होता और इसकी धार कुण्ठित नहीं होती।

४ जो व्यक्ति हव्य द्वारा पूषाकी सेवा करता है, उसका पूषा जरा भी अपकार नहीं करते और प्रधानतः वही व्यक्ति धन पाता भी है।

५ रक्षाके लिये हमारी गायोंका पूषा अनुसरण करें। वह हमारे अश्वोंकी रक्षा करें। वह हमें अन्न दें।

६ पूषन्, रक्षाके लिये सोमका अभिषव करनेवाले यजमानकी गायोंका अनुसरण करो और स्तोत्र उच्चारण करनेवाले हमारी गायोंका भी अनुसरण करो।

७ पूषन्, हमारा गोधन नष्ट न करने पावे। यह व्याघ्रादि द्वारा निहत न होने पावे। यह कूएँमें न गिरे। इसलिये तुम अहिंसित धेनुओंके साथ सायंकाल आओ।

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥८॥
पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥९॥
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१०॥

५५ सूक्त

पूषा देवता । भरद्वाज ऋषि । गायत्री छन्द ।

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव ॥१॥
रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥२॥
रायो धारा स्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोऽधीवतः सखा ॥३॥
पूषणं न्व१ जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥४॥

८ हमारे स्तोत्रोंको सुननेवाले, दारिद्र्य-नाशक, अविनष्ट-धन और सारे संसारके अधिपति पूषाके पास हम धनकी प्रार्थना करते हैं।

९ पूषन्, जबतक हम तुम्हारी उपासनामें लगे रहते हैं, तबतक हम कभी मारे न जायँ। इस समय हम तुम्हारी स्तुति करके वैसे ही हों।

१० पूषा अपने दाहिने हाथसे हमारे गोधनको विपथगामी होनेसे बचावें। वह हमारे नष्ट गोधनको फिर ले आवें।

१ हे दीप्ति-सम्पन्न प्रजापति-पुत्र पूषन्, तुम्हारा स्तोता मेरे पास आवे। हम दोनों मिलें। तुम हमारे यज्ञके नेता बनो।

२ हम अपने रथि-श्रेष्ठ जूड़ावान् (कपर्दी), अतुल ऐश्वर्योंके अधिपति और अपने मित्र पूषाके पा धनकी प्रार्थना करते हैं।

३ दीप्ति-शाली पूषन्, तुम धनके प्रवाह हो, धनकी राशि हो और छाग ही तुम्हारे अश्वका कार्य करता है। तुम प्रत्येक स्तोताके मित्र हो।

४ आज हम उन्हीं छाग-वाहन और अन्नयुक्त सूर्य वा पूषाकी स्तुति करते हैं, जिन्हें लोग भगिनी या उषाका प्रणयी अथवा जार कहते हैं।

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ।५॥
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥६॥

५६ सूक्त

पूषा देवता । भरद्वाज ऋषि । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥१॥
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥
उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥३॥
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४॥
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात्पूषन्नसि श्रुतः ॥५॥
आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥६॥

५ रात्रि-रूपिणी माताके पति पूषाकी हम स्तुति करते हैं । अपनी भगिनी (उषा) के जार पूषा (सूर्य) हमारा स्तोत्र सुनें । इन्द्रके सहोदर पूषा हमारे मित्र हों ।

६ रथमें नियुक्त छागगण स्तोताओंके आश्रय पूषाका रथ ढोते हुए उन्हें यहाँ ले आवें ।

१ जो पूषाको घी-मिले जौके सत्तूका भोगी कहकर उनकी स्तुति करता है, उसे अन्य देवोंकी स्तुति नहीं करनी पड़ती ।

२ रथि-श्रेष्ठ, साधुओंके रक्षक और सुप्रसिद्ध देव इन्द्र अपने मित्र पूषाकी सहायतासे शत्रु-संहार करते हैं ।

३ चालक और रथि-श्रेष्ठ पूषा सूर्यके हिरणमय रथका चक्र नियत परिचालित करते हैं ।

४ हे बहुलोक-वन्दनीय, मनोहर-मूर्ति और ज्ञानी पूषन, आज हम जिस धनको लक्ष्य करके तुम्हारी स्तुति करते हैं, उसी वांछित धनको हमें प्रदान करो ।

५ गोकामी इन समस्त मनुष्योंको गोलाभ कराओ । पूषन् तुमने दूर देशमें भी प्रसिद्धि पायी है ।

६ पूषन्, हम आज और कलके यज्ञोंके सम्पादनके लिये तुम्हारी उसी रक्षाको चाहते हैं । वह रक्षा पापसे दूर और धनके पास है ।

५७ सूक्त

इन्द्र और पूषा देवता। भरद्वाज ऋषि। गायत्री छन्द।

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये। हुवेम वाजसातये ॥१॥

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम्। करम्भमन्य इच्छति ॥२॥

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता। ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥३॥

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः। तत्र पूषा भवत्सचा ॥४॥

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव। इन्द्रस्य चा रभामहे ॥५॥

उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः। मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥६॥
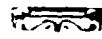
५८ सूक्त

पूषा देवता। भरद्वाज ऋषि। जगती और त्रिष्टुप् छन्द।

शुक्रन्ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।

विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥१॥

---

१ हे इन्द्र और पूषन्, अपने मङ्गलके लिये आज हम तुम्हारी मित्रता और अन्नकी प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाते हैं।

२ तुममेंसे एक (इन्द्र) पात्र-स्थित अभिषुत सोमका पान करनेके लिये जाते हैं और दूसरे (पूषा) जौका सत्तू खानेकी इच्छा करते हैं।

३ एकके वाहन छाग हैं और दूसरेके वाहन स्थूल-काय दो अश्व हैं। दूसरे (इन्द्र) इन्हीं दोनों अश्वोंके साथ वृत्रासुरका संहार करते हैं।

४ जिस समय अतिशय वर्षक इन्द्र महावृष्टि करते हैं उस समय इनके सहायक पूषा होते हैं।

५ हम वृक्षकी सुदृढ़ शाखाकी तरह पूषा और इन्द्रकी कृपा-बुद्धिके ऊपर निर्भर रहते हैं।

६ जैसे सारथि रश्मि (लगाम) खींचता है, वैसे ही हम भी, अपने प्रहृष्ट कल्याणके लिये, पूषा और इन्द्रको अपने पास खींचते हैं।

१ पूषन्, तुम्हारा यह रूप (दिन) शुक्लवर्ण है और अन्य रूप (रात्रि) केवल यजनीय है, इस प्रकार दिन और रात्रि रूप विभिन्न प्रकारके हैं। तुम सूर्यकी तरह प्रकाशमान हो; क्योंकि तुम अन्नदाता हो और सब प्रकारके ज्ञान धारण करते हो। इस समय तुम्हारा कल्याणवाही दान प्रकाशित हो।

अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियं जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२॥
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥३॥
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इलस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥४॥

५६ सूक्त

इन्द्र और अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । अनुष्टुप् और बृहती छन्द ।

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥१॥
बलित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥२॥

---

२ जो छाग वाहन और पशु-पालक हैं, जिनका गृह अन्नसे परिपूर्ण है, जो स्तोताओंके प्रीति-दाता हैं, जो अखिल भुवनोंके ऊपर स्थापित हैं, वही देव (पूषा) सूत्र-रूपसे सारे प्राणियोंको प्रकाशित करके और अपने हाथसे आरा उठाकर नभोमण्डलमें जाते हैं ।

३ पूषन्, तुम्हारी जो सारी हिरण्मयी नौकाएं समुद्र-मध्यस्थित अन्तरीक्षमें चलती हैं, उनके द्वारा तुम सूर्यका दूत-कार्य करते हो । तुम हव्यरूप अन्न चाहते हो । स्तोता लोग तुम्हें स्वेच्छासे दिये पशु आदिके द्वारा वशीभूत करते हैं ।

४ पूषा स्वर्ग और पृथिवीके शोभन बन्धु हैं, अन्नके अधिपति हैं, ऐश्वर्यशाली हैं, मनोहर मूर्त्ति हैं । वह बलशाली, स्वेच्छासे दिये पशु आदिके द्वारा प्रसन्नताके योग्य और शोभन गमन-कर्त्ता हैं । उन्हें देवोंने सूर्यको स्त्रीके पास भेजा था ।

१ इन्द्र और अग्नि, तुमने जो वीरता प्रकट की है, उसी वीरताका बखान हम, सोमरसके अभिषुत होनेपर, बड़े आग्रहके साथ करते हैं । देवद्वेष्टा असुर तुम्हारे द्वारा मारे गये हैं और तुम लोग अक्षत हो ।

२ इन्द्र और अग्नि, तुम लोगोंका जो जन्म-माहात्म्य प्रतिपादित होता है, वह सब यथार्थ और अतीव प्रशस्य है । तुम दोनोंके एक ही पिता हैं । तुम यमज भाई हो और तुम्हारी माता सर्वत्र विद्यमान है ।

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्तीइवादने ।
इन्द्राग्वग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवामहे ॥३॥

य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥४॥

इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥५॥

इद्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६॥

इन्द्राग्नी आहि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥७॥

इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥८॥

---

३ इन्द्र और अग्नि, जैसे द्रुतगामी दोनों अश्व भक्षणाय घासकी ओर जाते हैं, तुम भी उसी तरह, सोम-रसके अभिषुत होनेपर, एक साथ जाते हो। अपनी रक्षाके लिये आज हम वज्रधर और दानादि गुणसे युक्त इन्द्र और अग्निको इस यज्ञमें बुलाते हैं।

४ यज्ञके समृद्धिदाता इन्द्र और अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र प्रसिद्ध है। जो व्यक्ति सोम-रसके अभिषुत होनेपर प्रेम-रहित स्तोत्र द्वारा, कुत्सित रूपसे, तुम्हारी स्तुति करता है, उसका दिया सोम तुम नहीं छूते।

५ दीप्ति-सम्पन्न इन्द्र और अग्नि, जिस समय तुममेंसे सूर्यात्मक इन्द्र नाना प्रकारका गमन करनेवाले अश्वोंको जानकर, अग्निके साथ एक रथपर चढ़कर, जाते हैं, उस समय कौन मनुष्य तुम्हारे इस कार्यका विचार करेगा या जानेगा? (कोई भी नहीं)

६ हे इन्द्र और अग्नि, पाद-रहित यही उषा प्राणियोंके शिरोदेशको उत्तेजित करके और उनकी जिह्वाओंसे उच्च शब्द कराकर पादसम्पन्न और निद्रित जीवोंकी अभिमुख-वर्त्तिनी हो रही हैं और इसी प्रकार तीस पद (मुहूर्त्त) अतिक्रम करती हैं।

७ इन्द्र और अग्नि, योद्धा लोग दोनों हाथोंसे धनुष फैलाते हैं। इस महासंग्राममें, गौओंके अनुसन्धानके समय, हमें नहीं छोड़ना।

८ इन्द्र और अग्नि, हनन-परायण और आक्रमण कर्त्ता शत्रु हमें पीड़ित कर रहे हैं। उन्हें तुम दूर करो और उन्हें सूर्य-दर्शनसे भी वञ्चित करो (विनष्ट करो)।

इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥९॥
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥

६० सूक्त

इन्द्र और अग्नि देवता । भरद्वाज ऋषि । त्रिष्टुप्, गायत्री, बृहती और अनुष्टुप् छन्द ।

श्नथद् वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥१॥
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊह्ळाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२॥
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥३॥

---

९ इन्द्र और अग्नि, तुमलोग दिव्य और पार्थिव—सारे धनोंके अधिपति हो, इसलिये इस यज्ञमें हमें जीवन-पोषक सारे धन दो ।

१० स्तोत्र द्वारा आकर्षणीय इन्द्र और अग्नि, हमारे इस सोमरसका पान करनेके लिये आओ; क्योंकि तुमलोग स्तोत्रों और उपासनाओंसे युक्त आह्वान सुनते हो ।

१ जो विशाल धनके स्वामी हैं, जो बलात् शत्रुहन्ता हैं और जो अन्नाभिलाषी इन्द्र और अग्निकी सेवा करते हैं, वह शत्रु-संहार और अन्न-लाभ करते हैं ।

२ इन्द्र और अग्नि, तुमने अपहृत धेनुओं, वारि-राशि, सूर्य और उषाके लिये युद्ध किया था । इन्द्र, तुमने दिशाओं, सूर्य, उषाओं, विचित्र जल और गौओंको संसारके साथ योजित किया है । हे अश्वोंके अधिपति अग्नि, तुमने भी ऐसे कार्य किये हैं ।

३ हे वृत्र-हन्ता इन्द्र और अग्नि, तुम हमारे हव्यान्न द्वारा परिपुष्ट होनेके लिये शत्रु-नाशक बलके साथ हमारे सामने आओ । इन्द्र और अग्नि, तुम लोग अनिन्द्य और अत्युत्कृष्ट धनके साथ हमारे पास आविर्भूत होओ ।

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम्। इन्द्राग्नी न मर्धत ॥४॥
उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे। ता नो मृलात ईदृशे ॥५॥
हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती। हतो विश्वा अप द्विषः ॥६॥
इन्द्राग्नी युवामिमेऽभि स्तोमा अनूषत। पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥७॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा। इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥८॥
ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम्। इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९॥
तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१०॥
य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः। द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११॥
ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः। इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥१२॥

---

४ प्राचीन समयमें ऋषियों द्वारा जिनके सारे वीर-कार्य कीर्तित हुए हैं, मैं उन्हीं इन्द्र और अग्निको बुलाता हूँ। वे स्तोताओंकी हिंसा नहीं करते।

५ हम प्रचण्ड-बलशाली, शत्रुहन्ता इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं। वे हमें ऐसे युद्धमें कृत-कार्य करके सुखी बनावें।

६ साधुओंके रक्षक इन्द्र और अग्नि, धार्मिकों और अधार्मिकों द्वारा कृत समस्त उपद्रवोंका निवारण करते हैं। उन्होंने सारे विद्वेषियोंका संहार किया है।

७ इन्द्र और अग्नि, ये स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे सुखदाता इन्द्र और अग्नि, तुम इस अभि-षुत सोमको पियो।

८ नेता इन्द्र और अग्नि बहु-लोक-वाञ्छनीय और हव्यदाताके लिये उत्पन्न जो तुम्हारे घोड़े हैं, उन सबपर चढ़कर आओ।

९ नेता इन्द्र और अग्नि, इस सवनमें अभिषुत सोमरसका पान करनेके लिये आओ।

१० स्तोता, जो अग्नि अपनी शिखा द्वारा समस्त वनोंको ढक लेते हैं और ज्वाला-रूप जिह्वा द्वारा उन्हें काले कर देते हैं, तुम उन्हीं अग्निकी स्तुति करो।

११ जो मनुष्य प्रज्वलित अग्निमें इन्द्रके लिये सुखकर हव्य प्रदान करते हैं, इन्द्र उन्हीं व्यक्तिके दीप्ति-सम्पन्न अन्नके लिये कल्याणकर वारि-वर्षण करते हैं।

१२ इन्द्र और अग्नि, हमें बलकर अन्न दो और हमारे हव्यको बलवान करनेके लिये हमें वेगवान् अश्व दो।

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥
आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यैरुप गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥१४॥
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥१५॥

६१ सूक्त

सरस्वती देवता । भरद्वाज ऋषि । जगती, त्रिष्टुप् और गायत्री छन्द ।

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१॥
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥२॥

---

१३ हे इन्द्र और अग्नि, हम द्वारा तुम्हें अनुकूल करनेके लिये मैं तुम दोनोंको बुलाता हूँ । हव्य द्वारा तुरत तृप्ति करनेके लिये मैं तुम दोनोंको बुलाता हूँ । तुम दोनों अन्न और धनको देनेवाले हो; इसलिये मैं अन्न लाभके लिये दोनोंको बुलाता हूँ ।

१४ इन्द्र और अग्नि, तुम गौओं, अश्वों और विपुल धनके साथ हमारे सामने आओ । हम मित्रताके लिये मित्र भूत, दानादि गुणोंसे युक्त और सुख-प्रदाता इन्द्र और अग्निका आह्वान करते हैं ।

१५ इन्द्र और अग्नि, तुम सोमका अभिषव करनेवाले यजमानका आह्वान सुनो । हव्यकी इच्छा करो, आओ और मधुर सोमरसका पान करो ।

१ इन्हीं सरस्वती देवीने हव्यदाता वध्र्यश्वको वेगवान् तथा ऋण मोचक दिवोदास नामका एक पुत्र दिया है । उन्होंने बहुल आत्म-तर्पक तथा दान-विमुख पणिका संहार किया । सरस्वति, तुम्हारे ये दान बहुत महान् हैं ।

२ यह सरस्वती (नदी) मृणाल-खनन-कारीकी तरह प्रबल और वेगवान् तरङ्गोंके साथ पर्वत-तटोंको भग्न करती है । रक्षाके लिये हम स्तुति और यज्ञ द्वारा दोनों तटोंका विनाश करनेवाली सरस्वतीकी परिचर्या करते हैं ।

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्यो वनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३॥
प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
धीनामवित्र्यवतु॥४॥
यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५॥
त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥६॥
उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः । वृत्रघ्नीवष्टि सुष्टुतिम् ॥७॥
यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ॥८॥
सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥९॥
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१०॥

---

३ सरस्वति, तुमने देव-निन्दकोंका वध किया है और सर्वव्यापी बृसय या त्वष्टाके पुत्रका संहार किया है अथवा तुम्हारी सहायतासे इन्द्रने संहार किया है। अन्न-सम्पन्ना सरस्वति, तुमने मनुष्योंको भूमि-प्रदान किया है और उनके लिये वारि-वर्षण भी किया है।

४ दानशालिनी, अन्न-युक्ता और स्तोताओंकी रक्षाकारिणी सरस्वती अन्न द्वारा भली भाँति हमारी तृप्ति करें।

५ देवी सरस्वति, जो व्यक्ति इन्द्रकी तरह तुम्हारी स्तुति करता है, वही व्यक्ति जिस समय धन-प्राप्तिके लिये युद्धमें प्रवृत्त होता है, उस समय उसकी तुम रक्षा करना।

६ अन्न-शालिनी सरस्वति, संग्राममें हमारी रक्षा करना और पूषाकी तरह हमारे भोगके लिये धन प्रदान करना।

७ भीषणा, हिरण्मय रथपर आरूढ़ और शत्रुघातिनी वही सरस्वती हमारे मनोहर स्तोत्रकी इच्छा करे।

८ सरस्वतीका अपरिमित, अकुटिल, दीप्त और अप्रतिहत-गति जलवर्षक वेग, प्रचण्ड शब्द करता, विचरण करता है।

९ नियत भ्रमणकारी सूर्य जैसे दिनको ले आते हैं, वैसे ही वह सरस्वती हमारे सारे शत्रुओंको पराजित करे और अपनी अन्यान्य जलमयी भगिनियोंको हमारे पास ले आवे।

१० सप्तनदी-रूपिणी, सप्त भगिनी-संयुता, प्राचीन ऋषियों द्वारा सेविता और हमारी प्रियतमा सरस्वती देवी सदा हमारी स्तुति-पात्र हों

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥११॥

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥१२॥

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।

रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥१३॥

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।

जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥

११ पृथिवी और स्वर्गके विस्तीर्ण प्रदेशोंको जिन्होंने अपनी दीप्तिसे पूर्ण किया है, वही सरस्वती देवी निन्दकोंसे हमारी रक्षा करें।

१२ त्रिलोक-व्यापिनी, गङ्गा आदि सप्त नदियोंसे युक्ता, चारों वर्णों और निषादको समृद्धि-विधायिनी सरस्वती देवी प्रतियुद्धमें लोगोंके आह्वानयोग्य होती हैं।

१३ जो माहात्म्य और कांति द्वारा देवोंमें प्रसिद्ध हैं, जो नदियोंमें सबसे वेगवती हैं और श्रेष्ठताके कारण जो अतीव गुण-शालिनी हैं, वही सरस्वती देवी ज्ञानी स्तोताकी स्तुति-पात्रा होती है।

१४ सरस्वती, हमें प्रशस्त धनमें ले जाओ। हमें हीन नहीं करो। अधिक जल द्वारा हमें उत्पीडित नहीं करना। तुम हमारा बन्धुत्व और गृह स्वीकार करो। हम तुम्हारे पाससे निकृष्ट स्थानमें न जायं।

अष्टम अध्याय समाप्त

चतुर्थ अष्टक समाप्त